अज्ञात जीवन

अजित प्रसाद

प्रस्तावना

मानतीय श्री प्रकाश जी

प्रकाशक

रायसाहब रामदयाल अगरवाला

प्रयाग

प्रस्तावना

जब श्री अजित प्रसाद जी के सुपुत्र ने मुझे "अज्ञात-जीवन" नाम की पुस्तक दी और कहा कि इसकी प्रस्तावना के रूप में आप दो शब्द लिख दें, तो मुझे थोड़ा संकोच हुआ पर उनके आग्रह करने पर मैंने वैसा करना स्वीकार किया। श्री अजित प्रसाद जी को जानने का मुझे आज ४५ वर्षों से सौभाग्य है। इनके छोटे भाई श्री विमल चन्द्र जी काशी में स्कूल में मेरे सहपाठी रहे। उनका असामयिक देहान्त सन् १९०७ में हो गया, जिससे कुटुम्बी जनों के साथ-साथ उनके मित्रों के हृदय पर भी बड़ा आघात पहुँचा। मेरे तो वे प्रियतम मित्रों में थे और आज तक उनका स्मरण बना हुआ है।

इसी मित्रता के कारण श्री अजित प्रसाद जी से भी बहुत बार मुझे लखनऊ में मिलने का सौभाग्य हुआ। उस समय वे वहाँ सरकारी वकील थे और मेरे पिता के परम मित्र राजा परमानन्द जज थे। इस कारण बाल्यावस्था से ही लखनऊ आता-जाता रहा और श्री अजित प्रसाद जी से बराबर मुलाकात होती थी। वे काशी भी आते थे और अपनी स्त्री के देहान्त के बाद कुछ दिन वहाँ रहे भी। इस कारण भी सम्पर्क बना रहा।

श्री अजित प्रसाद जी की धार्मिक भावनाओं से उनके सभी मित्र परिचित हैं। उनके धार्मिक जीवन को बाह्य आडम्बर से कोई मतलब नहीं है। उसके मूल सिद्धान्तों का वे मनन और अध्ययन करते हैं और उसके नैतिक पहलू के अनुसार ही जीवन व्यतीत करने पर कटिबद्ध रहते हैं। वकालत ऐसे पेशे में रह कर और उसमें प्रवीणता भी प्राप्त कर वे कदापि शुद्ध और सच्चे मार्ग से विचलित नहीं हुये, यह आश्चर्य की बात है, और इससे केवल वकील ही नहीं, हम सभी शिक्षा ले सकते हैं।

उनका जीवन न वैसा "अज्ञात" रहा है न रहना ही चाहिये, जैसा कि पुस्तक के नाम से विदित होता है अथवा वे विदित

कराना चाहते हैं। इस पुस्तक द्वारा हम सब लोगों को उन विविध क्षेत्रों का पता लगता है जिसमें श्री अजित प्रसाद जी ने भाग लिया है और साथ ही बहुत से महानुभावों का भी परिचय मिलता है, जिन्होंने देश के जीवन के विविध अंगों में और सार्वजनिक क्षेत्रों में कार्य किया है। इस पुस्तक से एक प्रकार से उस कठिन वातावरण का भी पता लगता है जिसे हम आज भूल रहे हैं, जिसमें विगत अर्धशताब्दी में हमारे विशिष्ट पुरुषों ने घोर संकटों का सामना करते हुये काम किया और जिसके कारण आज हमें स्वराज्य मिला है। न हमें उन लोगों को ही भूलना चाहिये न उन दिनों को ही।

सम्भव है कि कितने ही अंशों में श्री अजित प्रसाद जी की विचार धारा से हम सहमत न हों, सम्भव है कि कितनी ही सार्वजनिक और व्यक्तिगत विषयों पर हम बहुतों का मत उनसे पृथक् हो, पर इस पुस्तक से हमें एक सद्गृहस्थ का जिन्हें सामाजिक और धार्मिक विषयों और सार्वजनिक कार्यों से रस रहा हो और जो अपने सिद्धान्तों के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहते हैं, अच्छा परिचय मिलता है और कैसे-कैसे विचित्र विचारों के संघर्ष में भारत इधर गुज़रा है उसका भी पता लगता है। सभी लोग सभी से कुछ न कुछ सीख सकते हैं। मैं यही आशा करता हूँ कि जिस उद्देश्य से श्री अजित प्रसाद जी ने अपने पुत्रों के आग्रह पर अपने जीवन का परिचय संसार को दिया है वह सिद्ध होगा।

२ किङ्ग एडवर्ड रोड,
नई दिल्ली,
१ मार्च १९५१

श्री प्रकाश

कौन सुनता है....?

मेरे पुत्रों ने इच्छा प्रकट की कि मैं अपने पुराण पुरुषों का और अपना जीवन-चरित्र लिख डालूँ, तो मुझे बार-बार कवि का यह कथन याद आता रहा—

कौन सुनता है कहानी मेरी।
और फिर वह भी ज़बानी मेरी॥

किन्तु मेरे बेटों ने आग्रह करके कहा कि कोई सुने या न सुने, हम तो अपनी जानकारी और अपनी सन्तान की जानकारी के लिये आप से यह प्रार्थना करते हैं। हमें यह कहानी बेचकर रुपया नहीं कमाना है। हमें आप के नाम से, आप के कलम से स्वार्थ लाभ नहीं करना है। नितान्त मैंने इस कहानी को लिखना शुरू कर दिया।

इसमें जो कुछ लिखा है वह या तो मैंने देखा या सुना है, या मेरा निजी विचार है।

बालकपन में मेरी दादी जी बाबाजी-सम्बन्धित बातें सुनाया करती थीं। मेरे लिये वह कथा पुराण थी, उनके लिये अतीत की झाँकी।

युवावस्था के प्रारम्भ में पिता जी से उनके जीवन-संग्राम की गाथा अत्यन्त चाव से सुना करता था।

उन ही सब बातों को और आप बीती घटनाओं को मैं अपनी सन्तान को सुनाता हूं।

आशा है कि मेरा यह प्रयास व्यर्थ न जायेगा। मेरी सन्तान इससे लाभ उठावेगी।

अजिताश्रम्, लखनऊ
अप्रैल ६, १९५१

अजित प्रसाद

उपक्रमणिका

परिच्छेद			पृष्ठ

परिच्छेद | पृष्ठ

हम लोग क्षत्रिय कुलोत्पन्न, राजा अग्र की सन्तान बीसा अग्रवाल, जिन्दल गोत्रीय हैं।

रुई का व्यापार करने से, रुई वाले सेठ कहलाते थे। व्यापार करते-करते वैश्य कहलाने लगे। इधर चार पीढ़ियों से अंग्रेज़ी सरकार की चाकरी करने से वैश्य पद से भी गिर गये और "सेठ" के स्थान में "बाबू" कहलाने लगे।

मैं तो वकालत का व्यवसाय और संस्कृत भाषा का अभ्यास करने से अपने को पंडित कहलाने का अधिकारी समझता हूं। मेरे चारों पुत्रों ने भी वकालत की उपाधि प्राप्त करली है। मेरी छोटी बेटी शान्ति और मेरी पोती शारदा, दोनों ने संस्कृत भाषा में M. A. की उपाधि प्राप्त करली है। मेरी कनिष्ट पुत्र-वधू M. A. (Previous) पास है। मेरी बड़ी बेटी की बेटी प्रेमलता ने लंदन विश्वविद्यालय से B. A. (Hons.) डिगरी प्राप्त की है। "कर्मणः वर्णव्यवस्था" सिद्धान्तानुसार हम लोग किसी प्रकार से भी बनिये नहीं हैं।

नसीराबाद छावनी

हमारे पुरखा खास शहर दिल्ली के रहने वाले थे। सेठ चैन सुखदासजी नसीराबाद जा बसे। नसीराबाद छावनी, अजमेर से १४ मील, चित्तौड़गढ़ से १०१ मील, राजस्थान के मध्यस्थ, ब्रिटिश शासनाधीन थी। मेरे पितामह बनारसीदास जी का जन्म नसीराबाद में हुआ। वहाँ ही वह उच्च पदाधिकारी हुये और वहाँ ही ३५ वर्ष की भरी जवानी में सन् १८५८ में उनका शरीरान्त हुआ।

उस ज़माने में स्कूल, मदरसे, पाठशाला नहीं थीं। एक बुड्ढा मौलवी, श्री चैन सुखदासजी के मकान में रहता था। वहाँ ही अपनी रोटी ख़ुद बनाता था। मौलवी साहब का कुल खर्च चैन सुखदास जी उठाते थे। उनको आदर, सत्कार, प्रतिष्ठा पूर्वक रखते थे। मौलवी साहब बाबाजी को फ़ारसी पढ़ाते थे। बाबाजी भी उनकी सेवा शुश्रूषा करते थे। "गुरूशुश्रूषयां विद्या" वाक्यानुसार गुरुप्रसाद से बाबाजी फ़ारसी विद्या में निपुण और पारंगत हो गए।

आसपास के मोहल्ले के बालक मौलवी जी से पढ़ने आजाया करते थे। उनसे कोई शुल्क या फ़ीस नहीं ली जाती थी। होली, दिवाली, ईद, शब-बरात आदि त्योहारों पर विद्यार्थी सादर भेंट अर्पित करते थे और मौलवी साहब आशीर्वादात्मक श्लोक सुन्दर काग़ज़ पर लिखकर प्रदान करते थे, जो विनयपूर्वक रखे जाते थे। यह पत्र "ईदी" कहे जाते थे। मुझे भी अपने विद्यार्थी काल में मौलवी साहब से ईदियाँ मिली हैं। यह प्रथा मेरे बचपन तक कायम रही। मेरे पिताजी भी

फ़ारसी भाषा में धाराप्रवाह निःसंकोच बात कर लेते थे और मैंने भी फ़ारसी की ऊँचे दरजे की पुस्तकें पढ़ी हैं—जैसे शाहनामा, सिकन्दरनामा, इखलाक़-ए-जलाली, इखलाक़-ए-मोहसनी। गुलिस्ताँ, बोस्तां, आमदनामा, सफ़्वतुल मसादर आदि तो साधारण पुस्तकें हैं।

उस ज़माने में पाठ्यपुस्तक और अध्ययनीय विषय संख्या में कम होते थे; किन्तु ज्ञान का भरपूर भण्डार शिष्य को प्रदान किया जाता था। विद्या कण्ठगता होती थी, केवल पुस्तकस्था नहीं; बुद्धि का, तर्क शक्ति का विकास होता था। भाषा, पदार्थ-विज्ञान, गीत, वादित्र, चित्र, आदि अनेक कला के ज्ञान के अतिरिक्त विनय, नम्रता, परिश्रम, शीलता, शरीर-स्वास्थ्य, व्यायाम, सेवा-शुश्रूषा भाव, उदारता, कर्तव्य-परायणता आदि गुणों तथा संयम और सदाचार का बीजारोपण बालकपने में ही कर दिया जाता था, जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय बालक आदर्श नागरिक और धर्मपरायण गृहस्थ होते थे। गुरु शिष्य में पारस्परिक प्रेम और भक्तिभाव होता था।

उस ज़माने में शासन-पद्धति सीधी-सादी थी। नसीराबाद छावनी का सारा प्रबन्ध और न्याय-विधान एक अंग्रेज़ के हाथ में था, जो फ़ौजी अफ़सर था और कैंटून्मेंट मैजिस्ट्रेट कहलाता था। दीवानी, फौजदारी मुकदमों का फैसला, छावनी का सब इन्तज़ाम उसके सुपुर्द था। जेलखाने बने ही न थे, सज़ा या तो काठ में ठोके जाने की होती थी, अर्थात् कुछ समय के लिये अपराधी की दोनों टाँगे दो लकड़ी के कुन्दों के बीच के सूराखों में डालकर जंजीर से कस कर उसमें ताले बंद कर दिये जाते थे। अपराधी मनुष्य एक पंक्ती में बंधे कसे जकड़े रहते थे, हिल फिर नहीं सकते थे। उनको भोजन के लिये या शौचार्थ खोला जाता था। दूसरी सज़ा कोड़ों की मार की थी, जो नंगी पीठ पर पड़ते थे। तीसरी सज़ा मौत की थी, बन्दूक की गोली से मार डाले जाते थे, फाँसी का प्रबन्ध नहीं हुआ था। हल्की सज़ा जुर्माना या मौखिक

दण्ड की थी। उन दिनों लोगों में अपराध करने की वृत्ति बहुत कम थी। झूठ बोलना, झूठे काग़ज़ बनाना, जाल-फ़रेब, धोखा, बदनियती लोग जानते ही न थे। अंगरेजी कचहरियाँ और वकालत का पेशा बन जाने से इस प्रकार के अपराधों में वृद्धि हो गई है; यह मेरा निजी अनुभव है। १६२६-३० में मैं बीकानेर हाईकोर्ट का जज था। २५,००० वर्गमील के बीकानेर राज्य में केवल एक हाईकोर्ट ही को सेशन्स जज के अधिकार प्राप्त थे। राज्य भर में केवल २०० क़ैदी थे। सेशन्स जजी का काम मेरे सुपुर्द था। और फौजदारी अपील भी मैं और जजों के साथ सुनकर फ़ैसला करता था। महीनों तक सेशन्स कोर्ट का एक भी मुक़द्दमा नहीं हुआ। गवाहों को झूठ बोलना आता ही न था। अगर झूठ बोलते भी थे तो घबरा जाते थे और उनका झूठ सहज ही में खुल जाता था। अधिकतर अपराध ऊँट की चोरी या औरत को बलात्कार भगा ले जाने के होते थे। पता लग जाने पर अपराधी को रुपया देकर ऊँट या औरत को वापस ले लेते थे। पुलिस में रपट कम की जाती थी। ख़ोज लगाने वाले लोगों की सहायता से लोग ख़ुद ही अपने माल का पता लगा लेते थे। फाँसी की सज़ा का होना बीकानेर, जयपुर, उदयपुर आदि रियासतों में किसी ने न देखा न सुना।

बनारसीदास जी, मेरे बाबा मैजिस्ट्रेट के सरिश्तेदार के अतिरिक्त, बाज़ार चौधरी, छावनी कोतवाल और कमसरियेट गुमाश्ता का काम भी करते थे। उनके हाथ के लिखे हुये फ़ारसी भाषा में गवाहों के बयान, अभियुक्त का स्पष्टीकरण, मुक़द्दमें का फैसला आदि मैंने ख़ुद पुराने कागज़ों में देखे हैं। वह काग़ज़ दिल्ली में एक लकड़ी के बक्स में रखे थे। अब उनका पता नहीं है। बनारसी दासजी चौधरी कहलाते थे। वह गवाहों का बयान और मुक़द्दमें की सब बातें मैजिस्ट्रेट को समझा देते थे और मैजिस्ट्रेट की अनुमति के अनुसार फैसला लिख देते थे। मैजिस्ट्रेट उस पर दस्तख़त कर देता था। संक्षेपतः सारी

स्थानीय शासन-सत्ता बाबा जी के हाथ में थी। ऐसे चार उत्तरदायित्व पूर्ण पदों पर किसी एक व्यक्ति की नियुक्ति इन दिनों अनुमान क्या, कल्पना में भी नहीं आ सकती। मगर मैंने सुना ऐसा ही है और मुझे जन-श्रुति की सत्यता में विश्वास है। इन बातों के दृढ़ प्रमाण प्राप्ति के अभिप्राय से मैंने कन्टूनमेंट मैजिस्ट्रेट नसीराबाद को पत्र लिखा। पत्रोत्तर की प्रतिलिपि नीचे दी जाती है :—

No 1221

Office of the Executive Officer,
Nasirabad, dated 23rd March 1926.

Reference your letter dated 17th March 1926.

The information called for in your above letter cannot be furnished, as the old records were destroyed during the Mutiny.

इस बात में कि एक व्यक्ति इस प्रकार चार उत्तरदायित्वपूर्ण पद ग्रहण करके प्रजा का उपकार कर सकता है, मुझे अपने निजी अनुभव से और ऐतिहासिक अनुमान से विश्वास है। १६३७ में मैं जावरा के मुसलमानी राज्य में चीफ़कोर्ट के चीफ़ जज के पद पर नियुक्त किया गया था। नीचे लिखे पदाधिकारियों का काम भी मेरे ही सुपुर्द था—

१—सेशन्स जज
२—ज़िला मैजिस्ट्रेट
३—सिविल जज
४—जज मुकद्दमात खफ़ीफ़ा

५—जुडीशल सेक्रेटरी

६—अफसर खजाना

७—रजिस्ट्रार ज़िला

८—जेल } की निगरानी
९—सरिश्ते तालीम

१०—मेम्बर जुडीशल कमेटी, (प्रिवी काउन्सिल)

असल बात यह है कि काम करने वाला पदाधिकारी परिश्रमी, योग्य और ईमानदार होना चाहिये; वह प्रजा-सेवक, हितैषी, रक्षक बनकर रहे। कठोर शासक, स्वार्थी, अभिमानी, आलसी, विलास-प्रिय, कर्तव्य विमुख न हो। मितव्ययिता और आदर्श प्रबन्ध—प्रजा का सन्तोष और सुख इसी में है।

बाबाजी के सम्बन्ध में कुछ बातें मैंने अपनी दादी (उनको मैं अम्मा जी कहता था) से सुनी हैं; वह लिखता हूँ।

एक दिन बाबाजी मैजिस्ट्रेट के साथ गश्त में जारहे थे। हमारे घर के सामने गली में एक बालक (मेरे पिताजी) नंगे बदन धूल में खेल रहा था। बाबाजी ने बालक का एक हाथ पकड़ कर रास्ते से हटा दिया। बालक रोने लगा। मैजिस्ट्रेट साहब ने कहा—"चौधरी, तुम को प्रजा के बालकों के साथ कठोरता नहीं करनी चाहिये"। उन्होंने कहा—"सरकार यह मेरा ही बेटा है, ग़ैर का नहीं है"। साहेब बोले—"तुम्हारा बेटा, ऐसा नंगे बदन"? बाबाजी ने कहा—"सरकार, हम लोग ग़रीब आदमी हैं"। मैजिस्ट्रेट साहेब ने बंगले पर पहुँचकर २००) भिजवा दिये कि बच्चे को ज़ेवर, कपड़ा बनवा दिया जावे। उन दिनों हाकिमों में वात्सल्य-भाव और प्रजा में भक्तिभाव होता था और ऐसे पारस्परिक आचरण से अंग्रेज़ी राज्य की जड़ बल पकड़ती गई।

एक दिन अम्माजी की एक मुँह बोली बहन ने आकर उनसे कहा कि उसका बेटा चोरी में पकड़ा गया है। अम्माजी ने बाबाजी

से ज़िकर कर दिया। कचहरी में उस लड़के को कोड़ों की सज़ा दी गई।

बाबाजी ने जल्लाद से इशारा कर दिया था, कि कोड़े ज़ोर से न लगावे। कोड़े खाने के बाद जब वह अपराधी बाबाजी के सामने पेश किया गया, तो बाबाजी ने कहा—"अगर बनिये का बेटा है, तो फिर मुझे मुँह न दिखाना"। उनका मतलब यह था कि फिर चोरी न करना कि मेरे सामने आना पड़े। लेकिन लड़के पर इन शब्दों का गहरा प्रभाव पड़ा। वह अपने घर नहीं गया; और मुद्दत तक उसका पता नहीं लगा। बाबाजी के देहावसान की ख़बर सुन कर वह नसीराबाद आया। सीधा अम्माजी के पाँव में गिर पड़ा और फूट-फूट कर रोया कि "मेरा बाप मर गया"। कहने लगा कि चौधरी जी के शब्द मेरे लिये आशीर्वाद हो गये। मैं सुखी हूँ, व्यापार कर रहा हूँ। फिर अपनी माँ के पास गया और उसको बतलाया कि चौधरी जी ने कहा था कि "मुझे मुँह न दिखाना"। इस कारण मैं विदेश में छिपा रहा।

एक दिन ख़बर मिली कि एक शराबी गोरा बाज़ार में लूट-मार कर रहा है। बाबाजी खुद गए, पीछे से गर्दना लगाकर, पैरों के अड़ंगे से गोरे को गिरा दिया और बाँध लिया।

ग़दर के ज़माने (मई १८५७ ई०) में एक दिन एक पुरबिया सिपाही घर में घुस आया और ब्राह्मण रसोइया भोला के एक गोली मारदी। गोली उसके पैर में लगी। बाबाजी मकान में ऊपर के खन में थे। ब्राह्मण का क्रन्दन सुनकर नीचे आये। ब्राह्मण ने पानी माँगा, बाबाजी पानी पिला रहे थे कि एक और पुरबिया सिपाही घुस आया और बंदूक चलाने लगा, बाबाजी ने उसका हाथ मरोड़ कर बंदूक छीन ली और उसको थप्पड़ मार कर निकाल दिया। उसको इस प्रकार निकाल देने पर उन्होंने सोचा कि वह सिपाही औरों को लेकर अवश्य आवेगा, यह सोच कर बाबाजी ने तुरन्त कपड़ा उतार, राख लपेट, लंगोट बाँध

साधु का रूप धारण कर लिया। घर के बाहर ताला बंद करके चबूतरे पर भंग, कूंडी-सोटा लेकर बैठ गये। थोड़ी देर में वही सिपाही पाँच-सात साथियों को लेकर आया। वहाँ ठहर गया और बाबाजी से कहने लगा "बाबा इस घर में एक सेठ रहता था, वह कहाँ गया।" बाबाजी बोले—"बच्चा, हम तो कई घंटे से बैठे हैं, यह मकान बंद है, ताला लगा है, यहाँ तो कोई नहीं रहता"—और भंग निकाल कर उनको दी कि "बच्चा, बूटी चाहो तो घोटो, छानो और पियो।" सिपाहियों ने भंग छानी, पी और चार-छः आने बाबा को भेंट कर गए।

१८५७ के ग़दर के दिन (१० मई) और उसके कुछ पहले से मेरी अम्माँजी, पिताजी और बुआ जी दिल्ली में रह रहे थे। बाबाजी अकेले ही नसीराबाद में थे। ग़दर शान्त हो जाने पर उन्होंने दो आदमी दिल्ली भेजे। उनमें से एक तो रास्ते में मर गया या मार डाला गया। दूसरा दिल्ली पहुँचा। उसने एक अशरफ़ी जो, उसके पास बच रही थी, अम्माँजी को दी। वह अशरफी उसने किसी काले मसाले से जाँघ पर चिपका ली थी, जो काला भद्दा दाग़ सा मालूम पड़ता था। उस आदमी के साथ अम्माँजी, पिताजी और बुआ जी बैलगाड़ी के रास्ते से नसीराबाद को रवाना हुये। रास्ते में एक मुसलमान सिपाही मिल गया। वह फर्रुखनगर का रहने वाला था और यह जानकर कि अम्माँजी फर्रुखनगर की बेटी हैं, वह गाड़ी के साथ-साथ पैदल चलने लगा। आगे चलकर कुछ डाकुओं ने गाड़ी घेर ली। सिपाही ने ललकारा "जब तक मैं जिन्दा हूं, गाड़ी पर हाथ न डालना"। डाकुओं से बात-चीत की, और उनसे कहा कि यह मेरे गाँव की बेटी है। मैं थक गया हूँ। तुम लोग ऐसा बन्दोबस्त करदो कि यह अपनी ससुराल नसीराबाद सही-सलामत पहुँच जाय। अम्माँजी सकुशल अपने घर नसीराबाद पहुँच गईं। अम्माँजी ने नसीराबाद जाते समय रास्ते में लूट-मार के भय से सब आभूषण आदि मकान की दीवार में खोद कर बाहर से बन्द

करके छिपा दिये थे। इस प्रकार छिपा देने को तेग़ा कहते हैं। पीछे से वह सब ज़ेवर किसी ने चुरा लिये।

अम्मांजी के नसीराबाद पहुँचने के कुछ महीने बाद; १८५८ की गर्मियों में, बाबाजी ३५ साल की भरी जवानी में एकाएक सरसाम (मस्तिष्क ज्वर, apoplexy) के आक्रमण से परलोक सिधारे। बाबाजी कमसरियट गुमाश्ता होकर अंगरेज़ी फ़ौज के साथ १८५७ में कोटा, बूँदी की लड़ाई में गये थे। सुना गया था कि उनको इस लड़ाई में Prize Agent, (लूट के माल को बाँटने वाला अधिकारी) द्वारा बहुमूल्य जवाहिरात मिले थे; वह सब उन्होंने अपने एक मित्र सालिगराम ब्राह्मण के पास रखे थे। वह सब उसके पास ही रह गये। बाबा जी के देहावसान के बाद एक सज्जन अम्मांजी के पास समवेदनार्थ आए, उस सज्जन ने बात कही। उस सज्जन ने बाबाजी के काग़ज़ों का बस्ता मंगवा कर देखा। उस बस्ते में इन जवाहरात का तो कुछ पता न चला; किन्तु एक हुण्डी मिल गई और उसका रुपया वह सज्जन महाजन से वसूल कर लाये।

बाबाजी के देहावसान के पीछे पिता जी का विवाह नसीराबाद में भक्त बलदेवसहाय जी की पुत्री, मनभावती देवी से हो गया। सगाई तो बाबाजी के जीवनकाल में ही हो गई थी। पिता जी की उम्र विवाह के समय १२—१३ साल की थी और माता जी उनसे क़रीब डेढ़ साल बड़ी थीं। कुछ अरसे बाद अम्मांजी नसीराबाद का अपना मकान चुन्नीलाल जौहरी के पुरखाओं को बेचकर दिल्ली चली आईं।

पिताजी का विद्यार्थी जीवन

हमारे पुरखा दिल्ली के रहने वाले थे। मेरी बुआ, पिताजी की भगिनी, श्री गंगादेवी का विवाह दिल्ली के सर्वोत्कृष्ट घराने में, जैनसमाज के अकेले चौधरी, सर्वमान्य श्री गिरधरलालजी के बेटे श्रीसुगनचन्दजी के पोते, देश-विख्यात श्री हरसुखराय जी के पड़पोते, श्री पारसदासजी से पितामह के जीवन समय में हो गया था। उनकी हवेली बड़ी पहाड़वाली गली से मिली हुई थी। हवेली के सामने का मैदान "रायजी का चौक" कहलाता था। एक तरफ़ उन्हीं के घराने के सुविख्यात श्रीबलदेवसिंह जी की महलसराय थी जो, कहा जाता है, कि शाहजहाँ के राज्य के समय बनी थी, और जिसमें शाहजहाँ ने एक बार स्वयं पदार्पण किया था। १६ नवम्बर, १८०५ को लार्ड लेक ने श्री सुगनचन्द जी को परगना हवेली-पालम दिल्ली के तीन गाँव—आलीपुर, मादीपुर, सलीमपुर—माफ़ी जागीर बिना मालगुज़ारी दो पुश्त के लिए, उनकी कार्य-कुशलता के पुरस्कार रूप दिये थे। सुगनचन्द जी दिल्ली के सरकारी खजाँची भी थे।* यह माफी दो पीढ़ी पीछे ज़ब्ती में आ गई। खजाँचीगीरी भी जाती रही।

दिल्ली से पुराना सम्बन्ध होने के कारण ही बाबाजी के देहान्त पीछे नसीराबाद से मेरी दादी, पिता जी और माता जी को ले कर, दिल्ली आ गई थीं।

---

*, "Ranjit Singh" by H. T. Prinsep, page 102.

पिता जी का प्राथमिक शिक्षण फ़ारसी भाषा में नसीराबाद में हुआ था। फ़ारसी भाषा वह भली प्रकार बोल लेते थे। दिल्ली में आकर उन्होंने घर पर कुछ अंग्रेज़ी पढ़ी। फिर स्कूल में भरती हो गये। उन दिनों स्कूल में फ़ीस नहीं ली जाती थी। किताब, कापी, पेन्सिल, स्लेट आदि सब समान और प्रत्येक विद्यार्थी को आठ आना मासिक जेब खर्च स्कूल से दिया जाता था। प्रतिभाशाली विद्यार्थी को छात्र-वृत्ति, पारितोषिक मिलते थे। विद्यार्थियों का यथेष्ट आदर सम्मान होता था। क्योंकि अंग्रेजी सरकार को अंग्रेज़ी पढ़े व्यक्तियों की सरकारी काम के वास्ते आवश्यकता थी।

गरमी के दिनों में स्कूल का समय प्रातः ४ बजे से ८ बजे तक कर दिया गया था, जिससे विद्यार्थी धूप चढ़ने से पहले घर पहुँच जावें।

उन दिनों घड़ी घण्टे तो घरों में थे नहीं। एक बालक अंधेरे में बस्ता उठा स्कूल को चल खड़ा हुआ। स्कूल कम्पनी बाग में था, जहाँ अब म्युनिसिपल कमेटी का दफ़्तर है। कोतवाली के पास, फव्वारे के सामने पुलिस के पहरेदार ने टोका "कौन है"। लड़का बोला "तेरे दामाद"। सिपाही उसको पकड़ कर कोतवाल के पास ले गया। कोतवाल ने डाटा और एक चपत लगा दिया। लड़के ने स्लेट समेत किताबें कोतवाल के मुंह पर फेंक मारी और रोता हुआ स्कूल भाग गया।

लड़के का शोर सुन कर प्रिन्सिपल साहब जाग पड़े, बाहर आये। लड़के ने रोते हुए कहा कि "कोतवाल ने मारा"। प्रिन्सिपल महोदय तुरन्त लड़के को लेकर कोतवाली आए। कोतवाल से कहा "लड़के से माफ़ी माँगो। लड़के की बद-तमीज़ी पर तुमको मारने का अधिकार नहीं था। तुम मुझसे शिकायत करते; मैं इसको यथोचित् दण्ड देता।"

एक दफ़ा विद्यार्थियों ने एक रोज़ इन्जीनियर महोदय के, जो स्कूल की मरम्मत का काम देखते थे, गेंद खेंच मारी। रोज़ महोदय ने प्रिन्स्पिल से

शिकायत की। प्रिन्सिपल महोदय ने रोज़ के सामने लड़कों से कहा—"बच्चों, रोज़ महोदय चिड़चिड़े हैं; गेंद लग जाने से नाराज़ हो गये हैं; ध्यान रक्खो कि इनके गेंद न लगे।" रोज़ महोदय से कहा कि "क्या लन्दन में कभी लड़कों ने तुम्हारे ऊपर बर्फ का गोला नहीं चलाया? ऐसे बच्चों के खिलाड़ीपन पर आपको ध्यान देना उचित नहीं है"।

बात हँसी में टल गई।

पिताजी का जीवन-संग्राम

१८६५ में पिता जी एन्ट्रेंस की परीक्षा में कलकत्ता विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण हुए।

जॉन मिल्टन की कविताओं की सुनहरी सुन्दर जिल्द की सचित्र पुस्तक (The Complete Poetical Works of John Milton) उनको पारितोषिक रूप मिली थी। वह अब भी मेरे पास सुरक्षित है। पहले पृष्ठ पर St. Stephens College, Delhi के Principal R. R. Winter के हस्ताक्षर हैं।

जुलाई १८६६ में वह तहसील गुरसराय, ज़िला झाँसी में अंग्रेजी भाषा के अध्यापक नियत कर दिये गये। Letter No. 631 dated Camp Mussoorie, the 25th July 1866, from M. Kempsen, Director of Public Instruction Educational Department, North West Provinces, to the Officiating Inspector 2nd Circle to his docket No. 46 dated 21st Instant की प्रतिलिपि* पिता जी के पास अप्रैल, १८६७ में भेजी गई। यह पता नहीं चला कि तहसील गुरसराय में पिता जी ने कितने दिन काम किया। परन्तु श्री माखनलाल, हेडमास्टर, ज़िला स्कूल झाँसी के २६ जुलाई, १८६७ के पत्र से यह विदित है कि पिता जी जुलाई, १८६७ में ज़िला स्कूल, झाँसी में अध्यापक नम्बर २ थे और उस पद से उनका त्यागपत्र स्वीकार हो चुका था।

---

* "Sanctions the appointment of Debi Pershad to be English teacher Gur Sarai Tahsili School."

२२ अगस्त, १८६७ से पिता जी ज़िला स्कूल, शिमला में सहायक अध्यापक ४०) मासिक पर मुकर्रर कर दिये गये थे * तथा एक फरवरी, १८६८ से ४५) मासिक वेतन हो गया। †

शिमला में स्कूल में पढ़ाने के अतिरिक्त पिताजी सेना के अंग्रेजों को उर्दू का अध्ययन भी कराया करते थे, और २०) मासिक एक घण्टे के हिसाब से वेतन लेते थे। Lord Mayo के भाई को, Indian Evidence Act के रचयिता Sir James Fitz-James Stephen को, Sir Henry Campbell, Colonel Charles Hervey, B. Duff, Lambert Brown आदि को उन्होने पढ़ाया है। सन् १८७७ में हाईकोर्ट वकालत की परीक्षा में सम्मिलित हुए ‡। दिल्ली से इलाहाबाद गये थे। १५-२० दिन परीक्षा प्रारम्भ से पहले ग्रेट ईस्टर्न होटल में ठहर कर भले प्रकार परीक्षा के वास्ते तैयार हो गए थे, क्योकि दिल्ली में मेरे सहोदर भाई की कड़ी बीमारी के कारण जिसमें उसका देहान्त हो गया, वह भले प्रकार पढ़ नहीं सके थे। परन्तु परीक्षा में सफल नहीं हुये। असफलता का कारण जो पिताजी से सुना था, उसका कथन इस प्रसंग में असंगत न होगा। उन दिनों दासबाबू नाम के हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार थे। और यह मशहूर हो गया था कि १०००) एक हज़ार रुपया उनकी भेंट कर देने से परीक्षार्थी उत्तीर्ण हो जाता था। पिताजी एक मौलवी साहेब के साथ जाकर, दासबाबू से अपना परिचय करा आए थे। लेकिन जब उन्होंने परीक्षा में सन्तोषप्रद उत्तर लिख दिये, और उनको सफलता की पूर्ण आशा हो गई थी, तो

* परवाना नं० ५६, तारीख ६-६-१८६७, इन्सपेक्टर आफ् स्कूल, अम्बाला सरकिल।

† परवाना नं० ३१५, मई, १८६८। हवाला चिट्ठी नं० ६, ता० २०-२-१८३८, डाइरेक्टर महोदय।

‡ पत्र नं० ७७४ ता० २६ अक्टूबर १८७७ दस्तखती G. T. Spankie, रजिस्ट्रार हाईकोर्ट और सेक्रेटरी परीक्षा बोर्ड।

वह फिर दासबाबू से मिलने नहीं गए। नतीजा यह हुआ कि उनका नाम सफल परीक्षार्थियों की सूची में नहीं प्रकाशित हुआ।

Asstt. Commissary General Lieut. E. Sandys के प्रमाण पत्र, ता० २२ सितम्बर, १८७६ से पता चलता है कि उन दिनों पिताजी की शिमले में हेडमास्टर या किसी अध्यापक से मार-पीट हो गई। पिताजी ने उसका सर रूलर मार कर फोड़ दिया। स्कूल की नौकरी छोड़ दी।

फिर उन्होंने अंग्रेज़ फ़ौजी अफ़सरों को पढ़ाने का काम करने के लिए पूना जाने का इरादा किया। कर्नेल चार्ल्स हारवी के पत्र ता० २२ जनवरी, १८७२ से पता चलता है कि कर्नेल साहब ने उनको पूना जाकर अध्यापन का काम करने की सलाह दी थी।*

---

* प्रतिलिपि पत्र Colonel Charles Hervey, Bombay Staff Corps

Camp Delhi
8 Feby, 1872.

My dear Hartmann,

Here is the Moonshee (Dabee Pershad) of whom I spoke. He has been in the habit of charging no more than Rs. 20/- per mensem for one hour's instruction daily, or I believe Rs 35/- for two hours (Sundays excepted) and he tells me he will adhere to that tariff at Poonah. If he sticks to it, he will find every hour of the day bespoken and your Poonah Moonshees, *so-called,* will soon find their noses out of joint.

They will of course conspire against him. So that the poor fellow should get some support from you all, for his enterprise and pluck in going so far away from his home.

I believe he knows Col. Lucas of the Bombay Commissariat, his father having been his Gomashta and Field Kotwal at Nusseerabad during the mutiny. Every thing so dull here now.

Yours sincerely
Chas. Hervey,

लूकस महोदय का नाम मेरी दादी अकसर लिया करती थीं। प्रतीत होता है कि पिता जी ने पूना नहीं गए।

पिताजी के पास दरजनों फौजी अफसरों के प्रमाण-पत्र एक जिल्द में बंधे हुए थे, वह खो गए।

दादाजी के और अपने प्रमाण-पत्रों के आधार पर उनको रिसाला पलटन के साथ कूच में रसद प्राप्त करने का काम मिल गया। यह कूच का काम अत्यन्त कष्टप्रद था। रास्ते की दुश्कर घटनाओं का विवरण पिताजी किया करते थे। उन बातों का उल्लेख अनावश्यक प्रतीत होता है। यह कूच नीमच, मन्दसोर, रतलाम आदि मध्यप्रान्तीय स्थानों में हुआ था। मन्दसोर के चाँदी के काम की तश्तरी अब भी मेरे पास है।

इसके बाद मेरठ में Victualling Gomashta, Royal Artillery Division नियुक्त हो गए। मैं ५ बरस का था, और मुझे उस समय की सब बातें याद हैं।

हमारा मकान तोपखाना बाज़ार में बस्ती से बाहर थोड़ी दूर पर था। मरदानी ड्योढ़ी से जाकर विशाल आँगन था और एक विशाल बैठक और दालान, फिर ज़नानी ड्योढ़ी से जाकर ज़नाना आँगन, दालान, दो कोठे, दो रसोई आदि। मकान से मिली हुई घुड़साल थी, जहाँ हमारे ४ घोड़े और सईस आदि रहते थे। बाहर नौकर का छप्पर और खुला हुआ विस्तृत मैदान था। थोड़ी दूर पर एक नाला था। उस नाले में मैं अपने मामा रामनारायणजी के साथ जाकर काग़ज़ की तेल में भिगोई हुई बड़ी-बड़ी नौका बनाकर चलाता था। बाहर मैदान में मिट्टी में खेलता था।

रामलीला देखने प्रत्येक दिन मैं कमसरियट के हाथी पर जाता था। और लीला समाप्त होने तक ठहरता था। कमसरियट में हाथी तोप खेंचनेके लिये रखे जाते थे।

हाथियों का और रिसाला पलटन के घोड़ों का और गोरे सिपाहियों का राशन देने का काम पिता जी के ज़िम्मे था। पिताजी का वेतन तो केवल ५०) था, किन्तु राशन से ५००-६००) की मासिक आमदनी हो जाती थी। इस कारण से पिता जी ने वकालत के पास करने और वकालत का व्यवसाय करने का विचार छोड़ दिया। उस ज़माने में गेहूँ ३० सेर, घी १॥) सेर, दूध एक आना सेर था।

एक छोटा घोड़ा मेरी सवारी के वास्ते था। सईस के साथ मैं घोड़े पर घूमने जाया करता था। एक दिन पिता जी उस घोड़े पर सवार हुए। घोड़े ने उन्हें गिरा दिया। पिता जी की उंगलियाँ छिल गईं। उन दिनों परदे की कड़ी प्रथा चल रही थी। माताजी ज़नानी ड्योढ़ी से बाहर नहीं निकलती थीं। उन्होंने मुझे घोड़े पर चढ़ा देखने की इच्छा प्रकट की। मैं घोड़े पर चढ़कर मरदानी ड्योढ़ी से मरदाने आँगन में आया और माताजी ने मुझे घोड़े पर सवार देखकर सुख का अनुभव किया।

हमारी एक सब्ज़ा, श्वेत रंग की घोड़ी बड़ी तेज़ चलने वाली थी। वह किसी से पीछे रहना सहन नहीं कर सकती थी। नौचन्दी के मेले में टमटम पर मैं पिता जी के साथ था। हमारे आगे एक फ़िटन थी, उसका टप गिरा हुआ था। भीड़ के कारण फ़िटन रुकी। हमारी घोड़ी पिछले पैरों पर खड़ी होगई। पिताजी ने लगाम कस ली और घोड़ी का अगला पैर गिरने नहीं दिया। नहीं तो फ़िटन की सवारियों के सिर पर घोड़ी के पैर पड़ते। फ़िटन के आगे बढ़ते ही लगाम ढीली की और उसके पैर ज़मीन पर आ टिके। जान जोखों का समय था।

एक दिन शाम को ठंडी सड़क (Mall) पर जा रहे थे। हमारे आगे एक फ़ौजी अफ़सर फ़िटन पर जा रहा था। फ़िटन में दो घोड़े जुते थे। हमारी घोड़ी ज़ोर करती रही और टमटम उलट जाने के भय से पिताजी

ने लगाम ढीला करना ही उचित समझा। बस घोड़ी दम के दम में फ़िटन से आगे निकल गई। अंग्रेज़ गुस्से में कोचवान पर चिल्लाता रहा "मारो मारो, आगे निकालो"। जोड़ी के घोड़ों पर हन्टर पड़ रहे थे। मगर वह हमारी टमटम के पास न पहुँच पाए। दो चार दिन पीछे ऐसा हुआ कि कमसरियट अफ़सर एक फ़ौजी अफ़सर के साथ सब गाड़ी घोड़ों को देखने लगे। हमारी टमटम के पास आकर दोनों ठहर गये। पिताजी से कमसरियट अफ़सर बात करने लगे और कहा—"इतनी तेज़ घोड़ी क्यों रखते हो?" पिताजी ने कहा—"मेरा शौक़ है।" अफ़सर—"तुम्हारे पास एक यही घोड़ी है?" पिताजी—"इसके अलावा ४ और घोड़े हैं।" अफ़सर—"तुम्हारी सारी ५०) की तनख्वाह में तो घोड़ों का पेट भी न भरता होगा!" Quarter Master Sergeant इतने में बोल उठा कि "यह लोग घर के अमीर हैं, सरकारी नौकरी इज्ज़त समझ कर करते हैं।" बात टल गई।

उन्हीं दिनों में Kabul War शुरू हो गई। पिता जी को लड़ाई पर जाने के लिये कहा गया। माताजी बरसों से क्षय-रोग ग्रसित थीं। इस कारण पिताजी ने काबुल की लड़ाई पर जाने से इन्कार कर दिया। कमसरियट अफ़सर ने कहा—"Debi Pershad, you are losing the golden chance of your life. तुम अपने जीवन का सुनहरा अवसर खो रहे हो"। पिता जी ने कहा—"The money that I may make will not make me happy; and the thought that I neglected my wife and left her to die will make me miserable all through life. जो रुपया मैं प्राप्त करूंगा उससे सुख न होगा। मै इस विचार से यावज्जीवन दुखी रहूंगा कि मैंने अपनी अर्धांगिनी की उपेक्षा की और उसको मरने को छोड़ दिया।" पिता जी ने खतौली वाले लाला जियालाल की सिफ़ारिश की। उनको ४५०००) का लाभ

काबुल की लड़ाई पर जाने से हुआ। वापसी पर वह Treasurer, Bank of Bengal हो गए, उनके भाई लाला कुन्दनलाल के पुत्र खुशदिल प्रसाद मेरठ के नामी वकील हैं।

मेरठ में पिताजी की गहरी मुलाकात लाला गुलाब सिंह नाहर सिंह के घराने वालों से थी। लाला गणेशीलाल, लाला बनारसीदास आदि भाइयों से रोज़ मिलना होता था। अब भी उनके घराने के लोग सदर बाज़ार, मेरठ के प्रतिष्ठित नागरिक हैं।

१६ अगस्त, १८८० को पिताजी Purveyor to Left Wing of Her Majesty's 54 th. Regiment नियुक्त होकर दिल्ली आ गए। एक महीने पीछे १८ सितम्बर को जो European Troops (पल्टनें) Camp of Exercise (व्यायाम-प्रदर्शन) के वास्ते दिल्ली में एकत्रित हुए थे, उनके Purveyor नियुक्त कर दिये गए।

पिता जी बड़ी पहाड़ वाली गली के पास ठाकुर द्वारे के सामने, गुड़ वालों की कोठी के पास बड़े फाटक वाले मकान में रहते थे।

पहला दिल्ली दरबार १८७७

१ जनवरी, १८७७ को महारानी विक्टोरिया ने ईस्ट इंडिया कम्पनी से भारत का राज अपने अधिकार में लिया। इसके विज्ञापनार्थ दिल्ली में दरबार हुआ, भारतीय राजा महाराजा सब दरबार में बुलाए गए। कहा जाता है कि इतने महत्व का दरबार कभी कहीं नहीं हुआ। पिताजी दिल्ली में थे।

दिल्ली के विख्यात कोतवाल लच्छू सिंह कड़कड़ाते हुए जाड़े में लठ्ठे का चुस्त चूड़ीदार पाजामा, तन्ज़ेब का कुरता पहने घोड़े पर तने हुए सवार थे। बाहों पर जड़ाऊ जौशन कुरते में से चमक रहे थे। साफ़े के ज़रीदार तुर्रे दोनों कानों पर लटक रहे थे।

लच्छू सिंह कोतवाल की मट्टी की मूर्ति मैं अपने बचपन में बड़े चाव से दिवाली में मोल लेता था।

सुना है कि एक दफ़ा लच्छू सिंह जी किसी भयावह डाकू को पकड़ने अकेले घोड़े पर सवार हो, चल खड़े हुए। डाकू ने उन पर आक्रमण किया। सिर पर चोट आई, मगर डाकू को पकड़ कर बाँध लाए।

दिल्ली दरबार में राजा महाराजाओं की प्रतिभा, तथा लक्खी घोड़ा पिताजी ने देखा था। घोड़े का सौदागर उसके लाख रुपये मांगता था।

जैन रथ-यात्रा

१८७७ ही में ३०-३५ वर्ष पीछे दिल्ली के बाजारों में रथोत्सव करने का सौभाग्य जैनियों को प्राप्त हुआ। अधिकतर विघ्न बाधा हमारे अग्रवाल वैष्णव भाइयों ने उपस्थित की थी। उनका सरदार रम्मीमल चौधरी था। दिल्ली के डिप्टी कमिश्नर कर्नेल डेविस ने जैनियों की विशेष सहायता की और अन्ततः गवर्नर सर लेपिल ग्रिफ़न से स्वीकारता प्राप्त हुई। इस कार्य में पिताजी ने अग्रभाग लिया था। रथोत्सव, शान्तिपूर्वक प्रबंध की ज़िम्मेदारी ११ जैनियों और ११ वैष्णवों पर रक्खी गई थी। पिताजी उन ११ व्यक्तियों में थे, और लाला रम्मीमल वैष्णव की ओर से थे। कर्नेल डेविस ने करनाल, पानीपत, अम्बाला, रोहतक से पुलिस प्रबन्ध के वास्ते मंगाई थी। जैनियों की छतों पर पुलिस के सिपाही चौकीदारी के लिये नियुक्त कर दिये गये थे, क्योंकि जैन-जनता घरों को बन्द करके उत्सव में सम्मिलितार्थ चली गई थी। घंटों पहले से रथोत्सव की सड़कों पर अन्य सड़कों के मिलान के मार्ग बन्द कर दिये गये थे। कोतवाली के सामने रेल से उतरे हुए सैकड़ों जैनी पुलिस की रोक से विह्वल हो रहे थे। पिताजी यह देख कर कर्नेल डेविस के पास गये। उन्होंने पिताजी की ज़िम्मेदारी पर नाका खोल देने की परवानगी दे दी। पिताजी ने उच्च स्वर से कहा कि "भाइयों, 'जय जिनेन्द्र' कहते चलो तो उत्सव में शरीक हो सकते हो"। यह मन्त्र (Pass Word) ऐसा बलवान था कि जैनी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति नाके के पार न आ सका। शान्ति भङ्ग का रंचमात्र भी खटका न रहा। उत्सव सानन्द सम्पन्न हो गया।

दिल्ली की जैन पञ्चायत

१८८३-८४ की बात है कि दिल्ली जैन पंचायत में एक नाई के कारण आपस में वैमनस्य हो गया। सगवा नाई को उद्दण्डता, आदेशानुसार काम न करने के कारण पिताजी और उनसे सहमत मित्रों ने निकाल दिया। झुन्नू लाल चौधरी ने सगवा का पक्ष लिया। दोनों पक्ष में मारपीट होगई। मामला कचहरी तक गया। पञ्चायत में दो दल होगये। बीसे और चालीसे। पिताजी चालीसों में थे। उनके साथ पहले ४० व्यक्तियों ने दल बनाया था। पिताजी ने अपने पक्ष का संगठन "जैन प्रीति" नाम से किया। लाला श्रीराम वकील, लाला जानकीदास पंच, लाला धर्मदास, लाला जमनादास बजाज आदि उस दल के नेता थे।

नेता होने से जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसके उदाहरण रूप मुझे यह घटना याद है कि जाड़े की रात में जब पिताजी बुखार में पड़े हुए थे, एक गरीब जैनी भाई आया। उसका जवान भाई मर गया था, और रात हो जाने के कारण लोग उसको उठाने को तैयार न थे। उसने लाला जी से हाथ जोड़ कर कहा कि मेरी गरीबी के कारण चौधरी बिरादरी में खबर नहीं कराते और सूर्योदय होने तक घर की महिलाजन रोते पीटते अधमरी हो जावेंगी—"आप सहायता कीजिये"। पिताजी तुरन्त दुशाला ओढ़, लाठी लेकर, उठे। लोगों को जमा किया। शव के साथ श्मशान भूमि तक गए। और रात के २-३ बजे घर आये। इसका परिणाम यह हुआ कि गरीब भाइयों की शव-यात्रा भी रात को ही हो जाती थी, और काफी संख्या में लोग शरीक हो जाते थे।

इसी प्रसङ्ग में एक और बात याद आती है। एक अवसर पर गिरधरलाल जी* के सामने से एक स्त्री जनाने (रनिवास) में गई। वह सोने के कड़े हाथ में पहने थी। लाला जी ने पूछा कि यह किस घर की बहू है। उत्तर मिला कि यह नाइन है। लालाजी ने पञ्चायती नाई को बुला कर आदेश दिया कि नायन सदैव चाँदी के कड़े पहना करे, यही उसकी पहचान है। यदि नायन भी सोने के कड़े पहनेगी, तो नायन में और बहू में क्या भेद रहेगा।

आजकल तो नाई भाइयों से अधिक धनवान हो गये है। नायनें बहुओं से अधिक सजी-धजी रहती हैं। भाई नाइयों के दास हो रहे हैं।

मेरा जन्म-बालपन

मेरा जन्म, अजमेर प्रान्त अन्तर्गत, नसीराबाद छावनी में, बैशाख कृष्ण ४, सम्वत् १९३१, सन् १८७४, सूर्योदय समय हुआ।

मेरे जन्म से पहले मेरे ४ भाई बहिन गुज़र चुके थे। इस कारण मेरे नानाजी, श्रीयुत् भगत बलदेव सहाय जी के आग्रह से यह निश्चित हुआ कि मेरा जन्म नानाजी के घर पर हो।

पिताजी ने मेरा जन्म-पत्र ३५ फीट लम्बा एक प्रसिद्ध ज्योतिषी से बनवाया था। उसके अनुसार जन्म राशिचक्र इस प्रकार है—
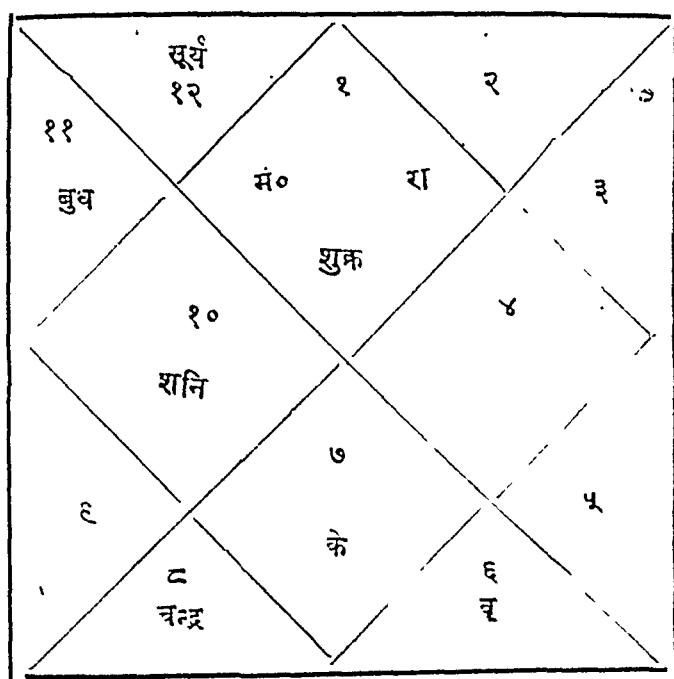
चन्द्र वासरे,
चन्द्र ष्ट १॥,
मेषलग्नोदये,
राशि ८,
स्वामीभौम,
अनुराधामें,
तृतीय चरणे,
ब्राह्मण वर्ग।

छठी के कुछ दिन पीछे ही मेरे दोनों कान छेद कर बाली पहना दी गई थी, दोनों हाथों में कड़े भी।

उन दिनों केरोसीन तेल का किसी ने नाम भी नहीं सुना था। सरसों के तेल से दीपक का प्रकाश होता था। सोते समय दीपक बुझा दिया जाता था।

एक रात सोते समय, अकस्मात मेरे हाथ का कड़ा कान की बाली में अटक गया। ज्यों-ज्यों मैं हाथ खींचता था, कान बाली से कटता जाता था, और मैं ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाता जाता था। दीपक जलाया गया, तो पता चला, कान कट गया, और खून बह रहा है। बाँयें कान की लौ अब भी इतनी कटी हुई है कि उसमें सुरमा डालने की सलाई आरपार जा सकती है। इस घटना के कारण नाना जी ने मेरा नाम "बूची" * रख दिया था।

करीब २ बरस की उमर में पिताजी के साथ मैं दिल्ली चला आया।

दिल्ली में "माता" अर्थात् चेचक की बीमारी का ज़ोर चला। अनेक शिशु इस भयानक रोग से जाते रहे। "माता" ने मुझ पर भी कृपा की। मेरी जान भी जोखम में पड़ गई थी। शुभ कर्मोदय से मैं जीवित रह गया। चेहरे पर माता के दाग अब तक मौजूद हैं। चेहरे और बदन का रंग तो मैला हो ही गया। गोरापन जाता रहा। "माता" मेरा रूप ले गई और मेरा नाम "कल्लू" रख दिया गया। मिडिल परीक्षा के प्रमाण-पत्र में मेरा नाम "कल्लूमल" लिखा है। लखनऊ कैनिंग कालिज में १८८७ में नवीं कक्षा में दाखिल होने पर मेरा नाम अजितप्रसाद लिखवाया गया। उन दिनों गोत्र या जैन नाम के आगे लिखने का रिवाज न था।

विद्यारम्भ

मेरी शिक्षा का श्रीगणेश, दिल्ली में पाँचवें वर्ष में हुआ। विद्यारम्भ के लड्डू बिरादरी में बटे। हम बड़ी पहाड़ वाली गली के एक बड़े फाटक वाले मकान में रहते थे। घर के नज़दीक ही एक पाठशाला थी। उसको "साल" कहते थे। "गुलियों" के फाटक के सामने एक दर में कुछ प्रौढ़ अवस्था के बालक बैठते थे। उससे मिले हुए एक मकान के बाहर, लम्बी कत्तर पर, टाट पर छोटी उमर के बच्चे लकड़ी की तख्ती पर, देसी कलम से, खड़िया से लिखना सीखते थे। खड़िया रखने वाली मिट्टी की कुल्हिया को "भोल" कहते थे। तख्ती को "पट्टी" कहते थे। उस पट्टी को बालक खुद धोते, उस पर मुलतानी मिट्टी घिसकर लगाते थे। "सूख-सूख पट्टी, चन्दन गट्टी, आवेगा राजा, महल चिनावेगा" आदि गीत गाते हुये, पट्टी को हिला-हिलाकर सुखाते थे। सूख जाने पर काँच के मोटे छल्ले से चिकनी करते थे। चिकनी करने को "घोटना" कहते थे और छल्ले को "घोटा"।

"साल" में केवल एक शिक्षक थे; उनको "पाधा जी" कहते थे। यह शब्द उपाध्याय का अपभ्रंश रूप मालूम पड़ता है। २५-३० बालक साल में पढ़ते थे। पाधाजी पिताजी के पास गए और कहा कि आपका बालक "१० पट्टियाँ पढ़ गया है"। एक पहाड़े को १ पट्टी कहा जाता था। पाधाजी ने ॥) प्रति पट्टी के हिसाब से ५) माँगे। उन दिनों माहवारी फ़ीस आदि का रिवाज नहीं था। प्रति पट्टी के हिसाब से पाधाजी को भेंट मिलती थी, या उत्सव के अवसरों पर—दशहरा, दिवाली, होली, आदि—बालक "सीधा" (भोज्य पदार्थ, फल आदि और कुछ नक़द) पाधाजी को अपनी-अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार

सविनय भेंट देते थे। पिताजी के कहने पर कि "पाधाजी, इस प्रकार तो आपको खूब आमदनी होती होगी", पाधाजी बोले कि "लालाजी, यदि सब ही बालक आप के पुत्र जैसे तीक्ष्ण बुद्धि हों तो निःसंदेह हमारी आमदनी अच्छी हो जाय, किन्तु अधिकतर बालक तो महीना भर में भी दो-चार पट्टी नहीं पढ़ पाते और न सब ही ॥) पट्टी दे सकते हैं; आप जैसे पुण्यवानों से ही हमारा काम चलता है"।

४० तक के पहाड़े याद कर लेने के बाद मैं सरकारी स्कूल में भरती कर दिया गया। वहाँ तीसरे दरजे तक हिसाब, भूगोल, इतिहास उर्दू लिपि और भाषा में पढ़ाया जाता था। इतिहास में मौलवी मुहम्मद हुसैन आज़ाद द्वारा रचित प्राचीन तथा अर्वाचीन भारत के इतिहास की कहानियाँ, सरल और रोचक भाषा में लिखी हुई पढ़ाई जाती थीं। भूगोल की पढ़ाई नकशे से होती थी। डेढ़-दो गज़ का नक़शा दीवार के सहारे लटका दिया जाता था। एक-एक करके प्रत्येक बालक खड़ा होकर उँगली से बताता था कि अमुक नगर वा अमुक नदी कहाँ है। कलकत्ते से बम्बई, लाहौर, दिल्ली, हैदराबाद, मदरास जाने का मार्ग किधर है और रास्ते में कौन-कौन मशहूर नगर पड़ेंगे। बालक उनके ज्ञानाभ्यास के अनुसार आगे-पीछे बिठाये जाते थे। इस प्रथा से तीक्ष्ण बुद्धि बालकों को उत्तेजना होती थी और सभी बालकों का ध्यान शिक्षण में लगा रहता था।

चौथी कक्षा से अँग्रेज़ी की पढ़ाई-लिखाई शुरू हो गई थी। अब तो लिखाई पर ध्यान ही नहीं दिया जाता। टाइप राइटिंग का रिवाज पड़ जाने से सुन्दर अक्षर लिखने का विचार ही मिट गया।

शाहजी के छज्जे से मिला हुआ सरकारी स्कूल था। सबसे अन्दर के दालान में मेरी उर्दू की पढ़ाई टाट पर बिठा कर शुरू कराई गई। तीसरे महीने, छठें महीने योग्यता अनुसार ऊपर की कक्षा में बालक को चढ़ा दिया जाता था। आधुनिक समय के कड़े नियम न थे।

स्कूल में २ पैसे रोज़ की वेढ़मी (आटे की कचौरी) मैं अवकाश के समय दोपहर को खा लेता था। एक पैसे की दो वेढ़मी मिलती थीं, जैसी आजकल एक आने की एक स्वास्थ्यनाशक वनस्पति घी की मिलती है। स्कूल का चौकीदार सब बालकों के पैसे एकत्र करके कचौरी ले आता था और सब को बाँट देता था।

वर्षा ऋतु में किताबों को सर पर रखके ऊपर से स्लेट ढक कर भीगता, छप-छप करता घर चला आता था। छतरी लगाने, नौकर के साथ लाने की शौकीनी या विलास-प्रियता उस ज़माने में बालकों ने नहीं सीखी थी। गरमी के दिनों में भी धूप से बचने का यही उपाय था कि पुस्तकों को सिर पर रखके स्लेट से ढक लेते थे। आजकल तो पुस्तक उठाकर चलना भी भार प्रतीत होता है।

घर पहुँचने पर मेरी दादीजी एक-एक ग्रास अपने हाथ से खिलाती थीं।

माता मनभावती का वियोग

१८८० में जब मैं स्कूल में भरती हुआ उसके कुछ महीने पीछे मेरी माता जी का शरीर शान्त हो गया।

वह कई वर्ष से क्षय रोग (tuberculosis) से पीड़ित थीं। शरीर सूख गया था। शक्ति का ह्रास हो गया था। वह लम्बी-पतली, गोरी, सुन्दर थीं। यदि मैं चित्रकारी जानता, तो उनका चित्र बना देता। उन दिनों परदे की कड़ी प्रथा थी। फोटोग्राफी का रिवाज़ नहीं चला था।

रात के ६ बज चुके थे। लेखा जाट को उसके घर रोटी खाने को भेज दिया था, माँ को दीर्घ शंका के लिये दादी जी ने उठाया लेकिन वह फिर लेट गईं। कहने लगीं—"मैं तो शिखरजी, गिरनार जी जाती हूँ", पिताजी दवा देने के लिये उठे।

दादी जी ने कहा "कल्लू को किस पर छोड़ रही है।" बोलीं "जिनका है, उनका जीता रहे", फिर चुप हो गईं। दादी जी ने कहा "यह तो चली, नीचे उतारो।" पिता जी गोदी में भर कर ज़ीने से उतार ले गए। भूमि तुरन्त शुद्ध करके वह पृथ्वी पर लिटा दी गईं और उनका प्राणान्त हो गया।

रात भर पिताजी मुझे छाती से लगाए नीचे बैठक में लेटे रहे। और दादी आदि रोती पीटती रहीं। सुबह लेखा जाट के कंधे पर मैं मातृ-शव के साथ जमुना जी के निगम्बोध घाट गया। घुटनों से ऊपर पानी में होकर कुछ दूर गये थे। मैंने चिता पर चन्दन रखा और देवी मनभावती का शरीर अग्नि की लपटों में समा गया।

उस ही साल एक दो महीना पीछे बुआ गंगा का भी देहावसान दोपहर के समय पिता जी की अनुपस्थिति में (वह किले दफ़्तर गए थे) हो गया। पेट फूल गया था। अम्माँ ८-१०-१५-२० रोज़ तक रातों बावली सी छज्जे में "गंगा" "गंगा" पुकारती रहती थीं। पड़ोसन, भुन्नू चौधरी की माँ वग़ैरा समझाती रहती थीं।

पिताजी का पुनर्विवाह

साल भर के अन्दर ही दादीजी के विशेष आग्रह के कारण, हमारे पड़ोस में रहने वाले लाला परमेष्ठीदास, जौहरीमल, रङ्गीलाल की बहन से जो करीब बारह बरस की थीं, पिता जी का पुनर्विवाह हो गया। वह मूर्ख, अनपढ़, संकीर्ण हृदया थी। लेकिन पिताजी का प्रेम उसने मुझ से बटवा लिया। बरात चढ़ने के समय मुझे हटा दिया गया क्योंकि यह रूढ़ि पड़ गई है कि पिता का मौड़ पुत्र न देखे। इस प्रथा की जड़ में बात तो यह थी कि पुत्र होने पर मनुष्य पुनर्विवाह न करे। मैं रोता बिलखता रह गया। आखिरकार मुझे जनवासे में जब मौड़ खुल चुका था, पहुँचा दिया गया। तब मैं चुप हुआ, और पिताजी की गोद में सो गया।

विवाह के कुछ दिन बाद विमाताजी को (जिनको मैं भाभी कहा करता था) लेकर पिताजी फूल वालों की सैर में गए। "फूल वालों की सैर" या "सैर गुलफ़रोश" दिल्ली का उन दिनों रईसाना शान्दार मेला होता था। दिल्ली से ११ मील पर एक छोटा-सा गाँव है जहाँ कुतबमीनार, दिल्ली की विख्यात, सतखनी लाट (स्तम्भ) है और शेख निज़ामुद्दीन चिश्ती की दरगाह है, एक विशाल कुण्ट है जिसमें पानी झर कर पहाड़ों की दरारों से आता है। उसको झरना या चश्मा कहते हैं, तैराक उस कुण्ड में तट पर ऊँचाई से कलाबाज़ी खाते हुए कूदते हैं, तैराकी का मेला होता है। ख्वाजा निज़ामउद्दीन औलिया की दरगाह (समाधि) पर फूलों के सुसज्जित गुंथे हुए विशाल पंखे चढ़ाये जाते हैं। एक से एक पंखा कारीगरी में, शोभा में, विशालता में बढ़ा-चढ़ा होता है। इसी कारण उसका नाम फूलवालों की सैर पड़ गया। सादेकारी की चाँदी की बच्चों अँगूठियाँ बहुधा बिकती थीं, और अन्य पदार्थों का, खाद्य वस्तु, चाट आदि का बाज़ार लगता था, 'सैर" की तिथि दिल्ली के रईस लोगों की सभा नियत करती थी।

और उस तिथि के घोषण रूप नफ़ीरी शहर के बाज़ारों में सवा महीने पहले बजती थी। पिताजी ने बाज़ार में ३ दिन के लिये एक कमरा, दूकान के ऊपर, २५) किराये पर लिया।

कुतब लाट के अब दो खन टूट गए हैं; पाँच खन शेष हैं। सीढ़ियों से जो गोलाकार बनी हुई हैं, चढ़ते हैं। एक-एक खन का घेरा छोटा होता चला गया है। प्रत्येक खन पर गोलाकार चबूतरा है। जहाँ खड़े होकर नीचे का दृश्य देखा जाता है। लाट पर अरबी भाषा और अरबी लिपि में कुरान के लेख खुदे हुए हैं। पिताजी भाभी को पीठ पर चढ़ाके ऊपर ले गए। मैं रोता हुआ साथ गया कि मैं पद्धी चढ़ूँगा, भाभी को उतार दो। पिताजी ने थोड़ी दूर मुझे भी चढ़ा लिया, फिर भाभी को चढ़ा लिया। मेरी गोदी-पद्धी छिन जाने से मुझे दुःख हुआ।

फिर पिताजी की बदली रुड़की की हो गई। मुझे साथ ले गये। रात को रोज़ मैं शाम से पिताजी से चिपट कर सोता। लेकिन आँख लगते ही मेरी जगह भाभी ले लेती। दिन की दुपहरी में माँ इसी बात पर तकरार होती थी। कुछ अरसे बाद दादी जी दिल्ली से आ गईं और मुझे माँ का प्यार मिल गया, किन्तु दादी के साथ भाभी (मेरी विमाता) का वर्ताव ठीक नहीं होता था, और आठवें दसवें दिन दादी पोते मिलकर किसी न किसी बात पर रो लेते थे।

दादी जी को मरते दम तक चैन न मिला। १८९६ में उनका स्वर्गवास दिल्ली में हुआ। मैं तार पाकर बनारस Cantt. से तांगे से मुगलसराय गया (रेल छूट गई थी) और वहाँ से mail से दिल्ली रात के २ बजे पहुँचा। दादी जी होश में थीं। विमला मेरी बहन को पूछा। बीमारी, ज्वर, सन्निपात बढ़ता गया। "ज्ञानी* बेटा आऊँ हूं"—कहती हुई चल बसीं। मैंने ही उनका अन्तिम संस्कार किया। उनके मरने से मेरे रोने के कारण और अवसर कम हो गए। मगर समय समय पर रोना पड़ ही जाता था।

---

* ज्ञानचन्द मेरी दादी का एकलौता पोता था।

खेल-कूद के दिन

रुड़की में मेरा लड़कपन, खेल-कूद का समय, प्रारम्भ हुआ और समाप्त भी हो गया।

रुड़की में हमारे घर के सामने लम्बा-चौड़ा मैदान था। पास ही तकिया (कब्रिस्तान) था, वहाँ इमली के वृक्ष थे। थोड़ी दूर पर "सोत" था। एक हौज़ रूप जलाशय में जमीन के अन्दर-अन्दर सोतों से पानी आकर चार टोंटियों से बाहर गिरता था। पानी गरमी के दिनों में बरफ़ सा ठंडा होता था। लोटे के बाहर भाप की बूँदें टपक पड़ती थीं। पानी रात-दिन चलता रहता था। एक नाले में आकर मिल जाता था, उस नाले में धोबी कपड़ा धोते थे। नाले से मिली हुई पनचक्की थी। नाले का पानी ऊँचाई से गिर कर चक्की के पहिये को चलाता जाता था। चक्की में आटा पिसता था और ऊपर के नाले में लोग नहाते और तैरते थे। सोत से ऊपर चढ़कर नहर थी, जो हरिद्वार की गंगा से काटकर लाई गई थी। रुड़की में वह नहर एक विशाल पुल के ऊपर बहती थी। पुल के नीचे सैलानी नदी का प्रवाह था और मीलों का खुला मैदान जिसको बरफ़ खाने का मैदान कहते थे। नहर से मिला हुआ एक भारी लोहे का कारखाना था।

घर के सामने वाले मैदान में मैं बालकों के साथ गुल्ली डंडा, लट्टू, गोली खेलता था। चाँदनी रात में कबड्डी और चादर छिपाव खेल होता था। काँच की, पत्थर की रङ्ग-बिरङ्गी गोलियाँ मोज़े में भरकर रखता था। इसी तरह लट्टू भी मोज़ा भरके जमा कर रखे थे। चादर छिपाव के खेल में दो पार्टियाँ अपने-अपने साथी चारपाई आदि की ओट में रखते थे। एक पार्टी का बालक चादर में लिपटा हुआ आता था और

दूसरी पार्टी वाला कोई लड़का यदि उसे पहचान लेता, तो वह बालक अलग बैठ जाता था। इसी प्रकार जब किसी पार्टी के सब बालक अलग बैठ जाते थे, तो वह पार्टी हार जाती थी।

बड़े लड़के, और नौकर लोग गेड़ी खेलते थे। गेड़ी के खेल में जलाने की लकड़ी को दूसरी लकड़ी से मारकर एक लकीर के पार किया जाता था। जो लकड़ी लकीर से पार हो जाती थी, उसको पार करने वाला जीत लेता था।

बरफ़ख़ाने के मैदान में; और अपनी-अपनी छतों से पतङ्गबाज़ी का कौतुक भी दर्शनीय होता था। माँझे से भरी हुई चरखियाँ तैयार रहती थीं। पतंगबाज़ माँझा अपने हाथ से सोडावाटर की बोतलें पीसकर तैयार करते थे। अँगुलियों पर पतले चमड़े के अँगुश्ताने पहनते थे। पेंच ढील से लड़ाते थे, खींच से नहीं। ढील देते-देते पतङ्ग आँख से ओझल हो जाते थे। पतङ्ग कट जाने पर डोर खुद। तोड़ देते थे, खींचते नहीं थे। घिस्से लगी डोर को काम में लाना अनुचित समझा जाता था। रुपयों की बाज़ी लगा कर भी पेंच लड़ाये जाते थे। अब वह बात स्वप्न में भी नहीं। अब तो कंट्रोल और टैक्स के भार से जीते रहना ही मुश्किल हो गया है। खाना, कपड़ा, औषधि, रहने के मकान आदि दुष्प्राप्य हैं। मानव जीवन पशुजीवन से भी बुरा हो गया है। आपस में छीना-झपटी, मार-काट चल रही है। नारकीय दृश्य साक्षात् हो रहा है।

रुड़की की पढ़ाई

खेल-कूद के साथ ही साथ रुड़की में अंग्रेज़ी पढ़ाई की जड़ भी गहरी और प्रबल जम गई।

सरकारी Orman स्कूल घर के पास ऊँचाई पर बना हुआ था। मदन गोपाल बंगाली महाशय हेडमास्टर थे। मेरी कक्षा के अंग्रेज़ी शिक्षक पंडित नन्दराम शर्मा थे। नन्दरामजी आदर्श गुरु थे। साक्षात् गुरुकुल के अधिष्ठाता रूप थे। निर्लोभी, श्रमप्रिय, सादगी से रहन-सहन, शिष्य वर्ग से पुत्र तुल्य व्यवहार उनके जीवन का उद्देश्य था।

गरमी के दिनों में स्कूल ११ बजे बन्द हो जाता था। झटपट दाल चावल खाकर मैं और ऐसे ही कुछ अन्य बालक नन्दरामजी के घर पहुँच जाते थे। उनका घर बस्ती के अन्तिम छोर पर था। हम चार पाँच विद्यार्थी उनके भोजन की तैयारी में लग जाते थे। दाल चावल चुगते शाक संवारते, आग सुलगाते, चौका साफ़ करते थे। भोजन वह स्वयं बनाते थे।

भोजनान्त काले कम्बल पर हम सब विद्यार्थियों को बिठाकर अंग्रेज़ी, हिसाब, सिखाते थे। शाम को हम सबको साथ लेकर वायु सेवनार्थ चलते थे। नहर की पटरी के किनारे-किनारे घुमाकर सब बच्चों को उन उनके घर पर पहुँचाकर अपने घर जाते थे। जो कुछ सफलता इस जीवन में प्राप्त हुई है वह उन्हीं की पिता तुल्य शिक्षादान का परिणाम है। मैं उनका यावज्जीवन कृतज्ञ रहूँगा। उनके भारी ऋण से उऋण होना असम्भव सा प्रतीत होता है।

उन दिनों मेरी स्मरण शक्ति आश्चर्य जनक थी। एक दफ़ा समझाने से मूलपाठ अर्थ सहित कण्ठस्थ हो जाता था। हर रोज़ स्कूल में सब

लड़कों से पुस्तक से पढ़वाया जाता था, और ठीक उच्चारण, ठीक पाठ, ठीक अर्थ करने पर नम्बर मिलते थे। मैं शीघ्र ही अपनी कक्षा में अव्वल नम्बर पा गया और अव्वल नम्बर कभी नहीं छोड़ा।

उस ज़माने का पाठ मुझको अब भी ज़बानी याद है !

Camel thou art good and mild,
Docile as a little child.
Thou art made for usefulness,
Man to comfort and to bless.
Thou dost clothe him, thou dost feed,
Thou dost lend to him thy speed.
And through wilds of trackless sand,
In the hot Arabian land,
Thou dost go untired and meek,
Day by day and week by week.

* * *

Over ridges, gullies, bridges,
Over bubbling rill and mill,
Highways, bye-ways, hollow, hill
Jumping, bumping, rocking, roaring
Like forty thousand giants snoring.

धार्मिक संस्कार

बचपन से दादी जी के साथ रहने से मेरे जीवन पर धार्मिक क्रियाओं का गहरा प्रभाव पड़ा, और उस प्रभाव से मुझे अत्यन्त लाभ हुआ। मैं अपनी दादी जी के साथ हर रोज़ मन्दिर जी दर्शन करने जाता था। रास्ते में पहले लाला हर सुखराय का "नया मन्दिर" पड़ता था। वहाँ के दर्शन करके फिर पंचायती मन्दिर, जो मोहल्ले खजूर की मस्जिद में है। वहाँ दर्शन करके शास्त्र सुनता था। शास्त्रसभा में पण्डित शिवचन्द्र पांडे जी संस्कृत भाषा में शास्त्र बखान करते थे। दो शास्त्र रोज पढ़े जाते थे—एक प्रथमानुयोग, दूसरा द्रव्यानुयोग। मैं ध्यान से सुनता था। पांडे जी मुझे अपने निकट गद्दी के पास स्थान देते थे, और "मुख्य श्रोता" कहते थे। पांडे जी ज्योतिष, वैद्यक के भी प्रौढ़ ज्ञाता थे। फ़ीस, भेंट कुछ नहीं लेते थे। दशलाक्षणी पर्व के दिनों में दस दिन तक श्री तत्त्वार्थाधिगम-मोक्ष-शास्त्र के दशाध्याय पर प्रवचन १ से ४ बजे तक करते थे। मन्दिर जी का विशाल चौक श्रोताजन से भरा होता था। आर्य समाजी तथा अन्य धर्मावलम्बी भी शास्त्र सभा में सम्मिलित होते थे। प्रश्नोत्तर और शंका समाधान होता था। दो ढाई वर्ष तक, छोटी उमर में मैंने गरमी और वर्षा ऋतु तक में रात्रि समय में जल तक पीने का त्याग किया था। भाद्रपद में, और विशेषतया अन्तिम दश दिन में, परिमित संख्या में वनस्पति का प्रयोग करता था। अनन्त चौदश का उपवास या एकाशन करता था।

दिल्ली में मोहल्ला धर्मपुरा में नया मन्दिर, नगर सेठ के कूचे का मन्दिर, जयसिंहपुरे का मन्दिर, मेरठ ज़िले में हस्तिनापुर का मन्दिर, तथा अन्य २२ जैन मन्दिर विविध नगरों में लाला हरसुखराय जी ने

बनवाए थे। इन सब २६ मन्दिरों में विशेष बात यह है कि मन्दिर में एक ही वेदी ३-४ गज़ ऊँची है। और उस वेदी में एक ही प्रतिबिम्ब है।

पुराना जैन मन्दिर तो दिल्ली के क़िले के सामने है, जो लाल मन्दिर कहलाता है। मुगलों के राज्य में लाल मन्दिर से मिला हुआ जो मैदान है, और अब परेड का मैदान कहलाता है, वहाँ उर्दू बाजार था, जौहरीयों तथा सर्राफे की दूकानें थी। वह बाजार १८५७ के बलवे में बरबाद होगया, जैन मन्दिर तोड़ दिये गए। श्रावकजन प्रतिमाओं को अपनी जान पर खेल कर ले भागे। और नए मन्दिर के उस कोने में विराजमान कर दी, जो ज़नानी ड्योढ़ी की तरफ है और कटघर कहलाता है।

लाला हरसुखराय जी का मन्दिर "नए" मन्दिर के नाम से विख्यात हो गया, क्योंकि पुराना मन्दिर तो लाल मन्दिर था। पंचायती मन्दिर और लाला मेहर चन्द जी का मेरु मन्दिर उस समय नहीं बने थे।

लाला हरसुखराय की बनवाई हुई एक ही वेदी थी। उस ही वेदी में श्री आदि नाथ भगवान की मूर्ति विराजमान है। महिला समाज ज़नानी ड्योढ़ी की तरफ़ के दालान से, और पुरुष समाज मरदानी ड्योढ़ी की तरफ़ के दालान से दर्शन करते थे। अब तो दोनों तरफ के दालानों में नव-निर्मित वेदियाँ और मूर्ति संग्रह है। वह दोनों नव-निर्मित वेदियाँ बनवानेवाले सद्-गृहस्थों के स्मारक रूप हैं। बीच की वेदी में स्थापित आदिनाथ भगवान की मूर्ति पूर्वप्रतिष्ठित हैं। लाला हरसुखराय ने मन्दिर तो २६ बनवाये; परन्तु पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा एक भी नहीं कराई, जिसका अब रिवाज पड़ गया है। मन्दिर के नीचे तहखाना है, उस तहखाने में बीच की वेदी के नीचे बराबर ठोस नीव ईंट चूने से चिनी गई है। मन्दिर के नीचे भी एक मंज़िल मज़बूत सुन्दर बनी हुई है। सेहन करीब १५-२० गज़ चौकोर है, मकराने से जड़ा है। सेहन का बरसाती पानी एक नाली से बह जाता है। लेकिन अब तक किसी

को यह पता नहीं लगा कि वह पानी कहाँ जाकर निकलता है। तहखाने में मैं नहीं गया और न मेरी जान में ऐसा कोई गया जिसको मैं जानता हूँ। मन्दिर में जाने का मरदानी ड्योढ़ी का दरवाज़ा और उस के ऊपर की बुरजी भी जवाहरात से जड़ी है; और वह पच्चीकारी की बारीक सुन्दर अनोखी कारीगरी है। मन्दिर के चारों तरफ़ किले की सी कंगूरेदार दीवार और परिक्रमा है। ऐसा विशाल मन्दिर दूसरा देखने में नहीं आया। इसकी कारीगरी ताजमहल की कारीगरी के समान बल्कि कहीं कहीं उससे बढ़ी हुई है। वेदी की कटनी की दीवार पर जो शेरों की जोड़ी है, उनकी मूछों के मुड़े हुए काले बाल इतनी कारीगरी से काट कर पच्ची किये गए हैं, कि कारीगर की कुशलता पर आश्चर्य होता है। इस वेदी और मन्दिर की लागत का अन्दाज़ा करना आजकल कठिन है। तिस पर भी मन्दिर में किसी स्थान पर भी लाला हरसुखराय ने अपना या अपने किसी पुरखा या कुटुम्बी जन का नाम नहीं लिखाया। उनको अपना नाम घोषित करने की तुच्छ ऐहिक इच्छा नहीं थी। बल्कि कहावत तो यह सुनी है कि जब सारा मन्दिर बन कर तय्यार हो गया, और केवल शिखर चढ़ना शेष रहा, तब लाला जी ने पंचायत एकत्रित करके घोषणा की कि इतना मन्दिर तो बन चुका, अब मेरी शक्ति इस को पूरा करने की नहीं है, यह पंचायती काम है, पंच ही इस को पूरा करें; पंच ही शिखर चढ़ावें। तब पंचायती चिट्ठे से शिखर चढ़ाया गया। इस उदासीनता, नम्रता, अपना नाम छिपाने के प्रयत्न के मुकाबिले में आधुनिक समय की नामवरी प्राप्त करने की तरकीब, लोलुपता को देख कर खेद होता है। इस पिछले ५० बरस में मन्दिर में बनी हुई सीढी के एक एक पत्थर और मन्दिर में चढ़ाई हुई पूजा की मेज़ आदि वस्तु पर दातारों के नाम मोटे अक्षरों में चमक रहे हैं। उन नामों के दर्शन पहले हो जाते हैं और पूज्य प्रतिमा के पीछे। अब धर्म की आड़ में व्यापार की वृद्धि की जाती है। धर्म

के बहाने से अपना नाम फैलाया जाता है। धर्म को रोज़गार का साधन बना रखा है। पटौंदा-महावीर (जयपुर) के महावीर भगवान को व्यापार में साझेदार बना कर उनका भाग भी निकाला जाता है और वहाँ मन्दिर जी के उपकरण, फर्श, मकानात आदि में नाम लिखा कर धर्मात्मा होने का सरटीफिकेट हासिल किया जाता है।

नये मन्दिर जी में एक पाठशाला भी सन् १८८६ में स्थापित हुई। उस पाठशाला का पहला विद्यार्थी मैं था। मैंने पहले दिन पंडित गणेश दत्त जी से लघु सिद्धान्त कौमुदी के १४ सूत्र पढ़े थे; और दूसरे दिन याद करके सुना दिये थे। और फिर ४-५ सूत्र रोज़ पढ़लेता था। पाठशाला ही में मैंने धर्माध्यापक से तत्त्वार्थ-सूत्र पढ़ा था। तत्त्वार्थ-सूत्र की परीक्षा लेने पंडित शिव चन्द्र पांडे नए मन्दिर में आए थे। मुझ से नवें अध्याय में दर्शन विशुद्धि आदि षोड़श भावना का पाठ पढ़वाया था। उसमें अन्तिम भावना को मैं ने "वात्सल्यत्व" पढ़ा था। पांडेजी ने कहा यह अशुद्ध है, "वत्सलत्व" या "वात्सल्य" होना चाहिये। मैंने कहा पुस्तक में "वात्सल्यत्व" ही लिखा है और पंडित जी ने "वात्सल्यत्व" ही पढ़ाया है। था भी ऐसा ही; मुझे परीक्षा में पूरे १०० अंक मिले। पाठशाला अब भी चल रही है, परन्तु पिछले ६० बरस में एक भी विद्यार्थी इस पाठशाला से उतना भी पढ़ कर नही निकला जितना मैं ने पढ़ लिया था। पाठशाला उसी प्राथमिक अवस्था में है।

शास्त्र सभा भी अब नाम मात्र को होती है। शास्त्र सभा में साधारण तया १० व्यक्ति से अधिक नहीं होते वह भी प्रथा पूर्ति रुप आजाते हैं। रात्रि-जागरण में दशलाक्षणी पर्व पर मन्दिर का चौक भर जाता था। अब वह बात भी नहीं। दिल्ली और अन्य स्थानों की जैन जनता की धार्मिक, आर्थिका, कौटुम्बिक समाजिक अवस्था में गिरावट ही दिखाई पड़ती है।

मिडिल स्कूल की परीक्षा और मेरे सहपाठी

रुड़की से पिताजी की बदली मसूरी पहाड़ की हो गई। मैं दादी जी के साथ दिल्ली आगया। भाई मोती लालाजी ने मुझे तिराहे के St. Stephens Mission School की पांचवीं कक्षा में भरती करवा दिया। वहाँ छह महीने पीछे, जैसा विश्वास था, श्री जानकी नाथ ईसाई हेडमास्टर ने छठी कक्षा में नहीं चढ़ाया। मोतीलाल जी ने मुझे उस स्कूल से उठा लिया, और उनकी कृपा तथा श्री भैरव प्रसाद जी हेडमास्टर के अनुग्रह से मैं सरकारी हाई स्कूल, काशमीरी दरवाज़े की छठी कक्षा में ले लिया गया।

श्री मोतीलाल जी लाला चंदामल के पुत्र और रायबहादुर मास्टर सागर चन्द के जंवाई थे। यह सतघरे में रहते थे। लाला चन्दामल को इनजीनियरी (नहर विभाग) के ऐकाउएटेएट पद से पेन्शन मिली थी। उनके मकान में दिन भर रायबहादुर सागरचन्द के पुत्र मोती सागर* और मैं मोतीलाल जी के साथ ताश, शतरंज आदि खेला करते थे। मैं और मोतीसागर दोनों छोटी पहाड़ वाली गली में रहते थे, सहपाठी थे, साथ ही स्कूल जाते थे, और साथ ही शाम को मोतीलाल जी के साथ वायु सेवनार्थ जाते थे। हमारे निकट में ही रहने वाले कोठी शिवसिंह राय निहाल सिंह के मालिक, सुलतान सिंह † और स्यालकोट के प्रतिष्ठित घराने वाले हरिश्चन्द्र भी मेरे सहपाठी तथा मित्र थे।

---

*डाक्टर सर मोतीसागर, ऐडवोकेट, जज हाई कोर्ट लाहौर, वाइस चांसलर, दिल्ली विश्वविद्यालय, चेयरमैन बोर्ड आफ् डाइरेक्टर्स पंजाब नैशनल बैंक।

† राय बहादुर सुलतान सिंह, आनरेरी मैजिस्ट्रेट।

छठी कक्षा से मुझको और मेरे कई सहपाठियों को छह मास में ही सातवीं कक्षा में ले लिया गया। सातवीं कक्षा से हम दस विद्यार्थियों ने प्रार्थना की कि हमारा Test Examination आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों के साथ ले लिया जाय, और परीक्षा में सफल होने पर हमारे नाम Departmental Anglo-Vernacular Middle School Examination के वास्ते भेज दिये जायें। हेडमास्टर साहब ने हमारी प्रार्थना स्वीकार नहीं की। हम लोगों ने एक साथ स्कूल छोड़ दिया, और प्राइवेट परीक्षा देने वालों की तरह फ़ीस भेजदी। उस ज़माने में इन दिनों जैसे कड़े नियम नहीं थे।

सातवीं कक्षा में फ़ारसी में सिकन्दर नामा, शाहनामा, तारीख़ मलकम, अख़लाक़-ए-जलाली, अख़लाक-ए-मोहिनी आदि के उद्धरण थे। सरकारी परीक्षा में उर्दू की जानकारी के लिये मैंने "तज़्करए-आब-हयात्" और पंडित रतननाथ सरशार द्वारा सम्पादित उपन्यास "फ़िसानै-आज़ाद" का अध्ययन किया था। उर्दू परीक्षा-पत्र के कुछ उद्धरणों से विदित होगा कि मिडिल की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिये कितनी योग्यता की आवश्यकता थी।

(१) उसको देख कर आग बगूला हो गया

(२) दिल गया हाथ से, लोगों ने कहा दिल आया

(३) दर-ए जल्लाद पे दी जाके जो दस्तक मैंने,

मौत बोली कि ठहर जा अभी आराम में है—

इन वाक्यों का मतलब सरल शब्दों में लिखना था।

मिडिल की परीक्षा में १० में से हम ७ उत्तीर्ण हुए। तत्पश्चात् मोतीसागर अपने पिता मास्टर सागरचन्द, इन्सपेक्टर ऑफ़ स्कूल्स, के पास लाहौर चले गए और मैं अपने पिताजी के पास लखनऊ चला आया। मेरा उनका पत्र-व्यवहार जारी रहा। हम दोनों बराबर शिक्षाध्ययन करते रहे और बराबर परीक्षा में उत्तीर्ण होते रहे। मोती सागर ने पंजाब

विश्वविद्यालय से, और मैंने अलाहाबाद विश्वविद्यालय से B. A. की उपाधि सन् १८६३ में प्राप्त की। मोती सागर के विवाह में मैं दिल्ली में सम्मिलित हुआ। उनकी पत्नी और उनकी बहन जो श्री मोतीलाल जी को व्याही थी सहसा घर में आग लग जाने से छत से कूद कर मर गईं। उनका दूसरा विवाह हो गया। मेरी उनकी मित्रता उनके जीते जी रही। सन् १६३० में हृदय गति रुक जाने से सहसा मोती सागर जी का प्राणान्त हो गया। इस ही प्रकार रायबहादुर सुलतानसिंह, हरिश्चन्द्र और उनके चचेरे भाई रतनलाल से मेरी बचपन की मित्रता इन लोगों के जीवन भर रही।

लखनऊ में कालिज की पढ़ाई

१८८७ की गरमी में मैं अम्माजी के साथ दिल्ली से लखनऊ आ गया। यहाँ नवीं कक्षा में, जिसको (Preparatory Entrance) भी कहते थे, और जो कैनिंग कालिज कैसर बाग में ही कालिज के साथ-साथ चलती थी, भरती हो गया। डाक्टर सुरेन्द्रनाथ सेन ऐडवोकेट और जज हाईकोर्ट अलाहाबाद भी कालिज में पढ़ते थे। उनके भाई बाबू उपेन्द्र नाथ सेन मेरे इतिहास अध्यापक थे। बाबू शरत् चन्द्र मुकरजी M. A. गणित अध्यापक, मिस्टर लाल बिहारी बोस अंग्रेज़ी भाषा अध्यापक, तथा पंडित शीतला प्रसाद बाजपेयी संस्कृत अध्यापक थे। मैंने संस्कृत उनसे पढ़ी थी। साल भर पीछे उन्होंने अध्यापकी छोड़ दी। वकालत की परीक्षा पास कर लेने पर मुन्सिफ़ नियत कर दिये गए, योग्यता की विशेषता के कारण सेशन्स जज, तथा हाईकोर्ट जयपुर के चीफ़ जस्टिस हो गए। उनके पुत्र सर गिरजा शंकर बाजपेयी आजकल भारत केन्द्रीय सरकार में Secretary, External Affairs हैं।

शरतचन्द मुकरजी का चित्र लखनऊ युनिवर्सिटी की टैगोर लाइब्रेरी में लगा हुआ है। लाल बिहारी बोस अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रौढ़ विद्वान थे। एन्ट्रेन्स परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर मैंने १२) मासिक सरकारी छात्र-वृत्ति प्राप्त की। एफ़०-ए० के युनिवर्सिटी परीक्षा में भी मैं ऊँचे नम्बरों से उत्तीर्ण हुआ, और १५) मासिक सरकारी छात्र-वृत्ति मुझे मिली। उन दिनों कालिज की फ़ीस केवल ३) मासिक थी। हर बरस मुझे कालिज से Websters' Dictionary, Beetons' Dictionary आदि पुस्तकें पारितोषिक में मिलती थीं।

स्मरण शक्ति ऐसी तीव्र थी कि Sir Walter Scott का Lay of the Last Minstrel, और Alexander Pope का

Essay on Man मैं और हरिहर नाथ मुत्तू* मिलकर पूरा बिना पुस्तक देखे कह जाते थे। कंठस्थ करने के लिए मैंने या हरिहर नाथ ने कुछ भी प्रयास नहीं किया। किसी विद्यार्थी को कंठ करता हुआ देख पाते थे, तो उसकी पुस्तक उठा लेते थे और कहते थे "रटेगा, मरेगा"।

Canning College में F. A. से M. A. तक के लिये केवल तीन विदेशी—M. J. White, A. W. Ward, A. H. Pirie और तीन या चार देशी अध्यापक थे। Principal White को १२००) मिलते थे। और शेष को ३००) से लगाकर ६००) तक।

B. A. में मैंने B. Course लिया। उन दिनों Science और Arts Faculty नहीं थीं। अंग्रेज़ी साहित्य के शिक्षक A. H. Pirie, Science और Mathematics के A. W. Ward थे, जो Cambridge के Wrangler थे। Prof. Ward दस बजे से पहले कालिज आ जाते थे। चार बजे बाद जाते थे। जाड़े में भी गरम कपड़ों के ऊपर सफ़ेद ज़ीन का कोट पहनते थे। खराद पर ख़ुद काम करते थे। यन्त्रों के पुरज़े बनाते थे। कपड़ों पर दाग धब्बे पड़ जाते थे। खड़े खड़े घंटों तक ज़बानी किताब देखे बिना पढ़ाते थे।

M. A. में M. J. White ने ६ मास तक Pope's Essay on Man की व्याख्या की, और शेष ६ मास में बाकी २५ पुस्तक १०० पृष्ठ रोज़ के हिसाब से समझा दीं।

Law Lecture को फ़ीस १) मासिक थी। और Law Professor को २००) मासिक वेतन मिलता था। Leslie Degruyther ने एक साल और Edward Chamier ने दूसरे साल Law Lectures दिये।

---

* मेरे सहपाठी जो Incometax Comissioner के पद से रिटायर हुए। इनके पुत्र राजनारायण मुत्तू आजकल लखनऊ में Incometax Commissioner के Personal Assistant हैं।

इन दोनों के lectures धारा-प्रवाही होते थे। Degruyther ने एक साल में केवल Limitation Act पर और Chamier ने Trusts Act पर Lecture दिये।

Leslie Degruyther Privy Council के नामी बैरिस्टर हो गये। उनके पत्र लंदन से मेरे नाम आते रहे। Edward Chamier, Sir Edward होकर अलाहाबाद हाई कोर्ट के जज, पटना हाईकोर्ट के Chief Justice, Bar Council के President और Secretary for State-in-Council के Legal Adviser हो गये थे।

Chamier महोदय ने तो सदैव मुझको अनेकों अवसरों पर सहायता दी। उन्हीं का कृपा-पात्र होने से मैं उन्नति पथ पर बढ़ता चला गया। Chamier महोदय कानूनी परीक्षा में परीक्षक थे। एक दिन मैं उनसे मिलने गया। बोले "विद्यार्थी मेरे सम्बन्ध में क्या कह रहे हैं।" मैंने कहा "आपको कोस रहे हैं, आपका प्रश्न-पत्र इतना क्लिष्ट था"। कहने लगे "वह मेरे अनुगृहीत होंगे, जब परीक्षा-परिणाम प्रकाशित होगा। प्रश्नोत्तरों को मैं उदार दृष्टि से देख रहा हूं। उत्तर ठीक या बेठीक। यदि युक्तियाँ ठीक हैं, तो मैं पूर्णाङ्क दे देता हूं। उत्तर लिखने वालों को वकील ही तो होना है। उनका कर्तव्य युक्ति उपस्थित करना है। निर्णय करना नहीं। निर्णय करने में भूल सबसे होती है। नीची कचहरी के निर्णय ऊपर की कचहरी से उलट जाते हैं, हाई कोर्ट के निर्णय प्रीवी काउन्सिल पलट देती है।"

Principal M. J. White, Profesr. A. H. Pirie, और A. W. Ward सदैव पिता-तुल्य प्रीति तथा कृपा सहायता करते रहे।

हमको कैनिंग कालिज के विद्यार्थी होने का यथोचित अभिमान था। और अपने अध्यापकों के प्रति अपार भक्ति तथा श्रद्धा थी। और अध्यापकों को भी हम विद्यार्थियों से प्रेम था।

शिक्षक चाहता था और प्रयत्न करता था कि उसका शिष्य ठोस विद्वान और सदाचारी हो। अच्छा नागरिक हो। आधुनिक समय की जैसी परिस्थिति नहीं थीं, कि शिक्षक अधिकाधिक वेतन के प्रलोभन में फँसे हैं, और विद्यार्थी केवल सरटीफ़िकेट प्राप्ति को, न कि ज्ञान प्राप्ति को अपना उद्देश्य समझते हैं।

उस ज़माने के विद्यार्थियों से इस समय के विद्यार्थी कुछ अधिक ज्ञानवान नहीं होते, यद्यपि पढ़ाई का खरचा अब इतना बढ़ा दिया गया है। और लाखों रुपया मकानात के बनाने में व्यय हो रहा है। वास्तविक शिक्षा घट गई है। आडम्बर और दिखावा बढ़ रहा है।

B. A की परीक्षा में भी मैं First रहा। Canning College Gold Medal मुझे मिला। मेरा नाम १८६३ की स्नातक सूची में स्वर्णाक्षरों में College Hall में लिखा गया था। अब भी लखनऊ युनिवर्सिटी के Bennett Hall में लिखा है। गोकरणनाथ मिश्र, जज चीफ़कोर्ट लखनऊ, रायसाहिब फूलचन्द राय Retired Executive Engineer, पूर्णचन्द्र विद्यान्त Retired Supervising Engineer भी उसी ज़माने में कैनिंग कालिज में पढ़ते थे। बाबूलाल मुरादाबाद, राय बहादुर मोहनलाल ऐडवोकेट हरदोई, हरिहर नाथ मुत्तू, शेख़ हबीबुल्ला Vice-Chancellor Lucknow University मेरे सहपाठी थे। मिरज़ा समी-उल्ला-बेग, चीफ़ जस्टिस रियासत हैदराबाद मुझ से एक-दो-साल पीछे थे।

जीवन-संग्राम-प्राथमिक प्रयत्न में असफलता

पूज्य पिताजी ने मुझे एफ़-ए में संस्कृत, और B. A. में B. Course—Science तथा Mathematics इस विचार से सिखाया था, कि उनकी महत्वाकांक्षा कि मैं I. C. S. उपाधि प्राप्त करूं, पूर्ण हो। I. C S. के नियमादि, और समुद्र पार यात्रा सम्बन्धी साहित्य सब मंगवा लिये थे।

Wellington की Eton जाते समय विदाई का चित्र हमारी बैठक में लगा हुआ था। उस चित्र का गहरा प्रभाव मेरे हृदय पर पड़ा था। उस चित्र को रोज़ देखा करता था।

Entrance में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने, १२) और फिर एफ.-ए. में १५) मासिक छात्र-वृत्ति पाने कालिज से सर्वोत्तम पास होने और Canning College स्वर्णपदक प्राप्त करने से मेरा उत्साह बढ़ गया था। Civil Surgeon से Health Certificate तथा अन्य आवश्यक प्रमाण-पत्र प्राप्त करके मैंने Gilchrist Scholarship के वास्ते प्रार्थना पत्र भेज दिया। २००) की वार्षिक छात्र-वृत्ति तथा लंदन का जाने आने का मार्ग-व्यय मिलता था। पूर्ण चन्द्र विद्यान्त M. A. को वह छात्र-वृत्ति प्रदान की गई, वह M. A. था, मैं B. A. ही। मैं चुप हो रहा। मुद्दत पीछे मुझे मालूम हुआ कि पूर्ण चन्द्र ने अपनी माता जी के विरोध करने पर इन्कार कर दिया था। और छात्र-वृत्ति पंजाब युनिवर्सिटी के एक छात्र को प्रदान कर दी गई। पिता जी के पास इतना धन बचा हुआ नहीं था, कि मुझे अपने खरचे से लंदन भेज देते। उन दिनों I. C. S.

का Competitive Examiuation भारत में नहीं होता था। मैं पिता जी की अनुमति से बम्बई गया। रास्ते के प्रसिद्ध नगर भी आते जाते देख लिये। बम्बई में मैं सेठ हीराचंद नेम चन्द शोलापुर वालों से मिला। उनका पत्र लेकर सेठ मानिक चन्द पानचन्द की कोठी के सेठ माणिक चन्द हीराचन्द J. P. से मिला। वीरचन्द राघोजी गांधी, श्वेताम्बर मुनि आत्मारामजी के प्रतिनिधि, जैन धर्म प्रचारार्थ Chicago Parliament of Religions में जा रहे थे; उन से मिला। उनके विदेश-गमन सम्बन्ध में एक वृहत् सभा हुई थी। उसमें मेज़ पर खड़े होकर मैंने उच्च स्वर में व्याख्यान दिया। किन्तु मेरा कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ। १६ बरस के विद्यार्थी को केवल B. A. हो जाने के कारण धन उधार मिलना असम्भव सा था। यह १८६३ की गरमियों की बात है।

बम्बई में करीब १५ दिन रहा। घूमा फिरा। थियेटर देखा समुद्र स्नान भी किया। दिन भर घूमने फिरने ही में गुज़रता था। उन दिनों आस्ट्रेलियन घोड़े ट्रैम खेंचते थे। जगह जगह घोड़े बदले जाते थे। बिजली का आविष्कार हिन्दुस्तान तक नहीं पहुँचा था। B. A. होना बड़ी बात समझी जाती थी। मुझको Government mint जहां रुपये ढाले जाते थे; Parsi Tower of Silence, David Sasoon Silk Mills आदि के Passes मिलने और सैर करने में ज़रा भी असुविधा नहीं हुई।

मारवाड़ी रीति-रिवाज; नन्हियाल का वर्णन

बम्बई जाते समय में नसीराबाद छावनी में अपने बड़े मावसा डूंगरसीदास के बेटे रामस्वरूप के विवाह में भी सम्मिलित हो गया था। डूंगरसीदास जी के घर पर ठहरा था। वहाँ मेरी छोटी मावसी धापां और उसकी बेटी गौरा भी थीं।

शादी से सम्बन्धित भातृभोज में भी गया था। चलती सड़क पर सब लोग ओकड़ु बैठ गए। हर व्यक्ति अपना लोटा अपने साथ ले गया था। मैं विचार संकट में था। मेरे लिये सब से अलग एक चौकी पर भोजन प्रबन्ध कर दिया गया। दो तीन और व्यक्ति भी मेरे साथ बिठा दिये गए। मैंने जो पानी भरी घंटी मेरे सामने रखी थी, उसको मुँह से लगा कर पानी पी लिया। इस पर और लोग हँसे। पूछने पर मालूम हुआ कि इस प्रांत में प्रथा है कि घंटी को ऊपर रखते हुए पानी मुँह में गिराकर पी जाते हैं। घंटी से मुँह लगाकर नहीं पीते। फिर तो मैंने दो तीन दिन में घर पर घंटी या गिलास के ऊपर से बिना मुँह लगाये पानी पीने का अभ्यास कर लिया।

इसी अवसर पर एक उल्लेखनीय घटना हुई। पिछली रात को रामस्वरूप जी की बहु बिदा होकर हमारे घर आई। गरमी के दिन थे, खुली छत पर हम लोग सो रहे थे। करीब ४ बजे किसी ने खबर दी कि रामस्वरूप की सासू ने ज़हर खा लिया; उसकी बुरी हालत है। नानाजी तुरन्त वहाँ गए। दिन निकले मैं भी गया। वहाँ मालूम हुआ कि "बिदा" हो जाने के पीछे रामस्वरूप जी के श्वसुर के पिता जी ने कहा कि "अब बेटी बिदा हो चुकी, मैं कृतकृत्य हो गया, कल बद्रीनाथ जी संघ यात्रार्थ जा रहा है, मैं भी संघ के साथ जाऊँगा, तीर्थयात्रा से जन्म सफल करूंगा।" यह सुन कर रामस्वरूप की सासू बोली "अभी

तो विवाह में भारी खर्च हुआ है; अब तुम और रुपया खर्च करने की सोच रहे हो; यह नहीं होगा।" उसके श्वसुर बोले कि "मेरा तो बुढ़ापा है; फिर संघ मिले या न मिले। चाहे जो खर्च हो, मैं तो ज़रूर जाऊँगा।" यह सुन कर वह अपना शिर पीटने लगी। कोठरी के किवाड़ बन्द कर लिये, चूड़ी पीस कर खा गई। जब पीड़ा हुई, तो चिल्लाई; किवाड़ तोड़े गए, उसकी हालत खराब थी, सूर्य निकलते प्राण निकल गए। नाना जी ने कहा कि लकड़ी जल्दी भिजवाओ। मैं और चार पाँच युवक नंगे पैर गरम बालू रेत पर चढ़ी धूप में उसकी रथी लेकर तेज़ कदम चले। शव दो मन से कम न था। श्मशान भूमि दूर थी। हम लोग पहुँच तो गए। लेकिन लकड़ी न पहुँच पाई थी, लकड़ी के आते ही चिता तय्यार की। ज्योंही शव को चिता पर रखा था कि थानेदार एक्के पर आ पहुँचा; लाश को उतरवा कर थाने पर लिवा लेगया। उस समय बहुत लोग पहुँच गए थे। नानाजी ने मुझे घर वापस भेज दिया। शव को पुलिस थाने से डाक्टरी के वास्ते भेजा गया; चीर-फाड़ के बाद वापस मिला। नानाजी आधी रात पीछे शव संस्कार करके घर लौटे। बाद में मुकदमा चला। कई सौ खर्च हुए, तब कहीं छुटकारा पाया।

उसी अवसर पर नानाजी ने मुझे मेरा जन्म स्थान दिखाया था।

मेरे नाना बल्देव सहाय जी "भक्त जी" के नाम से विख्यात थे। सामान्यतः लोगों को भक्त कहलाने का सौभाग्य ढलती उमर में प्राप्त होता है, किन्तु मेरे नानाजी भरी जवानी में भी "भक्त" कहलाते थे। वह श्री रामचन्द्र जी के भक्त थे। उनका आचार, व्यवहार, व्यापारिक जीवन सब रामभक्त का सा था। वह कपड़े की दूकान करते थे; किन्तु झूठे दाम बतलाना, धोखा देना, बुरे माल को अच्छा कहकर बेचना, कमती नापना, इत्यादि असत्य और मायाचारी से रहित सरल स्वभावी थे। धर्मानुरागी थे। श्रीकृष्ण जी में भी गाढ़ श्रद्धा थी। मगर उपासना

राम की करते थे। "मुकुट चक्र वंशी लिये, भले बने हो नाथ; हम तो मस्तक तब नमें, धनुष बाण लो हाथ।" राम लीला के दिनों में रामायण पाठ और भजन आरती में घंटों लीन रहते थे। पचासों भजन उनको याद थे; और आवाज़ इतनी तेज़ थी कि मरते दम तक उच्चस्वर से मग्न हो कर हर रोज़ सुबह शाम रात दिन भजन गाया करते थे।

उनके एक पुत्र और तीन पुत्रियां थी। पुत्र राम नरायण का शरीरान्त २० बरस की भरी जवानी में मेरठ में १८८० में हो गया था। उन्होंने विधवा पुत्र-वधू को दत्तक पुत्र दिलवा दिया। पुत्र-वधू और दत्तक पुत्र दोनों अयोग्य और कुल कलंक निकले। उनका कुछ पता न मालूम हुआ। इस दुर्घटना से भक्त जी संसार से विरक्त उदासीन हो गए। और शेष जीवन रामचन्द्र जी की उपासना में व्यतीत किया।

उनकी बड़ी बेटी भगवती देवी लाला डूंगरसीदास को नसीराबाद में व्याही थी। उनका स्वर्गवास ३०-३५ वर्ष हुए हो गया। मावसी जी का देहान्त १६३७ में हुआ। उनके बेटे रामस्वरुप जी का शरीरान्त १६३८ में हो गया।

रामस्वरूप जी के पहली स्त्री से चौथमल और प्यारेलाल पुत्र हुए, और दूसरी स्त्री से मदनलाल, माणिकचन्द और दामोदरदास। सब भाई अलग-अलग रहते हैं, और कारोबार भी अलग अलग है। चौथमल जी की दूकान का नाम Jack Stores है। प्यारेलाल Civil and Military Stores के नाम से, और मदनलाल Dungarsidas & Sons के नाम से काम करते हैं। तीनों शाखा महाजनी भी करती हैं। सुख संतान सम्पन्न, यश-प्रतिष्ठा प्राप्त नसीराबाद छावनी के नागरिक हैं। इनके वैवाहिक सम्बन्ध भी प्रतिष्ठित घरानों में हैं।

सबसे छोटी बेटी धापां लाला बालूराम को व्याही थी। वह B. B. C. I. Ry. में Permanent Way Inspector थे। क़रीब ३०-३५ बरस हुए उनका देहान्त हो गया। उनके केवल एक पुत्री गौरा

थी, जो नसीराबाद में ब्याही थी। गोरा की पुत्री ब्यावर में अच्छे घर ब्याही है। मैंने उसे और उसके बच्चे को ब्यावर में १६३७ में देखा था।

मैं अपने मावसा बालूराम के साथ ट्राली पर नसीराबाद से अजमेर गया था। अजमेर की सैर की थी।

आबू रोड पर लगातार कई दिन तक बारिश होते रहने से आबू पहाड़ की सड़क जगह जगह टूट गई थी; रस्ता चालू न था। मैं कई दिन तक आबू रोड ठहरा। एक श्वेताम्बर जैनी भाई के नाम परिचय ले गया था। वह रेल के दफ़्तर में काम करते थे। मैं करीब ढाई बजे पहुँचा था। रेलवे क्वार्टर स्टेशन के पास थे वहां कुली मेरा अस्बाब ले गया। वह दफ़्तर गए हुए थे। परिचय-पत्र पढ़ कर उनकी महिला बाहर आ गई; और मुझे सत्कार पूर्वक अन्दर लिवा ले गई। गरमी के दिन होते हुए भी मुझे गरम पानी दिया कि पैर धोलो। मैं स्नान करके, कपड़े बदल कर, आराम से बैठा था जब गृहपति आए, भोजन तय्यार हुआ। रसोई के पास के कमरे में मोटे मुलायम आसन बिछाये गए। संकोच में हो गया; क्यों कि मुझे रसोई के अन्दर धोती पहन कर भोजन की आदत थी। मुझे संकुचित देख कर उन्हों ने कहा कि "हमारा सारा घर रोज़ धोया जाता है, घर के अंदर जूता नहीं आता; विधर्मी मनुष्य अन्दर नहीं आता; आसन केवल भोजन लेने के काम आते हैं, हमारी घरकी महिला भोजन परसती हैं; इस पर भी यदि आप रसोई-घर में ही बैठ कर भोजन करना चाहें तो कोई आपत्ति नहीं है; वहां ही प्रबन्ध हो जायगा"। उनके इस प्रकार स्पष्टीकरण से मेरा "चौके में भोजन" करने का मिथ्याभ्रम उस दिन विलय हो गया।

एम०-ए०; एल०एल०-बी० उपाधि-प्राप्ति

बम्बई से हताश वापस आने पर, रुड़की इंजीनियरिंग कालिज की परीक्षा में बैठने का विचार इस कारण से छोड़ दिया कि मेरे चक्षु-विकार था; दूर की वस्तु भले प्रकार नहीं देख सकता था, और शायद यह दृष्टिदोष (myopea) इन्जिनियरी के काम में बाधक होता। M. A. की पढ़ाई का शौक था। प्रोफेसर Ward चाहते थे कि मैं Physics पढ़ूँ। मैं Chemistry का अध्ययन करना चाहता था। यह उनको मंज़ूर न था। अतः मजबूरी से अंग्रेज़ी साहित्य ही में M. A. पास करने का निश्चय किया। साथ ही साथ LL. B. की भी तैयारी करली।

मेरे अंग्रेज़ी ले लेने से Prof. Ward कुछ नाराज़ से हो गए। उनका कमरा पहले पड़ता था। Dr. White, Principal का सबसे आखिर में। एक दिन जैसे मैं जा रहा था, कहने लगे—"There goes apostate, deserted science". दूसरे दिन कहने लगे "Are you becoming a great poet?" "No, Sir" मैंने उत्तर दिया। "Agreat prose writer, I suppose"—मैं शरमा कर चला गया।

पिता जी की बदली लखनऊ से अलाहाबाद की हो गई थी। पंडित शिव नारायण वकील के भाई शिव दुलारे चाहते थे कि मैं उनके साथ रह कर कानून का अध्ययन करूँ। मैं उनके साथ, गोलागंज सड़क पर लम्बी लाल कोठी में जो लँगड़ी कोठी कहलाती थी रहने लगा। एक कहार मुझे रोटी बनाने और अन्य कार्यों में सहायता देता था।

१८६१ से १८६५ तक नवम्बर मास से वार्षिक परीक्षा मार्च-अप्रैल तक मैं रात्रि में भू-शयन करता था; पलंग पर नहीं सोता था। लैम्प

के पास ही पढ़ता पढ़ता सो जाता था। और जब आँख खुलती, फिर अध्ययन करने लगता था। अकसर करके करवट भी नहीं बदलता था। B. A., M. A., LL. B. की परीक्षाओं के अवसर में महीना दो महीना पहले अलाहाबाद चला जाता था। बाबूलाल मुरादाबाद, भगवतसहाय शाहजहाँपुर, मोहन लाल हरदोई वाले और मैं कटरा या करनलगंज में किराये का मकान लेकर साझे में नौकर रख कर रहते थे। २४ घण्टे में १४ घण्टे विद्याध्ययन में लगते थे। शाम को डेढ़-दो घंटे ऐल्फ्रेड पार्क में वायु सेवनार्थ जाते थे, वहाँ और स्थानों के विद्यार्थी मिलते थे। उनसे उनके कालिज प्रोफेसरों के जो परीक्षक होते थे नोट्स परिवर्तन कर लेते थे। घूमने फिरने में भी विद्याध्ययन की ही वार्ता होती थी।

मुझे थियेटर के नाटक देखने का व्यसन था। किन्तु L L. B. की तैयारी के समय दृढ़ संकल्प कर लिया था कि L L. B. डिगरी प्राप्त करने के बाद ही ऐसा करूँगा। थियेटर कम्पनी लखनऊ में आई। परन्तु मैंने अपना संकल्प पूरा किया। नवम्बर १८९४ में L L. B. और मार्च १८९५ में M. A. की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया।

विकालत का व्यवसाय

अप्रैल १८६५ में ५००) के स्टाम्प पर मैंने हाईकोर्ट, अलाहाबाद में विकालत का व्यवसाय करने की अनुमति प्राप्ति करली। अलाहाबाद ही में कचहरी जाना शुरू कर दिया। पंडित सुन्दर लाल, पंडित बल्देव राम दवे के भाई पं० लक्ष्मी चन्द से मेरी मित्रता थी। फिर बाबू वैद्यनाथ दास से भी मित्रता हो गई, जब मैं पानदरीबे में उनके मकान के पास वाले मकान में रहने लगा। कचहरी में कुवंर परमानन्द को सरकारी वकील की हैसियत से राजेन्द्र नाथ मुकर जी वकीज़ के विरुद्ध, काल्विन, दत्तीलाल आदि मुखिया वकील बैरिस्टरों के मुक़ाबिले में मुक़दमा करते देखता था। अन्य कचहरियों में भी बैठकर काम देखा करता था। हाईकोर्ट में भी कई दफ़ा बहस सुनने गया। लेकिन मुझे ख़ुद एक भी मुक़दमा ना मिला। कुछ दिनों बाद लखनऊ चला आया। लखनऊ में अम्माँ जी के साथ रौशनुद्दोला कचहरी के पास एक छोटे से मकान में जो फ़ैज़ाबाद के वकील राम सरनदास राय बहादुर का था, १०) किराये पर रहने लगा। एक मुन्शी भी रख लिया।

एक दिन की बात है कि १० बजे के करीब, एक व्यक्ति काग़ज़ लेकर मुन्शी के पास आया। मै नहा कर भोजन के वास्ते जाने को था। मुन्शी ने कहा जल्दी से कपड़ा पहन लीजिये, खाना बाद में लौट कर खाइयेगा। कमिश्नरी का मुकदमा रिसपोंडेंट का है"। मैं तय्यार हो गया, मुन्शी से कागज़ात मांगे, तो उसने नोटिस दे दिया, और कहा कि कचहरी की मिस्ल देख कर मुकदमा तय्यार कर लीजियेगा। कमिश्नर इजलास पर आगए थे। सरिश्ते दार से मिस्ल लेकर मैं पढ़ने लगा। मैं मुकदमें का सिर पैर कुछ भी समझ न पाया था कि सरिश्तेदार

ने मिस्ल वापस मांगली, कि अब आप का ही मुकदमा पेश होने को रह गया है। एक मुख़तार साहेब अपीलान्ट की तरफ़ से कहने लगे "मुकदमा तनकीहात मज़ीद की कायमी के बाद अदालत मातहत के फैसले के लिये वापस गया था। उन तनकीहात का फैसला अदालत मातहत ने सरासर ग़लत किया है, जो काबिल मन्ज़ूरी नहीं है। फैसला अपीलान्ट के हक़ में होना चाहिये था।" कमिश्नर साहेब सुनते रहे, फिर मुंह मेरी तरफ़ कर दिया। मैंने कहा कि "मुख़तार साहेब ने कोई खास बात नहीं कही है, जिसका जवाब दिया जाय। फैसला दुरुस्त है, अपील ख़ारिज होना चाहिये"। कमिश्नर साहेब उठ गए। थोड़ी देर बाद सरिश्तेदार इजलास पर आए, और हुकुम सुना दिया कि अपील ख़ारिज मै खरचा"। मै जीत गया। १०) पहले और १०) शुकराने के मिले। मगर मुझे नहीं मालुम कि मुकदमा क्या था। कमिश्नरी के अपील ६५ प्रतिशत इसी तरह ख़ारिज हो जाते थे। चल जाने पर वकालत के समान कोई रोज़गार आमदनी, आराम और इज्ज़त का नहीं है।

लखनऊ में मुझे कचहरी का काम मिलने लगा था। मगर अखबार में विज्ञापन देख कर मैंने रियासत हैदराबाद में Legislative Council के सेक्रेटरी की जगह के लिये प्रार्थना-पत्र भेज दिया। शीघ्र ही तार मिला "Come immediately to show aptitude for work." मैने उत्तर में तार दिया "Can't come immediately because of pending cases. Can come after a week." पिता जी को सलाह के वास्ते लिखा। यही भूल हुई। नहीं तो १०-१२ बरस पहले हाई कोर्ट जजी, हैदराबाद से पेन्शन पाता। उस समय तंखाह २५०) देने को कहा गया था। उस जगह पर किसी अन्य की नियुक्ति हो गई। मेरे तार का जवाब न मिला आत्मोन्नति का पहला अच्छा अवसर अनुभव-हीनता से मैंने खो दिया।

पिता जी की बदली अलाहाबाद से बनारस को हो गई। और १८९५ के अन्त या १८९६ के प्रारम्भ में मैं बनारस चला गया। बनारस में हम सदर बाजार में एक बङ्गले-नुमा मकान में रहते थे। सामने खुली ज़मीन और बागीचा था। दो तरफ़ चौड़ा बरामदा था। बनारस में केन्टूनमेंट मजिस्ट्रेट Major Ozzard थे। उनको दीवानी के मुक़दमात ख़फ़ीफ़ा ५००) तक के और फौज़दारी के मैजिस्ट्रेट दरजा अव्वल के अधिकार थे। उनकी कचहरी के सब मुक़दमात मुझको मिलने लगे। मेरी विकालत चल निकली। एक आदमी की बकरी चोरी गई। चोर का पता लग गया; उसने बकरी को मार कर खा लिया। बकरी की खाल पुलिस चोर के घर से ले आई। और बकरी वाले ने उस खाल को अपनी चोरी गई बकरी की खाल पहचान ली। मजिस्ट्रेट के पूछने पर कि खाल को वह किस प्रकार पहचान सका, बकरी वाले ने जवाब दिया "सरकार, यह अपना अपना हुनर है, आप लिखे कागज के अक्षर पहचानते हैं, जो हमको सब एक से प्रतीत होते हैं। हम अपनी बकरी की खाल पहचानते हैं, अपना अपना रोजगार सब कोई जानता है"।

ख़राब घी बेचने में एक बनिये का चालान बाज़ार चौधरी की शिकायत पर हो गया। चौधरी ने मेरे सवाल पर मान लिया कि उसने ब्राह्मणों को पूरी कचौरी खिलाने के वास्ते खरीदा और इस घी से पूरी कड़वी हो जाती है। मजिस्ट्रेट ने मेरे कहने पर पूरी उस घी में कचहरी में बनवा कर खुद चक्खी। पूरी में कड़वाहट न थी। बनिया निर्दोष ठहराया गया।

एक दफ़ा Major Ozzard की कचहरी में जाली सिक्का चलाने के मुक़दमे में दो व्यक्तियों का चालान हुआ। दोनों दुकानदार और आपस में रिश्तेदार थे। एक ने मुझे फ़ीस दी और यह कहा कि दूसरे की तरफ़ से वकालत कर दूँ। दूसरी पेशी पर उस व्यक्ति की तरफ़ से Mr. Pottingen Pleader को वकील किया गया, और उनसे भी कहा गया कि दोनों तरफ़ से विकालत करें। मेरा और Mr. Pottingen

दोनों का विकालत-नामा दोनों की तरफ़ से था। जिरह के वक्त Pottingen खड़े हो गये। जब मैं खड़ा हुआ, तो मैजिस्ट्रेट ने कहा कि दो दफ़ा जिरह के सवाल करने की इजाज़त नहीं दी जायगी। दोनों में से कोई एक दोनों अपराधियों की तरफ़ से जिरह करले। मैंने कहा कि मैं हाईकोर्ट वकील हूं और Pottingen District Court Pleader; अतः सीनियर होने से मुझे अधिकार है। Pottingen का कहना था कि वह उमर और तजुरबे में मुझसे कहीं बढ़ा-चढ़ा है। मैजिस्ट्रेट ने कहा कि एक एक व्यक्ति की तरफ़ से एक एक वकील जिरह करलें। अपराधियों ने यह फ़ैसला मंजूर कर लिया। दोनों अभियुक्तों को सज़ा हो गई। परन्तु अपील में जिसने मुझे वकील किया था वह निरपराध सिद्ध हुआ। और दूसरे की सज़ा कायम रही।

एक दूसरे मुकदमे में महादेव हलवाई के ख्वान्चे की मिठाई गोरे सिपाहियों ने लूट ली। पुलिस ने तहकीकात करके महादेव का चालान झूठी रिपोर्ट लिखाने में दफ़ा १८२ ताज़ीरात हिन्द में कर दिया। मेजर ओज़र्ड ने दफ़ा १८२ में सरसरी तहकीकात करके महादेव हलवाई को तीन महीने की कड़ी कैद की सज़ा करदी। उसका अपील नहीं हो सकता था। निगरानी सेशन्स जज ग्रीवन महोदय के सामने पेश हुई। मैंने बहस की कि यह मुकदमा दफ़ा २११ में नम्बरी होना चाहिये था। सरसरी दफ़ा १८२ में खिलाफ़ क़ानून हुआ। ग्रीवन साहब ने दिनभर बहस सुनी। महादेव को ज़मानत पर छोड़ दिया और मुकदमे की रिपोर्ट हाईकोर्ट को करदी कि यह फ़ैसला खिलाफ़ कानून हुआ। मुक़दमे की जाँच फिर से नम्बरी तरीके से की जाय। हाईकोर्ट अलाहाबाद में महादेव हलवाई ने अपनी तरफ़ से मि० रॉस ऑल्स्टन से बहस कराई। मगर हाईकोर्ट ने मुकदमा यह लिखवा कर वापस कर दिया कि ज़ाँच मुकदमे की १८२ में भी हो सकती थी। जब फिर ग्रीवन साहब के

सामने मामला पेश हुआ तो उन्होंने मुझे रॉस ऑल्स्टन का पत्र दिखलाया जिसमें उन्होंने लिखा था।

"The Court was in a facetious humour; and did not consider my arguments seriously. I am sorry for the result"

मैंने कहा कि हाईकोर्ट को मुकदमे का आखिरी फ़ैसला करना था; आप को तो अब कुछ अधिकार ही नहीं है। मि० ग्रीवन ने कहा कि अब फिर से हाइकोर्ट भेजना नामुनासिब होगा। ज़मानत मनसूख़ हो गई और महादेव हलवाई शेप सज़ा काट आया।

मि० ग्रीवन मेरी बहस से प्रभावित हुए और उन्होंने ज़ोरदार शब्दों में मेरी सिफ़ारिश मुन्सफ़ी के लिये हाईकोर्ट भेजदी। मुझे मालूम हुआ कि मेरी दरख़्वास्त पर यह हुकुम लिखा गया था कि "Give him the first chance."

लखनऊ में पुनरागमन

Oudh Local Laws की परीक्षा में मैं उत्तीर्ण हो चुका था। हाईकोर्ट में उपस्थित होने और बहस करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था।

नवम्बर १८९८ में पिता जी के साथ मैं लखनऊ आ गया। यहाँ आकर गणेशगञ्ज में ७) मासिक किराये पर रहने लगे। यह मकान मेरे सहपाठी वकील मुन्शी भगवत सहाय के पिता मुन्शी गंगा सहाय का था, जिन्होंने तहसीलदारी के ज़माने में मकान अपने बड़े बेटे काली सहाय के नाम से खरीद किया था। मुन्शी गंगा सहाय के देहान्त के पीछे, श्री भगवत सहाय ने मकान मुझे बेंच दिया। मैंने पुराना मकान खुदवाकर नीव से नया बनवाया और अजिताश्रम नाम रखा।

लखनऊ आकर मैंने जुडीशल कमिश्नरी में विकालत शुरू करदी। उन दिनों तीन जज थे—J. Deas, G. T. Spankie और W. Blaunerhassett. कचहरी गोमती नदी के तट पर उस मकान में होती थी जिसमें अब Board of Revenue के दोनों मेम्बरों के निवास-स्थान हैं। उसके सामने वाले मकान में मुहाफ़िज़खाना और नकल का दफ़्तर था।

चन्द्रपाल सिंह को फैज़ाबाद के सेशन्स जज मोहम्मद रफ़ीक़ ने फाँसी की सज़ा दी थी, उसकी तरफ़ से विशेश्वर नाथ वकील ने सेशन्स में बिना फ़ीस काम किया था। लखनऊ में वह मेरे नाम की तख़्ती देख कर उतर पड़े, और मुझ से कहा कि आप बिना फ़ीस के इस मुकदमें में काम करदें। मैंने उस वक्त तक फाँसी का कोई मुकदमा नहीं किया था। मुझे संकोच था कि मेरी अयोग्यता के कारण उसको फाँसी न हो जाय। लेकिन विशेश्वर नाथ ने समझाया कि यदि मैं न करूँगा तो भी

उसको फाँसी तो होगी ही क्योंकि उसके पास वकील की फ़ीस का रुपया नहीं है; और विशेश्वर नाथ जुडीशरी में काम नहीं कर सकते थे। मैं मान गया। विशेश्वर नाथ जी की मदद से मैंने मुकदमे की तैयारी की। दोनों जजों के बेंच के सामने दिन भर बहस की; आख़िर वक़्त में कोर्ट का ध्यान इस बात पर दिलाया कि सिवाय मरने वाले के आखिरी वक्त के बयान के कि "उस को चन्द्रपाल ने गंड़ासे से मारा" और कोई प्रमाण अभियुक्त के खिलाफ़ नहीं है। यह गवाही मरने वाले की माँ-बहन की स्पष्टतया झूठी है, क्योंकि Medical Jurisprudence की किताबों से सिद्ध होता है कि जैसे गहरे घाव मरने वाले के लगे थे, उन के लगने पर किसी मनुष्य में बोल सकने की शक्ति नहीं रह सकती थी; बल्कि मौत तुरन्त हो जानी चाहिये थी। इस पर मुझसे जजों ने पूछा कि सिविल सरजन से यह क्यों नहीं पूछा गया। मैंने जवाब दिया कि मजिस्ट्रेट के कोर्ट में कोई वकील अभियुक्त की तरफ़ से न था। सेशन्स कोर्ट में जज को दरख़्वास्त दी गई कि सिविल सरजन को यह बात पूछने के लिये बुलाया जाय। कोर्ट ने कहा कि अगर फ़ीस दाखिल की जाय, तो सिविल सर्जन को बुलाया जा सकता है। कहा गया कि अभियुक्त निर्धन है, सिविल सर्जन की फ़ीस नहीं दे सकता। उसकी दरख़्वास्त पर हुक्म लिख दिया जाय। कोर्ट ने दरख़्वास्त फेंक दी और कहा कि हलफ़नामा इस बात का दाखिल किया जाय। मैंने बाबू विशेश्वर नाथ का हलफ़ी बयान रजिस्ट्रार के सामने सही कराके दाखिल कर दिया। उस पर हुक्म हुआ कि सेशनजज सिविल सर्जन को बुलाकर उसका बयान लेकर भेज दे। मुकदमा फ़ैज़ाबाद वापस गया। वहां मालुम हुआ कि सिविल सर्जन पेंशन लेकर विलायत चले गए। मिसल वापस जुडीशरी में भेज दी गई। वहां फिर बहस हुई और बेंच ने हुक्म दिया कि जो सिविल सर्जन आजकल है, उसकी राय इस मामले में ली जाय। मुकदमा दो

बार फैज़ाबाद सेशन जज के यहां वापस आया। सिविल सर्जन ने कहा कि संभव तो है कि ऐसे घाव लगने के बाद मरने वाला बोल सके। मगर ऐसा होने की संभावना कम है। प्रश्न विशेष करने पर उसने मान लिया कि उसने अपने निजी अनुभव में ऐसा होते नहीं देखा, न जाना, न सुना। उसकी सम्मति का आधार पुस्तक-प्रमाण है और उस उदाहरण में मान लिया है कि उक्त व्यक्ति की जीवनशक्ति असाधारणतया बलवती थी। इस पुरुष की जीवन शक्ति वैसी ही बलवती थी, यह डाक्टर साहब नहीं कह सकते थे। तीसरी पेशी पर फिर बहस हो कर दोनों जजों ने सहमत हो कर अभियुक्त को संदिग्ध गवाही होने के कारण बरी कर दिया। यह लिखा कि प्रमाणित नहीं हुआ कि अभियुक्त ही ने उसे मारा था। मेरा और विशेश्वर नाथ का परिश्रम सफल हुआ। जेल से छूट कर चन्द्रपाल आया, और कृतज्ञता प्रकट करते हुऐ स्वीकार किया कि वास्तव में उसने ही दृगपाल का वध किया था। मगर पुलिस ने झूठे गवाह बनाए थे। असल में कोई गवाह मौजूद न था। ऐसा होता हैं कि सच्चे मुकदमे भी पुलिस की मूर्खता और झूठी गवाही बनाने के कारण छूट जाते हैं। और झूठे मुकदमों में निर्दोष आदमियों को प्राणदण्ड तक भोगना पड़ता है।

इस सफलता के कारण मेरा यश कचहरी में फैल गया। कुछ दिन पीछे कचहरी में Ross Scott और Chamier जज हो गए। और साप्ताहिक सूची में २००-२५० मुकदमे छपने लगे। Scott Judicial Commissioner बहुत शीघ्र निर्णय करते थे। वह कहा करते थे कि वकील को चाहिये कि दोयम अपील दीवानी, और निगरानी के मुकदमों में ५ मिनट में यह दिखलादे कि उसके मुकदमें में हस्तक्षेप की गुन्जायश है। बाबु लछमनदास वकील के निगरानी और second appeal दैनिक सूची में इतने छपते थे कि वह सब में नही पहुँच पाते थे। मैंने उनकी तरफ़ से बिना फ़ीस उनके मुकदमों में बहस करना

स्वीकार किया। और उन्होंने मुझे अपने मुकदमे देने शुरू कर दिये। इस प्रकार मुझे हर रोज़ दो-तीन-चार मुकदमों में उपस्थिति का अवसर मिल जाता था। मैं परिश्रम पूर्वक सरकारी मिसिल को देख कर पूर्णतया तय्यार करके बहस करता था। Mr. Ross Scott मेरे काम से सन्तुष्ट थे।

एक दिन मैं एक ५०००) से ऊपर की मालियत के अपील अव्वल में Mr. Scott के सामने बोल रहा था। मेरा मामला कमज़ोर था। Scott नाराज़ हो रहे थे। आखिरकार उन्हों ने कटु शब्द का प्रयोग करके मुझे रोकने का प्रयत्न किया। मैं भी अड़ गया। और जहां तक हो सका बोलता रहा। दूसरे दिन सनीचर को मैं Scott महोदय से कोठी पर मिलने गया और मैंने कहा कि-अगर आप मुझसे नाराज़ हैं तो मैं आप के सामने आना छोड़ दूँ। वह बोले मैं नारज़ नहीं हूं मगर तुम मेरा समय नष्ट कर रहे थे; और यह मैं सह नहीं सका। मैंने कहा कि यदि आप ज़रा धैर्यता से मेरी बात सुनलेते, तो मैं जल्दी ही अपना कथन समाप्त कर देता। क्रोधावेश में बात चीत होने से समय नष्ट हुआ। वह बोले "तुम मुन्सफी क्यों नहीं करलेते ? मैं तुम्हें तुरन्त मुन्सिफ कर दूँगा, और जल्दी ही पक्का कर दूँगा"। मैंने कृतज्ञता प्रकट करते हुए स्वीकृति देदी। सोमवार को कचहरी में जाते ही मुझे रजिस्ट्रार ने बुलाया और कहा कि मुन्सफ़ी करनी हो तो दरख्वास्त लिखलाओ और तुरन्त जाने की तय्यारी करलो। मैंने दरख्वास्त लिख कर देदी और मुझे रायबरेली में मुन्सफी पर भेज दिया गया। उन्हीं दिनों अलाहाबाद हाई कोर्ट ने मुझे जौनपुर की मुन्सफी पर नियुक्त किया। मैंने उससे इन्कार कर दिया। यदि मैं उसे मन्जूर कर लेता, तो सन् १९३४ में हाईकोर्ट की जजी से पेन्शन लेकर घर में विश्राम करता।

रायबरेली की मुन्सफ़ी

जून १९०१* में मैंने रायबरेली की मुन्सफ़ी का पद ग्रहण किया। कुंवर भारत सिंह डिस्ट्रिक्ट जज थे, और जज महोदय ने छुट्टी के दिन लखनऊ आने की इजाज़त दे दी थी।

मैंने निवास-स्थान के लिये बहुत प्रयत्न किया। जगह-जगह तलाश करने पर भी कहीं रहने के लिये मकान नहीं मिला। मैं रामप्रसाद डिस्ट्रिक्ट इञ्जीनियर, पेन्शनर के मकान में मेहमान की तरह तीन महीने रहा। उसी निमित्त से बात-बात में मेरी बेटी सरला के सम्बन्ध की बात बाबू रामप्रसाद जी के कनिष्ठ पुत्र हरिश्चन्द्र जी से पक्की हो गई और उनके पुत्र कृष्णचन्द्र से मित्रता हो गई। श्री कृष्णचन्द्र जी ने मुझे बाइसिकिल चढ़ना सिखाया।

मुन्सफ़ी के ज़माने में मैं गवाहों का बयान बोल-बोल कर लिखता था। असंगत (irrelevant) बातों को नहीं लिखता था। उभय पक्ष के वकीलों को यह अवसर रहता था कि यदि वह किसी बात को असंगत नहीं समझते, तो मेरा ध्यान उस ओर आकर्षित कर दें। बहस सुनने की आवश्यकता कम पड़ती थी। वकील स्वतः ही बहस नहीं करते थे। कह देते थे कि "आप तो सब समझ ही गए, बहस कुछ नहीं करनी है। फ़ैसला लिख दीजिए।"

---

*His Honour the Lieutenant Governor, North Western Provinces and Chief Commissioner of Oudh की राजाज्ञा शनिवार, जून १९०१ के Government Gazette, Volume XXIII Part I, में पृष्ठ ४५६ पर इस प्रकार प्रकाशित है:—

" No. II-586C- Babu Ajit Prasad, Pleader, Lucknow, to officiate as munsif of the Rae Bareli Munsifi in the Rae Bareli Judgeship, vice Babu Ram Prasad, on deputation."

इजराय डिगरी में, विशेषकर नीलाम जायदाद के मुकदमें बरसों पड़े रहते हैं। डिगरीदार उपस्थित होता है, तो ऋणी उपस्थित ही नहीं होता। और जब नीलाम का इश्तिहार जारी हो जाता है, तब उज़रदारी दाखिल कर देते हैं। मैं इजराय डिगरी की पहली पेशी पर ही जिसकी जायदाद नीलाम होने को है, उसको बुलाकर उससे खुद जायदाद का पूरा हाल—उसकी चौहद्दी, ज़मीन के दाम, बाज़ारी बिकरी की दर, लकड़ी, लोहे, मसाले के दाम, किराये की आमदनी, उस पर यदि कोई किसी का देना हो, सारी जायदाद की बिकरी के दाम, ग्राहक यदि कोई है तो उन ग्राहकों का पता इत्यादि—सब हाल पूछकर फिर इश्तिहार नीलाम जारी करता था, जिसमें फिर जायदाद के बिकजाने में व्यर्थ की देरी न हो।

मैं प्रति दिन तीन दफ़ा अरज़ी देने वालों की पुकार, और मौखिक शिकायत करने वालों की पुकार करवाता था और ऐसा करने से प्रजा को सुविधा हो जाती थी और कर्मचारियों को अत्याचार का अवसर नहीं मिलता था। आजकल हाकिम प्रमादी हो गए हैं और कर्मचारियों का अत्याचार, घूसखोरी अत्यन्त बढ़ गई है।

———

पिता जी का स्वर्गारोहण

रुड़की से मसूरी की बदली होने पर पिताजी ने लंढौर बाज़ार में शास्त्र सभा की स्थापना की। वहाँ एक मकान में दिन प्रतिदिन पिताजी रात को शास्त्र पढ़ते थे। नए-नए भजन बनाते थे, जो महावीर स्वामी तथा नेमिनाथजी की भक्ति और गुणगान से परिपूर्ण थे। उनकी भजनावली खो गई। कुछ पंक्तियाँ जो याद रह गई हैं, लिखे देता हूं।

(१)

क्योंकर न दो जहान में उसको जज़ा मिले,
जिसको कि महावीर सा मुश्किलकुशा मिले

(२)

नेमी सा इस जहान में देखा नहीं कहीं,
हमसर कोई भी उसका हुआ ही नहीं कहीं

(३)

फेंका सिंगार और लिया बन का रास्ता,
ऐसी तपस्या की है कि जैसी नहीं कहीं

(४)

अरदास देवीदास की है यह ही बार-बार,
खिदमत में मुझको अपनी ही रखो, नहीं कहीं

मसूरी से पिताजी की दिल्ली की बदली हो गई, फिर लखनऊ की। लखनऊ सन् १८८७ से १८६४ तक रहे। वहाँ से इलाहाबाद, फिर बनारस की बदली हो गई। बनारस में पिता जी चार बरस रहे। वहाँ

उनको चितराल के युद्धस्थान पर जाने का आदेश मिला। चितराल जाना वह नहीं चाहते थे। महीनों पत्र-व्यवहार और कई दफ़ा मेडिकल बोर्ड के सामने पेश होने पर अन्ततः उनको रुग्ण होने के कारण पेन्शन दी गई और सन् १८६८ में लखनऊ आ गये। लखनऊ आकर इसी मकान में रहे, जो अब अजिताश्रम कहलाता है, और गणेशगञ्ज डाकखाने के सामने है। घर से बाहर काम या व्यायाम न करने से उनका स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता गया। अन्ततः मई सन् १६०८ में ६२ बरस की उमर में उनका प्राणान्त मेरे घुटने पर सिर रक्खे हुये हो गया।

विमाता और उसकी सन्तान के प्रति व्यवहार

अम्मा जी के देहान्त पर* मेरा लड़कपन खतम हो गया। मुझे पूरा प्यार देने वाला कोई न रहा। पिता जी को मुझसे काफ़ी प्रेम था, जितना भाभी, विमल, विमला, जिनेन्द्र में बट कर मेरे हिस्से में आ सकता था। मगर मैं अपने हिस्से से अधिक चाहता था, और इस भूल के कारण असन्तुष्ट रहता था। मैंने भाभी की काफ़ी इज्ज़त की, और पिता जी के शरीर शान्त होने के पीछे बराबर २५) मासिक उनको देता रहा। विमल चन्द्र प्रसाद (फुल्लो) को मैं पुत्रवत समझता था। उसका जन्म बेटी सरला से ६ मास पहले हुआ था। उसकी सगाई में, जो सतघरे दिल्ली के मुन्शी रिश्क लाल, फौज़दार रियासत अलवर, की पोती और महावीर प्रसाद की बेटी से हुई थी, सरला† की माता जी के सब आभूषण जो उनकी स्त्री-धन सम्पत्ति थी, चढ़ा दिये गये थे। महावीर प्रसाद अपनी पत्नी और बेटी सहित मुसलमान हो गये। आभूषण सब वापस मिल गए, सगाई टूट गई। मैंने विमल के नाम वसीयत कर दी थी, कि वह मेरी सब जायदाद का मेरे मरने पर मालिक होगा।

विमला का विवाह सम्बन्ध मैंने बुलन्द राय B. A., LL. B. के सुपुत्र प्रोफ़ेसर जियाराम M. A. से पक्का कराया। विवाह का कई हज़ार का सारा खर्च मैंने किया।

मेरा भाई विमल फ़रवरी सन् १९०७ में गिल्टी की महामारी (bubonic plague) के आक्रमण से ३ दिन तड़प कर मर गया। उसके शमी तकसन वस्त्र सब जैन अनाथालय को दे दिये। सब पुस्तकें

---

* देखिये पृष्ठ ३२ † मेरी ज्येष्ठ पुत्री

Central Hindu College Library को प्रदान करदी। उसके असामयिक शरीरान्त का मुझे अत्यन्त दुःख हुआ।

विमला बहेन।१९११ में शाहदरा-दिल्ली में प्रसूत-गृह में विदा हो गई। भाभी दिल्ली में १९३६ में चल बसीं। उनका अन्तिम शरीर संस्कार मैंने किया। उनके तीनों भाई भी गुज़र गए। जिनेन्द्र बचपन से अपाहज था। हाथ-पाँव टेढ़े (Ricketty) थे। उठना-बैठना दुष्कर था। दो-ढाई हज़ार लगाकर आटे की चक्की उसको करवा दी थी। नौकर काम करते थे, जिनेन्द्र डोली में जाता-आता था, दुकान पर बैठता था। जिनेन्द्र भी १९४५ में परलोक सिधारा।

———

सरकारी विकालत

राय बरेली में तीन महीने तक मुन्सफ़ी करके मैं लखनऊ वापस आ गया। मेरी वापसी के कुछ सप्ताह पश्चात् बाबू हरगोविन्द दयाल, सरकारी वकील, लखनऊ ने एक साल की छुट्टी की दरख्वास्त दी। उनके स्थान पर काम करने के लिए District Judge ने बैरिस्टर जगदीश शंकर मिश्र की, और Deputy Commissioner ने बैरिस्टर Frank Oniell की सिफ़ारिश Legal Remembrancer को भेजी।

मैंने अपनी दरख्वास्त के साथ Spankie और Chamier जुडीशल कमिशनरों के प्रशंसापत्र लगा दिये और Scott महोदय के कहने से लिख दिया कि मेरी योग्यता के विषय में जुडीशल कमिशनर Scott I. C. S. से (जो लखनऊ में बरसों सेशन जज रहे थे, और A. O. Hume के दामाद थे) पूछ लिया जाय। Legal Remembrancer ने पूरी मिसल इस सम्बन्ध की Ross Scott के पास भेज दी कि उनकी राय में कौन सा व्यक्ति सरकारी वकील का काम करने के वास्ते अधिकतम उपयोगी हो सकता है। Scott महोदय ने उत्तर में लिख भेजा कि सबसे अधिक योग्यतम केवल अजीत प्रसाद ही हैं। ऐसी परिस्थिति में, जब स्थानीय उच्च पदाधिकारियों की इस प्रकार भिन्न सम्मितियाँ थीं, Legal Remembrancer ने सारे कागज़ Lieutenant Governor Sir Anthony MacDonnel की सेवा में आदेशार्थ भेज दिये, और गवर्नमेंट का आदेश हुआ "Appoint Ajit Prasada."

नवम्बर १६०१ में मैंने बाबू हरगोविन्द दयाल से लखनऊ जिले के Public Prosecutor and Government Pleader के पद की ज़िम्मेदारी ले ली, और काम करने लगा।

उन दिनों बाराबंकी ज़िला लखनऊ Sessions Division में मिला हुआ था। लखनऊ का जज बाराबंकी जाकर सेशन्स का काम करता था।

सरकारी विकालत के संस्मरण

(१)

१६०३ के अन्तिम महीनों में देवी सहाय Clerk, Bank of Bengal (जो अब Imperial Bank of India कहलाता है) १००००) का जाली चेक बनाकर बैंक को ठगने के अपराध में शरीक होने के कारण सेशन सुपुर्द हुआ। इस जाल फ़रेब में उसके साथी एक पठान को सरकारी माफ़ी देकर, सरकारी गवाह बनाया गया। अभियोग को सिद्ध करने के लिये अन्य प्रमाण पर्याप्त मात्रा में न थे। मैंने रिपोर्ट की कि समर्थक प्रमाण और एकत्रित किए जावें। उपस्थित प्रमाण अपराधी को दण्डित निश्चित करने के वास्ते पर्याप्त न थे। इस पर डिप्टी कमिश्नर ने Legal Remembrancer को रिपोर्ट की, और J. N. Pajose Special Counsel नियत किए गये। C. H. Cordeux बैंक की ओर से उपस्थित रहे। पुलिस ने तहक़ीक़ात करते समय देवी सहाय की मेज़ की दराज़ के कागज़ एक लिफ़ाफ़े में बन्द करके पेश कर दिए, और वह बन्द लिफ़ाफ़ा वैसा का वैसा ही प्रमाण-पत्र के समान Exihibit हो गया। देवी सहाय के बैरिस्टर के कहने पर कि बन्द लिफ़ाफ़ा प्रमाण-पत्र नहीं बन सकता, क्या मालूम उसमें आम-ख़ास क्या है, लिफ़ाफ़ा खोला गया और उसमें से कितने ही पत्र ऐसे निकल आए, जिनसे सिद्ध होगया कि देवी सहाय को उन दिनों रुपये की बड़ी ज़रूरत थी, और जाल-फ़रेब करने का निमित्त कारण निश्चित हो गया। देवी सहाय को कड़ी क़ैद की सज़ा हुई।

मुझको इन बातों के स्पष्टीकरणार्थ इलाहाबाद जाना पड़ा। मैं अपनी बेटी सरला के विवाह में ३ बजे रात के समय दिल्ली पहुँचा

जब फेरे हो रहे थे। झूठी चुगली पीठ पीछे अत्यन्त हानिकर होती है, और सरकारी काम विशेष करके खुफ़िया रिपोर्टों पर हुआ करता है।

(२)

पंडित अर्जुन लाल सेठी को पुलिस की खुफ़िया रिपोर्टों के आधार पर ही ७ बरस एकान्त कारागार में रहना पड़ा। दिल्ली में जब Sir Charles Cleveland से मिलने गया तो उन्होंने कहा "You come to me highly recommended; but on a hopeless mission. The man is a canker to the community. Here is the file. Take it in the next room. Study it, and see me again" "आप की सिफ़ारिश बहुत ऊँची है, किन्तु आपका काम निराशाप्रद है। यह व्यक्ति समाज का कलंक है, इस मिसल को पास के कमरे में ले जाकर पढ़ो, और फिर मुझसे मिलो।"

मैंने कहा कि मैं आपके गुप्त कागज़ों को देखना उचित नहीं समझता। मैं केवल इतना चाहता हूं कि आप एक भी आदमी को बुलाकर मेरे सामने उससे पूछिये, यदि कुछ भी वह अर्जुन लाल सेठी के विरुद्ध कहे तो मुझे उससे कुछ प्रश्न कर लेने दीजिये। तत् पश्चात् मैं कुछ नहीं कहूंगा। वह बोले "यह तो तुम्हारे क़ानूनी ढङ्ग हैं। हमारा तरीक़ा जांच करने का इससे भिन्न है।" "मैं तो यह तरीक़ा जानता हूं, दूसरा कोई नहीं।" यह कह कर मैं सलाम करके चला आया।

(३)

ऐसा ही लखनऊ के कोतवाल गणेश प्रसाद सिंह के केस में हुआ था। गुप्त साप्ताहिक रिपोर्ट में गणेश प्रसाद सिंह, राय बहादुर आनरेबिल बाबू श्रीराम, डाक्टर नवीन चन्द्र मित्र, बाबू गंगा प्रसाद

वर्मा, पंडित विशुन नारायण दर आदि प्रतिष्ठित स्थानीय सज्जनों के विरुद्ध रिपोर्ट किया करता था कि इन लोगों ने सरकार के विरोध में संगठन कर रक्खा है, और सलाह मशविरा किया करते हैं। जब कोतवाल पर रिश्वत लेने के लिये प्रयत्न करने और लाला किदारनाथ जैन के विरुद्ध झूठा आरोप लगाने का मुक़दमा चला, तो सेशन कोर्ट में जज Denman के सामने D. I. G. Police Sherrer ने गवाही दी कि कोतवाल ऐसी रिपोर्ट दिया करता था। कोतवाल का कहना था कि इसी कारण उस पर झूठा मुक़दमा लगवाया गया है। किन्तु जज महोदय ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। गणेश प्रसाद को सज़ा हुई और वह, यह सुना गया है कि, जेल में दो बरस बाद मर गया।

गुप्त बातों पर एकतरफ़ा श्रद्धान करके किसी व्यक्ति की स्वतंत्रता हरण करना, उसको कारागार में ठूंस देना घोर अत्याचार है। अंग्रेज़ी राज्य की यह प्रथा भारतीय स्वराज्य के समय अधिकतर बल पकड़ गई है। Secretariat में अब भी Confidential Report पर भरोसा किया जाता है। अधिकारी वर्ग की योग्यता अयोग्यता का निश्चय गुप्त पत्र पर ही निर्भर है। अंग्रेज़ों की पूरी नकल की जा रही है, बल्कि उनके ज़माने से अधिकतर अत्याचार हो रहा है।

(४)

पाटनदीन ब्राह्मण प्रख्यात डाकू था। दूर-दूर तक डाके डालता था। उसकी टोली थी। उसका छोटा डील, छरेरा बदन, फ़ुरतीलापन असाधारण था। आँखों में चमक और तेज ऐसा था कि उसके सामने नज़र नहीं ठहरती थी। देखने वाले की आँख नीची हो जाती थी। मैंने उसको कटहरे में हथकड़ी, बेड़ी लगे हुए देखा है। लेकिन तब भी उसकी आँख से आँख मिलाना मुशकिल था।

मुद्दतों तक उसकी गिरफ़्तारी के लिये पारितोषिक अखबारों में छपता रहा। फिर Superintendent Police Goutiere ने तमाम बाराबंकी ज़िले की पुलिस लगाकर ज़िले भर को घेर लिया। घेरे को छोटा करता गया; जिसमें पाटनदीन निकल कर भाग न सके, तिस पर भी वह उसको पकड़ न सके। फिर पुलिस ने उसकी रखैल एक नाउन को जो उसके भाई के संरक्षण में रहती थी, पकड़ लिया। अपनी रखैल की गिरफ़्तारी को सुनकर पाटनदीन स्वतः अपनी इच्छा से बाराबंकी आ गया और अपने आपको पकड़वा दिया। सुना है कि पुलिस वालों ने गिरफ़्तारी की रिपोर्ट लिखकर इनाम प्राप्त कर लिया। गिरफ़्तारी के बाद पाटनदीन को एक पुलिस के काम में रुकावट डालने के अपराध में क़ैद की सज़ा हो गई। पाटनदीन ने जेल से अपील भेजा, और उसमें प्रार्थना की कि "मुझको बुलवा लिया जाय, मैं अपनी आत्मकहानी अपने आप वर्णन करूँगा।" कुमार परमानन्द सेशन्सजज ने पाटनदीन को जेल से बुलवा लिया। मैं सरकार की ओर से मौजूद था। पाटनदीन हथकड़ी, बेड़ी से जकड़ा हुआ पेश किया गया। कुमार साहेब ने मुझसे कहा "Ajit Prasada, Is this not contempt of court ?" मैंने कहा "This a violent criminal and hence he has been produced in fetters and handcuffs". उन्होंने कहा "I must take the risk of my position". मैंने Court Inspecter से कह कर पाटनदीन की हथकड़ी खुलवा दी। उसने हाथ जोड़ कर नम्रता पूर्वक जो कहना था, कहा। कुमार साहेब ने ध्यान से सुना, और पाटनदीन को रुखसत कर दिया। यह था व्यक्तित्व का महत्व और प्रभाव।

उसी पाटनदीन के ऊपर मुन्नू अहीर का वध करने का अभियोग चला। एक अंगरेज़ I.C.S. जज थे, पाटनदीन का कोई वकील न

था। जब उससे कहता था कि पुलिस के गवाह से प्रश्न करोगे तो वह कहता था "गवाह झूठा है, आप मुझे सज़ा नहीं दे सकते; आपका क़लम नहीं चलेगा; रुक जायगा—गवाह झूठा है।" जिन दिनों यह मुक़दमा होता था जजसाहेब के निवासस्थान पर रात दिन पहरा रहता था। ऐसा ही पहरा बराबर रहा जब कि पाटनदीन के विरुद्ध डाका और गिरोहबन्दी के मुक़दमे चले। जिस दिन मुन्नू का वध करने के मामले में हुक्म सुनाया गया पाटनदीन, हाथ कमर के पीछे हथकड़ी से जकड़े हुए, पैरों में बेड़ियां पड़ी हुई, और कमर से रस्सी बंधी हुई, कचहरी के बरामदे से ५-६ गज़ दूर दरख्त के नीचे बिठाया गया था। जज साहेब बरामदे में खड़े हुए, और हुक्म सुनाया कि "तुमको फांसी से प्राणदण्ड दिया जाता है, इसका अपील करना हो तो सात दिन के अन्दर अपील करो"। इतना कहना था कि पाटनदीन बंधा जकड़ा होने पर भी शेर की तरह झपटा और जज को माँ-बहिन की गालियां देता रहा, सिपाही जो रस्सियां पकड़े थे वह भी कई क़दम तक घिसट आये। जज तो तुरन्त बंगले में घुस गये।

उन दिनों कचहरी से जेल तक क़ैदी और अभियुक्त पैदल ही ले जाये जाते थे। हवालात के सिपाहियों से मैंने जो बातचीत पाटनदीन और अन्य हवालातियों में हुई सुनी। वह इस प्रकार थी :

पाटनदीन—"कहो भाई मथुरा और बिन्द्रा, मुन्नू अहीर को तुमने क़तल किया या मैंने ?" मथुरा-बिन्द्रा—"भदियासी की डकैती में तुम गए थे या हम ?"

सुना गया था कि सच्ची बात यह थी कि भदियासी ज़िला सीतापुर की डकैती पाटनदीन ने की थी मगर उसमें मथुरा और बिन्द्रा को सज़ा

हुई। मुन्नू अहीर का क़तल मथुरा और बिन्द्रा ने किया था मगर उसके क़तल की सज़ा में पाटनदीन को फाँसी हुई। पुलिस ने दोनों मुक़दमों में झूठे गवाह बनाये और जज ने उन्हीं झूठे गवाहों को सच्चा मानकर सज़ा का हुकुम सुनाया जो आखिर तक क़ायम रहा। यह भी सुना है कि फाँसी के तख्ते पर चढ़े हुए पाटनदीन ने कहा कि मुन्नू अहीर के क़तल करने को उसने मथुरा और बिन्द्रा पासियों को भेजा था, और उन्होंने वापस आकर कहा था कि मुन्नू को क़तल कर आये। मगर जिन गवाहों के बयान पर जज ने फाँसी का हुकुम दिया वह गवाह झूठे पुलिस के बनाये हुए थे। कुमार परमानन्द, बाबू ज्वालाप्रसाद, पण्डित सीतलाप्रसाद वाजपेई ऐसे जज थे जो भली प्रकार छान बीन कर मुक़दमों का फ़ैसला करते थे।

(५)

बाबू ज्वालाप्रसाद सेशन्स जज के सामने बाराबंकी में एक मुक़दमा पेश हुआ, जिसमें ९-१० बरस के बालक पर यह अभियोग लगाया गया था कि उसने एक ८-९ बरस के बालक का चांदी का कड़ा उतार लिया और उसको कुएं में ढकेल दिया। जब मुकदमा पेश हुआ ज्वालाप्रसाद जज ने उस ८-९ बरस के बच्चे से स्वतः बातचीत शुरू कर दी। उस बातचीत में वह बच्चा जो सबक़ पुलिस ने पढ़ाया था वह तो भूल गया और असली बात कह गया कि जिस दिन की यह बात है उस दिन हम दोनों साथ खेल रहे थे। बन्दर बनकर कुआं फाँद रहे थे। कुआं फांदने में मैं गिर गया। मेरी टांग इस लड़के ने पकड़ ली। कड़ा ढीला था वह इसके हाथ में रह गया। मैं कुएं में गिर गया। रौला होने पर मैं कुएं से निकाल लिया गया। इस तरह जांच करने पर असली बात का पता लग गया।

(६)

एक अंगरेज़ जज के सामने अभियुक्त पर दिन दोपहर के समय छप्पर पर आग लगाने का जुर्म लगाया गया। गवाहों का कहना था कि अभियुक्त जलता हुआ कंडा लेकर आया छप्पर में रखकर आग लगा दी

और भाग गया। बाद में पकड़ा गया। असेसरों में एक वृद्ध मुसलमान ज़मीदार लम्बी सफ़ेद दाढ़ी वाला सरपंच था। उसने पूछने पर कहा कि "सरकार की अमलदारी में ऐसा हो नहीं सकता कि दिन दोपहरे कोई किसी के छप्पर में आग लगा दे। और अगर ऐसा होता तो गवाह आग लगाने वाले को भागने न देते, बल्कि पकड़ कर उसी आग में झोंक देते।" जज ने असेसरों की राय न मानी। चार बरस कड़ी क़ैद की सज़ा कर दी। अपील से वह सज़ा कट गई और अभियुक्त निर्दोष ठहराया गया।

(७)

चौक मोहल्ला लखनऊ के लाला प्रभुदयाल अग्रवाले के पास १०८ दाने की मोतियों की माला थी। मोती छोटे बड़े उतार चढ़ाव के थे। वह उसको बेचना चाहते थे। धर्मचन्द्र और उसके साथी, प्रभुदयाल जी को कानपुर ले गए। वहां एक धर्मशाला में मारवाड़ी सेठ को माला दिखाई। माला पसन्द आ गई; और १३०००) पर सौदा पक्का हो गया। सेठ जी ने ७ गिन्नी प्रभुदयाल जी को दे दी; और माला डिबिया में बन्द करके मोहर लगाकर प्रभुदयाल जी को दे दी; और कहा कि बाकी के दाम जब भेज देंगे तब हम माला तुमसे मंगवा लेंगे। महीनों गुज़र गए और सेठ जी का पत्र न आया। प्रभुदयाल जी को शक हुआ और वकीलों के पास गए। सबने यही कहा कि तुम्हारे पास कोई गवाह है। प्रभुदयाल जी ने कहा कि मैं तो अकेला माला बेचने गया था। वकीलों ने कहा कि बग़ैर गवाही के मुक़दमा नहीं चल सकता। प्रभुदयाल जी मेरे पास आए और कहा कि हमें धोका देकर हमारी माला लोगों ने उड़ा ली; हमें यह शक है कि असली माला की जगह झूठे मोतियों की माला बन्द करके हमें दे दी गई है, और हमारी माला धर्मचन्द वगैरह चालाकी से हथिया ले गये। हमने चोरों के पते पर कई रजिस्ट्री खत लिखे, मगर वह वापस आगये, सेठ जी का पता न लगा। वकील लोग कहते हैं कि बग़ैर गवाही के मुक़दमा नहीं चलेगा। १०००) प्रभुदयाल जी ने मुझे फ़ीस के दिये।

में उनको लेकर सिटी मजिस्ट्रेट के बंगले पर गया और सब हाल कहा। प्रभुदयाल बाहर बैठे थे उनको अन्दर बुलाकर मैजिस्ट्रेट ने उनका बयान लिख लिया। मेरे कहने पर धर्मचन्द्र के मकान की तलाशी और उसकी गिरफ़्तारी का वारन्ट मुझे दे दिया। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट से मैंने शहर कोतवाल के लिये चिट्ठी ले ली। कोतवाली से मदद लेकर मैं खुद धर्मचन्द्र के मकान पर चौक में रात को गया। मकान अंदर से बंद था कई घंटे बाद जब उससे कहा गया कि सीढ़ियां लगाकर पुलिस सिपाही मकान में उतरेंगे तो धर्मचन्द्र ने दरवाज़ा खोला। तलाशी से कुछ माल नहीं मिला। प्रभुदयाल जी के संबन्धी सीताराम थानेदार सरकारी पेन्शन पाते थे इस मुक़द्दमे की तहक़ीक़ात के लिये मैंने सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस से सीताराम को मुकर्रर करा लिया। दूसरे दिन सीताराम बनारस रवाना हो गये और छुन्नूलाल के यहां जो उनके रिश्तेदार थे जाकर ठहरे। छुन्नूलाल भी धर्मचन्द्र के साथ प्रभुदयाल जी को लिवाकर कानपुर गये थे। छुन्नूलाल घर पर नहीं थे। सीताराम ने उनके बेटे से कहा कि एक मोतियों की माला का ग्राहक मौजूद है; अगर तुम्हारे पास हो तो सौदा तुरन्त हो जाय और हमें भी कुछ फ़ायदा हो जाय। बेटे ने कहा कि लाला एक मोतियों की माला लेकर बम्बई बेचने गये हैं। छुन्नूलाल का बम्बई का पता बेटे से पूछकर सीताराम ने मुझे तार से खबर दी। मैंने तुरन्त कमिश्नर पुलिस बम्बई को तार देकर छुन्नूलाल को गिरफ़्तार करवा दिया। छुन्नूलाल ने माला को तोड़ कर कुछ मोती बम्बई में जौहरियों को बेचे थे। वह मोती भी मिल गये। और पता लगाकर सीताराम ने ८६ मोती पूना, मथुरा, दिल्ली, आदि नगरों से निकाले। छुन्नूलाल धर्मचन्द्र गिरफ़तार हो गये। मुक़दमा जांच के वास्ते कानपुर भेज दिया गया। मैंने अपनी नियुक्ति इस मुक़दमे के चलाने के लिये करा ली।

पुलिस की तरफ़ से एक C.I.D. Inspector तहकीकात कर रहे थे। उन्होंने धर्मशाला कानपुर के बाहर के कुछ दूकानदार गवाही के लिये तय्यार किये थे; और मुझसे आग्रह किया कि उनको पेश करूँ। मैं जानता था कि वह झूठे गवाह थे। मैंने केवल प्रभुदयाल को पेश किया, और उसने जिरह के प्रश्न के उत्तर में कहा कि "मैंने अपने मोती इस कारण कचहरी में पहचान लिये कि यह बहुमूल्य माला के थे, जिसको मैं समय समय पर देखता था, जिसका एक-एक मोती मेरे हृदय पर अंकित है। यहां देख कर, मिलान और पहिचान करके कहता हूं कि यह मोती मेरी माला के हैं। अगर यह मोती ऐसे ही और मोतियों में मिला दिये जावें तो मैं इनको नहीं पहचान सकूँगा।" छुन्नूलाल और धर्मचन्द्र दोनों को २-२ साल की कड़ी कैद की सज़ा होगई।

अपील में सेशन जज ने दोनों को निर्दोष ठहराया। जज महोदय ने लिखा कि बिखरे मोतियों की पहिचान हो ही नहीं सकती, असम्भव है। यद्यपि जिरह के सवाल में प्रभुदयाल ने यह बात मानली थी कि अगर उसकी माला के मोती वैसे ही मोतियों में मिला दिये जावें तो वह नहीं पहचान सकता था, मैंने जज के सामने कहा था कि संसार में दो वस्तु बिल्कुल एक सी होती ही नहीं। यदि एक सी होती तो दो कही ही नहीं जाती। उसने इस युक्ति को यह कह कर टाल दिया कि यह तो तर्क (philosophy) की युक्ति है, व्यवहारिक बात नहीं है।

सरकारी अपील करने से कानपुर के जिलाधीश ने इंकार कर दिया।

मैंने Ross Alston के ज़रिये सरकारी अपील Government Advocate से करा दी और इलाहाबाद हाईकोर्ट से छुन्नूलाल और धर्मचन्द्र दोनों को २-२ साल की कड़ी कैद की सज़ा हुई और काटनी पड़ी। ८६ मोती प्रभुदयाल को मिले।

ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर

१६१० में मैं जयपुर नगर All-India Jaina Association के वार्षिक अधिवेशन का अध्यक्ष निर्वाचित होकर गया था। पंडित अर्जुन लाल सेठी B. A. ने जैन शिक्षण समिति स्थापित कर रखी थी। एक आदर्श संस्था थी। श्री दयाचन्द्र गोयलीय छात्रालय के प्रबन्धक और समिति में अध्यापक भी थे। श्री गेंदनलाल, सेक्रेटरी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड रुड़की, तथा भगवानदीन असिस्टेंट स्टेशन मास्टर, दिल्ली निवासी जगन्नाथ जौहरी जी, भाई मोतीलाल गर्ग से भी वहाँ मिलना हुआ और सर्वसम्मति से यह निश्चय हो गया कि एक ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना की जाय।

अर्जुनलाल सेठी, मैं और अन्य मित्र भी गुरुकुल कांगड़ी, ऋषिकुल ज्वालापुर का निरीक्षण करने गए। परिणाम-स्वरूप पहली मई १६११, अक्षय तृतीया के दिन हस्तिनापुर में श्री ऐलक पन्नालाल जी के आशीर्वाद पूर्वक "श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम" की स्थापना हुई। अक्षय तृतीया की पुण्य तिथि में राजा श्रेयांस ने हस्तिनापुर में एक वर्ष के उपवास के पश्चात् इक्षुरस का आहार किया था।

लाला हरसुख दास जी द्वारा ऊँचाई पर निर्मित विशाल कोट रूप जिनालय का शिखर कोस भर से दिखाई पड़ता है। जिनालय से मिली हुई विशाल धर्मशाला में ब्रह्मचर्याश्रम का काम प्रारम्भ कर दिया गया। भगवानदीन जी ने २६ वर्ष की अवस्था में नौकरी से त्यागपत्र दे दिया।

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लिया, ३ बरस के इकलौते बेटे को आश्रम का ब्रह्मचारी बना दिया, उनकी पत्नी भी आजन्म ब्रह्मचर्य धारण कर बम्बई श्राविकाश्रम चली गईं। उनकी विधवा बहिन ने दिल्ली में जैन महिलाश्रम स्थापित कर लिया। आश्रम में ८ बरस से कम उमर के

बालक भरती किये जाते थे। भोजन, वस्त्र, पढ़ाई का सब खर्च आश्रम के ऊपर था। अधिष्ठातापद का भार भगवानदीन जी ने स्वतः स्वीकार किया। मन्त्री पद मुझको दिया गया। उस समय मैं लखनऊ का सरकारी वकील था। हस्तिनापुर मेरठ से २६ मील था। १६ मील घोड़ा-गाड़ी का रास्ता था, शेष ७ मील बैलगाड़ी से या पैदल जाना पड़ता था। तीन दिन की छुट्टी में भी मैं लखनऊ से हस्तिनापुर चला जाया करता था।

सरकार उन दिनों ऐसी संस्थाओं को संदेह की दृष्टि से देखती थी। जहाँ तक मालूम हुआ एक पुलिस का जासूस आश्रम में अध्यापक रूप से लगा हुआ था।

जैन समाज के पंडिताई पेशा और धनिक वर्ग को भी आश्रम के कार्य में पूर्ण श्रद्धा नहीं थी।

परिणाम यह हुआ कि ४ बरस पीछे मुझको और भगवानदीन जी को आश्रम के काम से त्यागपत्र देना पड़ा और एक-एक करके गेंदनलाल जी, ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी, भाई मोतीलाल जी, जौहरी जगन्नाथ जी बाबू सूरजभान जी आदि सब आश्रम से हट गए। नाम को वह आश्रम अब भी मथुरा नगर के चौरासी स्थान पर चल रहा है किन्तु जो बात सोची थी वह असम्भव हो गई।

दृष्टान्त रूप इतना लिखना अनुचित न होगा कि जब मैंने त्याग पत्र दिया, उस समय ६० ब्रह्मचारी आश्रम में थे। शिक्षण का प्रभाव उन पर इतना पड़ा था कि एक दिन सब के साथ मैं भोजन करने बैठा। सब ब्रह्मचारी साधारणतया भोजन कर चुके, मुझसे खाया ही नहीं गया। तब भगवानदीन जी ने नमक दाल-शाक में डाल दिया। फिर तो मैंने भी भोजन कर लिया। भगवानदीन जी ने बतलाया कि बालकों के मन में यह दृढ़ श्रद्धा है कि भोजन स्वाद के लिए नहीं बल्कि स्वास्थ्य के वास्ते किया जाता है; और जो भोजन अधिष्ठाता जी देंगे अवश्य स्वास्थ्यप्रद होगा।

साठ बालक थाली, कटोरी, गिलास अपना-अपना उठाकर तुरन्त मांज के रख देते थे। यदि कोई चाकर मांजता तो घंटों लग जाते।

सब बालक कुएं से पानी मिल कर खींच लेते थे। और थोड़े समय में स्नान कर, अपने वस्त्र धोकर अपने निवास स्थान पर आ जाते थे।

बालक कटीली भूमि पर नंगे पैर कूदते चले जाते थे, जहाँ मैं बूट पहन कर चलता था।

एक दिन भगवानदीन जी बालकों को जंगल के रास्ते ५-६ मील ले गए रास्ते में एक अंधा कुआँ था, जिसमें जल न था, और न बहुत गहरा था। भगवानदीन जी के कहते ही एक बालक झट निःसंकोच उस में कूद पड़ा। रस्सा पकड़ कर तुरन्त ऊपर निकल आया। दिन ढलने के समय एक बालक से भगवानदीन जी ने कहा, तुम आश्रम चले जाओ, हम पीछे से आवेंगे। बालक तुरन्त चल पड़ा। पीछे पीछे उतनी दूर पर कि बालक न देख सके भगवानदीन जी और बालक भी चल पड़े। रास्ते में नाला पड़ता था। उस बालक ने लकड़ी डालकर पानी की गहराई देख ली, और नाला पार करके आश्रम में पहुँच गया। बालक निर्भीक थे।

हम सब नंगे सिर मन्दिर जी में देव दर्शनार्थ जाते थे; और द्रव्य नहीं चढ़ाते थे। यह बात रूढ़ि विरुद्ध थी। और पंडितपेशा धनिकवर्ग इसको अनुचित समझते थे।

महात्मागाँधी ने साबरमती आश्रम चार बरस पीछे १९१५ में स्थापित किया। यदि ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम टूट न जाता, तो देश सेवा में, जैन धर्म प्रचार में और जैन जाति में कितनी उन्नति कितने वेग से होती यह कहना मुश्किल है।

अजिताश्रम की स्थापना

१६१० में लखनऊ ह्युएट रोड पर मैंने नीलाम में श्री पूर्णचन्द्र विद्यान्त के साझे में एक ज़मीन का टुकड़ा मोल लेकर उस पर मकान बनवाना प्रारम्भ कर दिया। दिसम्बर १६११ के अन्तिम सप्ताह में गृह-प्रवेश और भारत जैन महामंडल की प्रबन्ध-कारिणी का अधिवेशन हुआ। अजिताश्रम मकान का नाम रखा गया। मित्रों का समारोह हुआ। सुमति* ने मेरे साथ वस्ति-संस्कार की क्रिया में भाग लिया, जिसके गृहस्थाचार्य श्री पंडित अर्जुनलाल सेठी थे। सब संस्थाओं को दान दिया।

कुछ समय बीतने पर पूर्णचन्द्र विद्यान्त मुझसे मिलने आये। उनके हिस्से की आधी ज़मीन खाली पड़ी थी। उनसे कहा कि या तो इस पर मकान बनवाओ, या मुझे बेच दो। वह बोले दुगने दाम दोगे। मैंने तुरन्त दुगने दाम का चेक लिख कर उनको दे दिया। उस आधे टुकड़े पर भी मकान बन गया, जिसका नाम शान्ति-निकेतन रखा गया। शान्ति मेरी छोटी बेटी का नाम है।

१६१५ की अतिवृष्टि में सड़क का पानी अजिताश्रम के मैदान में भर गया। अजिताश्रम की सीढ़ियों में एक छिद्र हो जाने से पानी नींव में प्रवेश करने लगा। नौकर चाकर घोड़ा सब भाग गये। मैंने और मेरे जंवाई बाबू हरिश्चन्द्र ने बेटी सरला, शान्ति, उनकी माता तथा बच्चों को कंधों तक पानी में से निकाल कर पिछवाड़े सुन्दरबाग में राय बहादुर छोटेलाल की कोठी में पहुँचा दिया और मैं स्वतः लंगोट कस कर, बूट चढ़ा कर, कुदाल लेकर सीढ़ी की ईंटें तोड़ कर छिद्र को भरने लगा। पानी का नींव में प्रवेश रुक गया और वर्षा का वेग भी कम हो गया।

---

*मेरा ज्येष्ठ पुत्र

रात को सब कुटुम्बीजन घर आगए। नींव में पानी जाने से भराव की मिट्टी बैठ गई थी। अजिताश्रम के मरदाने कमरों का फ़र्श जो बैठ गया था, खुदवा कर फिर से भरवाना और बनवाना पड़ा।

अजिताश्रम में १९१६ दिसम्बर में भारत जैन महामंडल तथा जीव-दया सभा के विशाल सम्मिलित अधिवेशन हुए। अजिताश्रम का सभा मंडप सजावट में लखनऊ भर में सर्वोत्तम था। पैंतेपुर ज़िला सीतापुर के जैन सेठ ने अपना नवनिर्मित विशाल शामियाना भिजवा दिया था। जैन मन्दिरों के सल्मे के काम के चंदोये, चमर, छत्र, अहिंसा परमोधर्मः के निशान आदि से सुसज्जित अपने ढंग का वह एक ही देखने योग्य स्थान था। श्री मोहनदास करमचंद गांधी जी को सभा में पधारने का निमन्त्रण देने मैं गया। गांधी जी अपने डेरे के बाहर बैठे खिचड़ी बना रहे थे। मेरे निमन्त्रण पर बोले—"Jains profess but do not practise Ahinsa. I have been doing penance for the jains I shall certainly come". सभाध्यक्ष प्रख्यात पत्र-सम्पादक Mr. B. G. Horniman थे। वक्ताओं में Mr. Vibhakar Barrister, H. S Polak और गांधी जी थे। अधिवेशन में उपस्थिति इतनी थी कि छतों और वृक्षों पर लोग चढ़े थे। सामने की सड़क रुक गई थी। खड़े रहने को भी कहीं जगह न थी। अधिवेशन सम्पूर्ण होने पर गांधी जी अजिताश्रम में पधारे, महिला समाज को उपदेश और आशीर्वाद दिया।

मेरे कनिष्ठ पुत्र वीर नन्दन और कैलाशभूषण का जन्म अजिताश्रम में हुआ। मेरे नाना भगत बल्देव सहाय जी का देहान्त भी १९१७ में अजिताश्रम से मिले हुए शान्तिःनिकेतन में हुआ। १९१८ में पत्नी के देहान्त के बाद मैंने अजिताश्रम और शान्ति-निकेतन, दोनों को २६०००) में बेच दिया। अब वह ३ लाख के ऊपर के मूल्य के हैं। अलग-अलग दो व्यक्तियों की सम्पत्ति हैं।

तीर्थयात्रा

(१) हरिद्वार

पहले पहल पिता जी के साथ रुड़की से हरिद्वार की यात्रा को गया था। रेल नहीं बनी थी। नहर के किनारे सड़क से घोड़ा-गाड़ी से गए थे। बीच में ठहर कर रोटी बनवाई। कुशल रसोइया साथ गया था। उसने हाथ से थपक कर पतली रोटी बनाई। और सबको परसता गया। सबने आनन्द से भोजन किया। घोड़े बदले गए। हरिद्वार उसी दिन पहुँच गए।

उन दिन हर की पैड़ी पर गंगास्नानार्थ आज की सी सुविधा नहीं थी। पानी का बहाव तेज़ था। प्रौढ़ पुरुषों ने पारस्परिक घेरा बना कर बीच में बच्चों को कर लिया। इस प्रकार स्नान करके भीमगोडा आदि स्थानों के दर्शन करके रुड़की वापस आ गए।

१६०६ में हरिद्वार श्री कुञ्जबिहारी लाल जमींदार कुन्दरकी, उनके भाई महताब राय, उनकी पत्नी के साथ गया। पूंच राज्य की धर्मशाला में गंगा तट पर विश्राम किया। खूब दूधिया भंग घुटी। हाथ की थपकी कचौरियां अत्यन्त स्वादिष्ट थीं। बालु मिला गंगाजल जो पीलो, सबको पचा देता है। टीन के कनस्टरों को बांसों पर बांध कर जलयान सा बना लेते हैं। उसको तंबेड़ा कहते हैं। तंबेड़े पर बैठ कर गंगापार गुरुकुल कांगड़ी का निरीक्षण किया। तंबेड़े पर बैठने से कपड़े सब पानी से भीग जाते हैं। मल्लाह गंगा जी में लग्गी लगाते तंबेड़े को खेते हुए पार ले जाते हैं। महाशय मुन्शीराम, M.A. ने (जो स्वामी श्रद्धानन्द हो गए थे और जिनका बलिदान दिल्ली में एक मुसलिम के हाथ से

पिस्तौल की गोली से हुआ) खूब समझाया और गुरुकुल की भली प्रकार सैर कराई।

हरिद्वार से देहरादून गए। डाक्टर बांकेलाल के घर ठहरे। रामसरोवर २० गज़ चौकोर देखा। चाय का कारखाना देखा, प्रयोगशाला में सूर्य आदि ग्रह-नक्षत्र देखे।

फिर हरिद्वार सरला बेटी और नन्दन बेटे को लेकर १६२० में गए। मारवाड़ी धर्मशाला में १०-१५ दिन रहे। नन्दन को महीनों से बुखार आता था। उसको हर की पैड़ी पर रोज़ स्नान कराया, गंगातट पर खूब सैर की। मेरा पुराना नौकर ठाकुर विजय बहादुर सिंह साथ था। बड़ा आराम और आनन्द रहा। यह धर्मशाला रेल के पास है। साफ़ सुथरी-आराम की है।

(२) हस्तिनापुर

१०-११ बरस की उमर में श्री हस्तिनापुर तीर्थ क्षेत्र की यात्रार्थ अपनी अम्मा जी के साथ गया। मेरठ से बैलगाड़ियों पर हमारा संघ रात के ६-१० बजे चला। ८-१० गाड़ियाँ आगे पीछे साथ चली थीं। प्रत्येक गाड़ी के यात्री चाहते थे कि हमारी गाड़ी बीच में रहे, न सबसे आगे, न सबके पीछे। क्योंकि रास्ते में लुट जाने का भी डर था। मेरठ से हस्तिनापुर २५-२६ मील है। दोपहर के करीब हस्तिनापुर पहुँचे। अम्मा जी तुरन्त स्नान करके यात्रार्थ पैदल चल पड़ीं। बालुरेत गरम हो चली थी। मैं तो कूदता दौड़ता चलता था, जहां छाया मिलती, वहां ठहर कर दम ले लेता था। जब सब टौंकों की यात्रा करके वापस लौटे, तो अम्मा जी के पसली में तीव्र वेदना उत्पन्न हो गई। हल्दी मिरच राई का गरम लेप करने से कुछ देर में शान्ति हुई। और अम्मा जी ने भोजन तय्यार किया। हम लोग तीन दिन यात्रा करके दिल्ली वापस आए।

(३) शिखरजी

दिसम्बर, १८९९ के अन्तिम दिनों में, बाबूलाल वकील, सन्तलाल सुपुत्र श्री मुकुन्दलाल तथा गेंदनलाल मुरादाबाद से बनारस आए, और वहाँ से हम चार युवक शिखरजी की यात्रार्थ चले।

उन दिनों Grand Chord Line नहीं बनी थी। माधोपुर से शिखरजी तक के लिये बैल गाड़ी किराये पर ली। तीसरे पहर गिरीडीह पहुँचे। धर्मशाला में आराम भोजन किया। शाम को आगे चलने की तय्यारी की। गाड़ी वाले ने तथा धर्मशाला के लोगों ने कहा कि रात की मुसाफ़िरी ठीक नहीं। मार्ग में लुट जाने का भय है। किन्तु पूर्णमासी की चाँदनी रात थी। हम लोगों ने रातों रात मधुबन पहुँच जाने का निश्चय कर लिया था। सन्तलाल जी बैलों को जोत खुद हांक चले। गाड़ी बराकर नदी में बालु में फ़ँस गई। किन्तु गांव के युवकों ने ज़ोर लगा कर गाड़ी आगे चला दी। हम लोग गाड़ी के साथ-साथ वार्तालाप करते, सीटी बजाते, अंग्रेजी गीत गाते, सानन्द चलते गए और ३ बजे के क़रीब ऊपरली कोठी (बीस पंथ वालों की) का फाटक खुलवा लिया। असबाब रख कर गरम पानी से स्नान किया। धोती दुपट्टे धोकर आग से सुखा लिये। और चार बजे गिरराज पर चढ़ चले। चन्द्रग्रहण प्रारम्भ हो गया था। चढ़ाई ६ मील की कष्टप्रद है। कंकरीले पत्थर पैर के तलुओं में चुभते हैं। मार्ग में गंधर्व नाले पर विश्राम-स्थान बना है। सीतानाले पर पूजा की सामग्री धो ली। सूर्योदय के समय श्री कुन्थुनाथ जी की टोंक पर दर्शन पूजन का सौभाग्य प्राप्त किया।

टोंक पर्वत की चोटी को कहते हैं, वहाँ एक श्वेत पाषाण की बुरजी, क़रीब गज़ भर चौकोर, उतनी ही ऊँची सब तरफ़ से खुली हुई बनी है। बुरजी के अन्दर दोनों तलवों के चिन्ह हैं, जिनको चरण चिन्ह कहते हैं, जिनकी प्रतिष्ठा का लेख सम्बत, प्रतिष्ठकारक आचार्य, गृहस्थ,

तथा तीर्थंकर का नाम आदि सहित खुदा हुआ है। उतरते चढ़ते २४ टौंक हैं। २० तो उन तीर्थंकरों के नाम की जिन्होंने श्री सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया, और चार अन्य की। अर्थात् ऋषभनाथ जी ने कैलाश, वासुपूज्य जी ने चम्पापुर, नेमिनाथ जी ने गिरनार और महावीर जी ने पावापुरी से मोक्ष पद पाया। किन्तु उनके नाम की टौंकों की प्रतिष्ठा भी शिखरजी पर कर दी गई। ताकि चौबीसों तीर्थंकरों के निर्वाणोत्सव भावपूजा का पुण्य सुविधापूर्वक प्राप्त हो सके।

जाते समय सबसे ऊँची टौंक चन्द्रप्रभु की है। वहाँ से उतर कर तलहटी में जल मन्दिर में दर्शन पूजन करते हैं। उन दिनों जल मन्दिर में तीन वेदियाँ थीं। बीच की वेदी में श्वेताम्बर आम्नाय की मूर्तियाँ विराजमान थीं। सामने के दालान में दाहिने बायें दोनों ओर दिगम्बर आम्नाय की मूर्तियाँ विराजमान थीं। सन् १६१५ के क़रीब इन दोनों कमरों की दिगम्बर मूर्तियाँ हटा दी गईं, छिपा दी गईं, या नष्ट कर दी गईं। जल मन्दिर में पूजा प्रक्षाल के लिये श्वेतांबरी कोठी के पुजारी आदि वहाँ रहते थे। दिगम्बरी कोठी का कोई भी पुजारी आदि पहाड़ पर नहीं रहता था।

जलमन्दिर से विश्राम लेकर, फिर गिरराज पर चढ़ाई होती है। पार्श्वनाथ भगवान् की टौंक या विशाल मन्दिर जो रायबहादुर बदरीदास कलकत्तां वालों ने बनवाया है सबसे ऊँचा स्थान है। इस मन्दिर तक चढ़ने के वास्ते चौड़ी सीढ़ियाँ भी राय बहादुर बदरीदास ने बनवा दी हैं।

श्वेताम्बरीय यात्री जलमन्दिर में रात को रह भी जाते हैं, और दूसरे दिन पूजा करके वापस लौटते हैं। बन्दना करके हम लोग तो ४ बजे शाम तक मधुवन लौट आए। दूसरे दिन पर्वत की परिक्रमा करने तीसरे पहर चल पड़े। जंगल के रास्ते चलकर Grand Trunk

Road से चले, जो पक्की सड़क प्राचीन काल की बनी हुई है। चाँदनी रात में कुछ दूर चल कर, रात को एक दूकानदार के छप्पर में खाट किराये पर लेके सो रहे। सूर्योदय से पहले, तय्यार होकर आगे चल पड़े, और ६ बजे तक मधुवन लौट आए।

उन दिनों दिगम्बरीय तेरापंथी का प्रबंध एक कायस्थ के अधिकार में था। वह यात्रियों की कुछ भी सहायता नहीं करता था। केवल दान के लिये रसीदबही सामने रख देता था, धर्मशाला में यात्रियों की सुविधा का सब सामान, दरी, चाँदनी, गद्दे, तकियें, कड़ाही, बरतन, बाल्टी आदि मौजूद होते हुए भी यात्रियों को नहीं देता था। बीस पंथी कोठी में हमें पर्याप्त आराम मिला।

शिखरजी की यात्रा करके हम लोग कलकत्ता को रवाना हुए। वापसी पर रास्ते में रेल के कोयले की खदानें पड़ीं। स्त्रियों और पुरुषों के झुण्ड मज़दूरी करते थे। खदान के अंग्रेज़ मालिक की अनुमति से हम सब को खदान में उतार कर सब कारखाना दिखा दिया गया। झूले (Lift) से नीचे उतारा गया। वहाँ लम्बी-लम्बी खोह (Tunnel) बनी हुई थी। जिनमें खड़े होकर चला जा सकता था। सब तरफ़ से पानी टपकता था, जिसे ऊपर खींच लिया जा रहा था। कोयले की खुदाई भी जारी थी, जो बड़े-बड़े डोलों से ऊपर चढ़ाया जाता था। जब एक खदान का सम्पूर्ण कोयला खोद कर निकाल लिया जाता है, तो दूसरी जगह खुदाई शुरू हो जाती है। Jharia coal mines प्रख्यात हैं, लाखों रुपयों का व्यवसाय है। नील का और कोयले का व्यापार विशेषकर अंग्रेज़ व्यापारियों के अधिकार में था। हिन्दुस्तानी तो मज़दूरी ही करते थे या दलाली।

कलकत्ते में हम लोग रायबहादुर बदरीदास के बगीचे वाले सुन्दर जैन मन्दिर के अतिथि भवन में ठहरे। वह शाम बाज़ार में था। एक रसोइया ।।) रोज़ पर रख लिया। पहले ही दिन जो सीधा बाज़ार से

लाया, उसके दाम की जांच करने से पता लगा कि एक रुपये में ।।।) का माल ही वह लाया था। इस बात को स्वीकार करते हुए उसने कहा कि यदि १) रोज़ सौदे में न बचावें तो देश छोड़ कर कलकत्ते क्यों आवें।

यह पुष्पोद्यान जैन मन्दिर, अनेक प्रकार से कलकत्ता नगर के दर्शनीय स्थानों में है। रोज़ मेला सा लगा रहता है। वहां एक प्रदर्शनी भी उन दिनों में हुई थी, और उस अवसर पर पहले पहल मेरा सम्पर्क Sir C.V. Raman से हुआ था।

कलकत्ते में Australian-British Cricket Match भी एक दिन देखा। बल्ले वाले कस के हद के बाहर की boundary hit लगाते थे। High Court में Elijah Impey का चित्र देखा। अंग्रेज़ी क्लब का तैराकी का तड़ाग देखने के लिए अंग्रेज़ सेक्रेटरी से कहा कि "Can we go in ?" तो वह बोला "Yes, it is big enough. You mean "may" we go in. Certainly." उस दिन "can" और "may" का अन्तर मेरे ध्यान में जम गया। Museum में टूटे तारे (meteors), मोमियाई से सुरक्षित शव (Egyptian mummies) और जीवित जन्तुओं के निवास-स्थान में सांप आदि चलते फिरते एक जगह देखे।

शिवपुर नदी के रास्ते शिवपुर गए। वहां विख्यात Engineering College, और वनस्पति उद्यान (Botanical gardens) हैं। एक वट वृक्ष अत्यन्त प्राचीन तथा विशाल है। वापस आते समय रात हो गई थी। हम लोग पैदल ही चल पड़े। मार्ग में देखा कि बंगाली महाशय छतरी लगाए चल रहे हैं। चाँद निकल रहा है। उनसे कहा आप छतरी बंद कर लीजिए। महाशय घबराये, कहने लगे हमको सरदी लग जायगी-"I shall catch cold"

दूसरी मर्तबा कलकत्ते १६०६ में गया, जबकि महासभा और एसोसिएशन दोनों का अधिवेशन वहां था और सफलतापूर्वक

समाप्त हुआ। उस अवसर पर पिता जी तथा मेरा ज्येष्ठ पुत्र सुमति भी साथ गए थे।

तीसरी मर्तबा १६१० में गया, उस अवसर पर शिखरजी की यात्रा भी की थी, सुमति, उसकी माता, बेटी सरला तथा पंडित अर्जुनलाल सेठी भी साथ थे। मधुवन में महान उत्सव और महासभा का अधिवेशन भी हुआ था।

एक मर्तबा नवाब वाजिद अली शाह के वारिसों और बेगमों का बयान लिखने के लिये डिस्ट्रिक्ट जज लखनऊ ने भेजा था, पंद्रह दिन से ऊपर रहना पड़ा था। एक नवाब के बयान में कई दिन लग गये थे।

नवाब साहब बहुत देर बाद बाहर निकलते थे, उनको कोकीन खाने का अभ्यास था, पनकुट्टी में पान कुचल कर, कोकीन मिलाकर खाया करते थे। घंटे डेढ़ घंटे पीछे कहते थे कि मुझे दिल की धड़कन होगई, अब बयान नहीं लिखा सकता। मटियाबुर्ज की भी सैर की, वहां नवाब वाजिद अली खां रहते थे। एक बेगम का बयान लिखने गंदी गली में उजाड़ से मकान में जाना पड़ा। फटा हुआ टाट का परदा दरवाजे पर था, अंदर एक चारपाई मेरे लिये बिछा दी गई थी, और सामने दालान में फटे हुये परदे के पीछे बेगम बैठी थी, जो कहती थी कि वो अवध के बादशाह की भुलाई पत्नी है। बयान लिखाते समय बीच-बीच में दस-पंद्रह मिनट तक गायब हो जाती थी, कहती थी कि शंका निवारणार्थ जाना पड़ता है।

शिखर जी संबंधित Injunction Case राजगिरी, पावापुरी के मुकदमों में कितनी ही दफ़ा इन तीर्थ क्षेत्रों के दर्शन करने का सौभाग्य अनायास ही प्राप्त हुवा। चरण-चिन्ह लेखों को तो ध्यान से बारंबार अध्ययन करना पड़ा।

(४) जयपुर

जयपुर में विशाल मूर्तियों के दर्शन करने का शुभ अवसर पहले पहल सन १६१० में मिला। वहां जैन यंग मेन्स असोसिएशन का वार्षिक अधिवेशन था। मुझे सभाध्यक्ष निर्वाचित किया गया था। सरला बेटी भी साथ गई थी। इस अधिवेशन में असोसिएशन का नामपरिवर्त्तन संस्कार भी हुआ और उसका नाम "भारत जैन महा मंडल" रखा गया। जयपुर राज्य के उच्च पदाधिकारी भी अधिवेशन में पधारे थे, कई दिन आनन्द से बीते और महत्वपूर्ण प्रस्ताव निश्चित हुए। इस ही अवसर पर महात्मा भगवानदीन, ब्रह्मचारी गेंदनलाल, पूज्य भाई मोतीलाल तथा श्री दयाचन्द्र गोयलीय के परामर्श से ये निश्चित हुआ कि शीघ्र ही एक जैन गुरुकुल किसी उचित स्थान पर स्थापित किया जाय।*

(५) गोम्मटेश्वर

बाहुबली महाराज की विशाल मूर्ति मैसूर रियासत अन्तर्गत, हसन तहसील के श्रवण बेलगोला ग्राम में उपस्थित है। यह मूर्ति ५७ फ़ीट ऊँची है। पर्वत को काट छांट कर बनाई गई है। मूर्ति के दर्शन मीलों के दूरी से होते हैं। मूर्ति पर कोई छत या किसी प्रकार की छाया नहीं है। धूप, वर्षा, आंधी के झोंके सहती हुई सैकड़ों वर्ष से बिना किसी मरम्मत के खड़ी हुई है। १५ वर्ष पीछे मूर्ति का मस्तकाभिषेक होता है। मस्तक तक पहुँचने के लिए हजारों रुपये के खर्च से पाड़ बांधी जाती है। मूर्ति के आँगोपांग यथोचित हैं। यह विशाल मूर्ति संसार के आश्चर्यकारी दृश्यों में है। इसका विस्तृत वर्णन Rice प्रणीत ग्रन्थ में है।

इस तीर्थराज पर मस्ताभिषेक सन १६१० में होने को था। उस ही अवसर पर महासभा के अधिवेशन का आयोजन भी किया गया था।

---

* देखिये पृष्ठ ८४

मैं सकुटुम्ब लखनऊ से रवाना हुआ। ठहरने के स्थान के लिये रुपया भेज कर पहले ही प्रबंध कर लिया था। पूना जंकशन से हमारा संघ १६ टिकट का हो गया था। पण्डित अर्जुनलाल सेठी का कुटुम्ब, महात्मा भगवानदीन, उनकी बहन रामदेवी जी भी साथ थे। श्री चुन्नीलाल हेम चन्द जरी वाले का कुटुम्ब उस ही रेलगाड़ी में था। जैन जनता महती संख्या में यात्रार्थ जा रही थी। पूना जन्कशन पर रेल इतनी भरी आती थी कि टिकट देना बन्द कर दिया गया था। दिल्ली के यात्रियों का संघ मुसाफ़िरखानों में पड़ा हुआ था। जान पहचान के आदमी थे। बात करने पर पता लगा कि वह कई दिन से पड़े हुये हैं, टिकट ही नहीं मिलता है। मैंने उनसे कहा कि हम तो प्रातः सात बजे की रेल से जायेंगे और आपको भी साथ ले चलेंगे। उन्होंने १६ टिकट के दाम मुझे दे दिये और मैंने स्टेशन मास्टर से मिलकर बत्तीस यात्रियों के लिये स्थान दिये जाने का पत्र ले लिया। प्रातः हम लोग धर्मशाला से असबाब ले कर ठीक समय पर प्लैटफ़ार्म पर पहुँच गये। वहां दिल्ली के संघ वाले नहीं थे। पता लगा कि उनको दरवाज़े पर रोक लिया गया है; क्योंकि उनके पास असबाब अधिक था और तुलवाया नहीं गया था। मैंने रेल बाबू से कहा इनके पास टिकट हैं आपको रोकने का अधिकार नहीं है। असबाब की रिपोर्ट कर दीजिये आगे तुल जायगा अगर आप रोकेंगे तो हर्जाने की नालिश रेलवे पर कर दी जायगी। इस युक्ति से दिल्ली वालों को रेल पर भिजवाया, और माल बाबू से असबाब की रसीद बनवा ली। हम बत्तीसों आदमियों को स्टेशन मास्टर ने एक थर्ड क्लास के खाली डिब्बे में सवार करा दिया।

आरसीकेरी स्टेशन से गोमटेश्वर का मार्ग उन दिनों बैलगाड़ियों का था। रास्ते में हमारे संघ के १६ व्यक्तियों का भोजन एक साथ बन जाता था। यद्यपि हम सोलह अग्रवाल, खंडेलवाल, पालीवाल तीन जाति के थे। दिल्ली के १६ यात्रियों का भोजन चार पांच जगह बनता

था और उनको अत्यन्त कष्ट होता था। उधर के स्टेशनों पर पानी का प्रबंध दूर-दूर तक नहीं था। सेठी जी पानीवाले स्टेशन का समय देखकर बीच के समय में जल त्याग व्रत बच्चों को दिला देते थे और वह शान्त हो जाते थे।

श्रवण बेलगोला का विश्राम-स्थान आंधी-पानी के वेग से गिर गया। हम लोग एक विशाल तम्बू में चले गये, जो राज्याधिकारियों के लिये लगाया गया था। महासभा के अधिवेशन में अंग्रेज डिप्टी कमिश्नर तथा अन्य अधिकारी पधारे; बैरिस्टर जुगमन्धर लाल ने और मैंने अंग्रेज़ी भाषा मिश्रित व्याख्यान और राज्याधिकारियों को धन्यवाद दिया। विदाई के समय डिप्टी कमिश्नर से कहा कि कल आँधी पानी के कारण हम लोग राज्य के तम्बू में चले गए थे। उन्होंने कहा कि बहुत अच्छा किया, यह तम्बू तो यात्रियों की सुविधार्थ ही लगाए गए हैं।

पर्वत की एक चिकनी चट्टान पर हम लोग श्रेणीवद्ध बैठ कर सामायिक, प्रतिक्रमण, आलोचना पाठ आदि पढ़ते थे।

भगवानदीन जी ने एक चटान पर कुछ अर्घ चढ़ा दिये, तो दूसरे दिन देखा कि वहाँ पर सामग्री का ढेर चढ़ा हुआ था। वह स्थान पूज्य स्थान मान लिया गया। जनता अन्ध श्रद्धा से चलती है। विचार विवेक से काम नहीं लेती।

एक दिन यह चरचा चली कि यात्रा के स्मारक रूप कुछ नियम सब को लेना चाहिये। भगवान दीन जी ने कहा कि सबलोग गाली का त्याग कर चलें, गाली का प्रयोग बुरा ही है। किन्तु इस कुटेव का ऐसा अभ्यास पड़ गया है कि किसी की भी हिम्मत नहीं हुई कि गाली का यावज्जीव त्याग कर दे। अन्ततः सबने यह नियम लिया कि जहां तक बनेगा गाली का प्रयोग न करेंगे। यदि करें तो प्रायश्चित रूप आत्म-दण्ड करेंगे। उस नियम का परिणाम अच्छा हुआ। मैं तो जब कभी ऐसा

अशुभ अवसर आजाता है तो उस दिन की वार्ता को याद कर लेता हूं और कषायावेश को रोक लेता हूं। परिणाम शुद्धि रूप त्याग, खाने पीने की वस्तु त्याग से कई गुना अच्छा और पुण्याश्रव का कारण है। किन्तु प्रथा ऐसी चल पड़ी है कि त्यागीवर्ग तथा साधुवर्ग गृहस्थों से खाने पीने की वस्तुओं का ही त्याग कराते हैं। पंचअणुव्रत, कषाय, नोकषाय, सप्तव्यसन आदि मानसिक दोषों का त्याग नहीं कराते। कषाय त्याग से जैन जाति और जैन धर्म का महत्व संसार में फैल जाय; महती धर्म प्रभावना हो।

(६) गिरनार जी

दिसम्बर १६१२ के अन्तिम दिनों क्रिसमस की छुट्टियों में श्री गिरनार निर्वाणक्षेत्र की यात्रा का पुण्य प्राप्त हुआ। भाई जिनेन्द्र प्रसाद, उसकी माता, हरिश्चन्द्र जी, बेटी सरला, सुमति, नेमी, शान्ति, उनकी माता श्री चेतनदास, उनकी पत्नी लखनऊ से रवाना हुये।

बाबू सूरजभान वकील सकुटुम्ब, पंडित अर्जुन लाल सेठी सकुटुम्ब तथा उनके शिष्य माणिकचन्द्र आदि (जिनको हम लोग चार चाँद कहा करते थे) रास्ते में मिल गये।

अजमेर, मेहसाना, अहमदाबाद ठहरते हुये सारङ्गा जी की यात्रा की। वहाँ धर्मशाला में गद्दे, तकिये आदि आराम का सामान मौजूद था।

बाबू सूरजभान जी ने शास्त्र प्रवचन किया। हस्त-लिखित शास्त्र में अनेक अशुद्धियाँ थीं।

विरमगाम होते हुये राजकोट में विश्राम किया। श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह ने खूब अतिथि सत्कार किया। राजकोट से चलकर जूनागढ़ पहुँच गए।

धर्मशाला में यथेष्ठ विश्राम मिला। श्री गिरनार जी की यात्रा श्री सम्मेदाचल की सी कष्टप्रद नहीं है। मार्ग में चौड़ी पत्थर की सीढ़ियाँ बनी हैं। चढ़ाई से थकावट तो हो जाती है। अन्तिम टौंक की चढ़ाई तो इतनी संकीर्ण और ऊँची है, कि हाथ पैर टेक कर सम्हल-सम्हल कर चढ़ना होता है। हवा भी बहुत वेग से बहती है। उस टौंक को हिन्दू-मुसलमान भी अपनी अपनी मान्यता के अनुसार पूजते हैं। एक मुसलमान फ़क़ीर और एक हिन्दू साधू भी वहाँ कुटी बना कर रहता है। मार्ग में चार टौंक और हैं, उनपर भी साधू रहते हैं।

एक राजुलजी की गुफ़ा और श्वेताम्बर मन्दिर भी है। पर्वत की वन्दना करके सहस्त्राम्र तपोवन के दर्शनों की हिम्मत नहीं हुई, और हम लोग वापस बम्बई को रवाना हो गये।

बम्बई प्रान्तिक सभा की अध्यक्षता

गिरनार जी से हम लोग बम्बई आए। रास्ते में गुरुवर्य वादिगज-केसरी पंडित गोपालदास जी वरैया, पंडित माणिकचन्द कौंदेय, खूबचन्द, देवकीनन्दन, बंशीधर (शोलापुर वाले), मक्खनलाल जी का भी साथ हो गया था। हम सब एक ही ट्रेन से Grant Road Station पर २५ दिसम्बर को उतरे। लाल बानात platform पर बिछी थी। हमारे स्वागत के लिये बम्बई के प्रायः सभी दिगंबर जैन समाज के प्रतिष्ठित धनिक सज्जन उपस्थित थे। सेठ पदमचंद्र भूरामल ने अभिनन्दन पत्र पढ़ा, जिसके उत्तर में मैंने कुछ शब्द तुरन्त ही कहे और अपना आभार प्रकट किया। स्वागत-सत्कार के पश्चात् बैंड-बाजे के साथ, घोड़ों की ऊँची खुली गाड़ियों में, मोटरों तथा अन्य सवारियों में जूलूस के साथ हम लोग मुख्य बाज़ारों में होते हुए माधव बाग में ठहराये गए। उस समय की शोभा का रमणीय दृश्य वास्तव में दर्शनीय था।

२८ दिसम्बर १९१२ को दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा की पहली बैठक शुरू हुई। श्रीयुत पंडित धन्नालाल जी ने मंगलाचरण कर अधिवेशन का काम प्रारम्भ किया। श्रीयुत सेठ हीराचन्द नेमिचन्द जी के प्रस्ताव करने पर मैं सभापति चुना गया। सभा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए, मैंने अपना भाषण* आरम्भ किया। व्याख्यान में जातिभेद के सम्बन्ध में मेरे कुछ कहने पर, कुछ सभासद ऐसे बिगड़े कि उन्हें शान्त करना दुस्तर हो गया। यह कहना कठिन है कि बिगड़ने वाले सज्जनों ने मेरे पूरे व्याख्यान को अच्छी तरह से सुना-समझा भी या

---

* देखिये परिशिष्ट "अ"।

नहीं। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनके क्रोध का पारा केवल "जाति बन्धन का उच्छेद" आदि दो चार शब्दों को सुनकर ही अन्तिम डिगरी तक पहुँच गया था। यह सोचने का कष्ट उठाना किसी ने भी स्वीकार नहीं किया कि इन शब्दों का पूर्वापर सम्बन्ध क्या है, और जातिभेद न रखने के विषय में मैंने कौन-सी युक्ति दी थी।

मैं नहीं चाहता था कि सभा में किसी प्रकार की अशान्ति खड़ी हो जाय और मुझे कठोर नीति बरतनी पड़े। इसलिये मैंने अपना अभिप्राय इन शब्दों में कह दिया—"व्याख्यान में मैंने अपने निजी विचार प्रकट किये हैं; उनका ज़िम्मेवार केवल मैं हूं, न कि सभा। इनको मानना न मानना आप लोगों के अधिकार में है।" परन्तु इसका कोई फल न हुआ। मूर्खता के सामने बुद्धि को हारना पड़ा; और अल्प जनमत ने बहुमत को दबा दिया। केवल दसबीस महात्माओं ने ऐसा हुल्लड़ मचाया कि उस दिन की सभा का कार्य समाप्त कर देना पड़ा। पीछे से मालूम हुआ कि जैन समाज के परम शुभचिन्तक सेठ लोगों की ओर से दो गुप्तचर आए हुए थे और उन्हीं की कृपा कटाक्ष से यह सब कार्य हुआ। गुप्तचर महाशयों ने उसी दिन अपने सेठों को तार देकर सूचना दे दी कि हमने बाज़ी मार ली।

उसी रात को सब्जेक्ट कमेटी की बैठक हुई। जिन लोगों ने दोपहर को अपने श्रीमुख से यहाँ तक कह डाला था कि हमको ऐसे सभापति नहीं चाहिए, हमने इन्हें चुना नहीं और इसलिए जिनका कमेटी में उपस्थित होना सर्वथा अनुचित था, उनमें से भी कई सज्जनों ने पधारने की उदारता दिखलाई, और जिन्हें अस्वीकृत किया था उन्हीं के सभापतित्व को मानकर कमेटी के कार्य में योग दिया। अस्तु कमेटी का कार्य प्रारम्भ हुआ। इस कमेटी में यदि सब से अधिक महत्व की और अश्रुतपूर्व बात हुई तो यह कि कई प्रस्ताव बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस अनुकूल मत और ४-४, ५-५ प्रतिकूल मत मिलने पर भी अस्वीकृत किये गए।

प्रान्तिक सभा के दो चार प्रतिष्ठित नेता चाहते थे कि इस अधिवेशन में कोई काम भले ही न हो, आवश्यक प्रस्ताव भले ही रह जाएं, परन्तु विरोध न होने पाये और सभा का काम शान्ति से समाप्त हो जाय। उनका यह विचार कहाँ तक ठीक था, और इसका परिणाम अच्छा है या बुरा, इस विषय में कुछ न कहकर, केवल इतना कहना पर्याप्त होगा कि उक्त नेताओं के लिहाज़ से किसी ने प्रतिवाद करना उचित न समझा। विरोधी महाशयों ने इसे अपनी बड़ी भारी विजय समझ कर प्रसन्नता प्राप्त की।

दूसरे दिन दोपहर की बैठक शान्तिपूर्वक हुई। कुछ शेष कार्य के लिए तीसरी बैठक रात को की गई। २८ तारीख की कार्रवाई की बहुत से लोगों के चित्तों पर, विशेष करके बरार और दक्षिण वासियों पर, गहरी चोट लगी थी। और इस कारण उनमें बड़ी उत्तेजना फैली थी। वे कहते थे कि बम्बई प्रान्तिक सभा केवल बम्बई के १०-५ मारवाड़ी या धनियों की नहीं है, उसमें हम लोग भी शामिल हैं, तब उसके सभापति की किसी प्रकार की अविनय को हम अपनी मानहानि समझते हैं। हम लोग यहाँ पर अपना अपमान कराने के लिये नहीं आए हैं। इसलिए जब तक हुल्लड़ मचाने वाले माफ़ी न मांगेंगे तब तक हमें सन्तोष न होगा। इसके लिए आवश्यकता होने पर पुलिस का भी प्रबन्ध करना चाहिये। परन्तु उनकी इस उत्तेजना को मैंने समझा बुझाकर दबा दी—"हमें ऐसी छोटी-छोटी बातों पर ख्याल न करना चाहिये; क्योंकि हमें काम करना है, समाज सेवक मानापमान के विचारों से दूर ही रहते हैं।" इस तरह उस समय तो लोग शान्त हो गए, और जब तक सभा का कार्य समाप्त न हुआ तब तक चुपचाप बैठे रहे; परन्तु ज्योंही सभा के विसर्जन होने का समय आया, त्योंही शोलापुर के एक महाशय, जो मेरा आभार मानने के लिए प्लैटफ़ार्म पर आए थे, अपने हृदय के

उद्रेक को न रोक सके। उन्होंने जोश में आकर बड़ी ही निर्दयता से पिछले दिन की भद्दी कार्यवाही की समालोचना कर डाली और लोगों को स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि "तुम चाहे जितनी उछलकूद मचाकर अपनी अज्ञानता का परिचय दो, परन्तु स्मरण रखो एक दिन तुम्हें भी इसी मार्ग पर चलना होगा, जिसे सभापति साहब ने अपने व्याख्यान में बतलाया है। हमारा और हमारी प्रान्तिक सभा का सौभाग्य है जो उसे ऐसे उदार, विद्वान और निर्भीक सभापति की प्राप्ति हुई।" यह आलोचना वास्तविक होने पर भी इतनी तीव्र थी कि कल वाले सज्जन अधीर होकर फिर हुल्लड़ मचाने को तैयार हो गए। तू-तू, मैं-मैं शुरू हो गई। यद्यपि उस समय प्रयत्न होने पर भी शान्ति न हुई, तो भी दक्षिण और बरार के लोगों की उत्तेजना देखकर हुल्लड़ मचाने वाले सीमा से आगे न बढ़ पाये।

अन्ततः इस अधिवेशन में सफलता अवश्य प्राप्त हुई। जो लोग अशान्ति उठाने वाले थे, और जिन्हें कुछ बाहर से आए हुए महात्माओं ने बहका कर उत्तेजित किया था, उन्होंने पीछे से पश्चात्ताप किया; और उनमें से कई भाइयों ने मेरी विदाई के समय स्टेशन पर आकर प्रसन्नतापूर्वक अभ्यर्थन किया था। इस तरह के घात प्रतिघातों से ही उन्नति का मार्ग साफ़ होता है; और संकीर्णता को उदारता की ओर अग्रसर होना पड़ता है।*

---

* मेरे व्याख्यान की समालोचना और अधिवेशन का सम्पूर्ण विवरण "जैन हितैषी" भाग ६, अङ्क २, पृष्ठ ६२ और "सत्यवादी" वर्ष १, अङ्क ४-५, पृष्ठ ६३, पर प्रकाशित हैं।

म्युनिसिपैलिटी का चुनाव

सन् १६१६ में १५ बरस तक सरकारी विकालत करते करते मैं उकता गया। अधिकतर मामले जो सेशन तक आते थे एक से ही होते थे। अर्थात् या तो कई दफ़ा चोरी आदि द्रव्य सम्बन्धी अपराधों में सज़ा भुगत चुकने वालों के, या ५ से अधिक मिलकर मारपीट करने वालों, या लूट मार करने वालों के, या मनुष्य-वध करने वालों के होते थे। सरकारी वकील का वेतन उस समय २५) प्रतिदिन था। जबकि वे वकील बैरिस्टर जो अपराधियों की ओर से आते थे ५०) से ३००) प्रतिदिन तक लेते थे। मेरा अनुमान था कि सरकारी विकालत से विमुक्त हो जाने पर मुझे अधिक विश्राम तथा अधिक आर्थिक लाभ होगा।

कुछ मित्रों ने यह भी सलाह दी कि लखनऊ म्युनिसिपैलिटी की मेम्बरी के वास्ते मैं भी गणेशगंज वार्ड से अपना नाम पेश कर दूं; उन मित्रों ने विश्वास दिलाया कि पंडित रामनाथ सपरू जो खड़े हुए थे, मेरा विरोध न करेंगे। बल्कि अपना नाम वापस ले लेंगे। और मैं निर्विरोध मेम्बर हो जाऊँगा। पंडित रामनाथ सपरू एक नव स्थापित बैंक के मैनेजर थे। बैंक का नाम था "The National Bank of Upper India", जो दो विख्यात बैंकों के नाम को जोड़ कर बनाया गया था। "The National Bank of India" जिसके नाम की छाप का स्वर्ण सर्वोत्तम माना जाता है और "The Bank of Upper India" वा मेरठ बैंक। पंडित रामनाथ सपरू वाला बैंक दो चार साल पीछे Voluntary Liquidation के प्रस्ताव से स्वतः ही समाप्त हो गया, और मेरठ बैंक या Bank of Upper India भी बन्द हो गया।

मित्रों के विश्वास दिलाने पर मैंने अपना नाम मेम्बरी के लिये पेश किया। और एक निवेदन पत्र छपवा कर वितरण कर दिया। उसकी प्रतिलिपि निम्नलिखित है।

TO

THE ELECTORS OF THE

GANESHGANJ WARD,

LUCKNOW.

FRIENDS,

I am glad that I do not need any introduction, credentials, manifestos, or press notices to stand forward, and ask you to elect me as your representative in the municipal affairs of your ward.

From 1886, when I was a lad of 12, up to 1895, when I obtained the degrees of the Master of Arts and the Bachelor of Laws, I have lived and walked in the lanes and by-lanes of Ganeshganj, and have been a familiar figure at your chess-contests, card parties, and social entertainments. You have known me from boyhood. Many of you have been my class-mates, and college fellows, and know that a steady devotion to the object I have set in view has been the chief and distinguishing trait of my character. In the very first year that I joined the Canning College, in the Preliminary Entrance Class, I attained the first position among my fellows, and the college records and the memory of my friends, will bear me out when I say that I never stood second in any examination. The highest prizes and Government Scholarships always fell to my share. In 1893, I was in the run for the Gilchrist Scholarship

awarded to the best Science student for a course of two years' study in England. My friend, Mr. H. P. Vidyant, now an Executive Engineer, was found to have a better claim to it. For some private reasons he could not avail himself of it, and the fact that I did not find this out before the scholarship had been awarded to a Punjab student, has been the regret of my life.

I was then compelled to turn my attention to the study of Law. As a lawyer I did not settle down at any one place, and moved about with my father (who would not permit me to live away from him), as he was transferred from place to place. In 1901, I was honoured with the confidence of the District authorities and accepted the post of the Public Prosecutor and Government Pleader which I have hitherto held. During these 15 years I have been concentrating all my attention and energies upon literary, linguistic and philosophical studies, and have taken a very prominent part in social and religious affairs concerning the Jaina Community to which I belong.

I am now prepared to place before you all the mature experience, and the practical lessons of a life spent in useful pursuits, and not frittered away in gay societies and light entertainments.

If you will accept my services, I am prepared to give you my personal assurance, that to serve your interests on the Municipal Board, and to advance your just claims, in a fair and straightforward manner, shall be my duty

so long as I have the honour to represent you in the Counsels of that Corporation. More I cannot and shall not promise.

I shall not say anything against those friends of mine who profess to have offered themselves as candidates at the "*express desire*" of Mr. A. P. Sen, the retiring member, to succeed him, or at the "*pressing request* of friends and admirers."

In fairness to my own friends,—and I do not know whether I have any admirers at all—, I desire it to be distinctly understood that the offer of my services, herein made, is purely voluntary, and is not due to the request or persuasion of any friend. I volunteer my services, because I honestly find a pleasure in doing service. It is a well-considered offer, not proceeding from any impulse or from any inferior selfish motive. To serve my friends, has been the amusement of my spare hours; and I feel that I have been rendering very good service to myself in serving others. To attain this self-satisfaction of rendering service I am prepared to sacrifice my energy and time, which include money, the consequential result of time and energy spent.

It has been brought to my notice that the fact of my being a Government Pleader might possibly stand in the way of my earnestly advocating the cause of the tax-payers. I do not for a moment admit this possibility. Many a Government Pleader and many a Government servant has proved himself to be an efficient advocate of the people, and thus demonstrated the utter folly of

thinking that there is any real conflict of interests between the official and the non-official members of the Board. I may however simply state the fact that I have this day submitted my resignation from the post of Government Pleader.

One last word, and I have finshed. Some of the gentlemen of light and leading, whom I have seen in this connection, just by way of informing them that I was offering myself for election, have however frankly told me that they had already promised their support or their vote to such and such a gentleman and that when they promised they did not know that they had to consider about the suitability of any other person as their representative; and this was long before the date for the election had even been fixed.

I do not profess to know much about the ethics of canvassing for election, but my commonsense tells me that a promise obtained under such circumstances can hardly deserve to be called by that sacred epithet.

I, for myself, have not the slightest hesitation or compunction in stating it as a fact that I have not solicited any promise from any elector, and I assert that the electors should in forming their opinion realize the responsibility they owe to themselves of voting in favour of the person whom they honestly belive to be the best qualified to represent their interests and to advocate their cause. Previous promises, howsoever solemnly made, should in no way influence their choice ; and private reasons, personal connections, business relations, and common membership

of clubs and associations are facts entirely irrelevant, and extraneous in the matter of electing a person to represent the *whole* of your ward.

Ganeshganj Ward is the premier ward in Lucknow Municipality. It contains by far the largest number of educated gentlemen. It is first and foremost in point of literacy. It has thus to preserve its own solidarity, its own self-respect, in the eyes of other wards. The Ganeshganj Ward can well set an example to the other wards, nay to the other Districts and Provinces, of the manner and the principles on which the electors ought to proceed ; and it is for you, gentlemen, who compose that ward, to demonstrate to the public at large that you realize your responsibilities in matters municipal, and are further capable of subduing all personal considerations, over-riding all private prejudices, and ignoring all party politics, when you take up the responsible task of electing a representative of your *ward.*

May the Almighty help you in discharging your heavy responsibility, fairly and justly to *yourselves,* is the sincere prayer of

Your most obedient, humble servant,

AJIT-ASHRAM :
18th. February, 1916 }

AJIT PRASADA.

मित्रों की सलाह से वोटरों की सूची खरीद ली, और उस सूची से गली-गली मोहल्ले-मोहल्ले के वोटरों की अलग-अलग अक्षरानुक्रम सूचियाँ बनवालीं।

किन्तु पंडित रामनाथ सपरू ने अपना नाम वापस नहीं लिया। मैंने मित्रों से कहा कि यदि वे मुख्य-मुख्य स्थानों पर सभाओं की योजना कर लें, तो मैं वहाँ भाषण देकर जनता को समझा दूँगा। किन्तु मित्रों का आग्रह हुआ कि मुझको एक-एक वोटर के घर जाना चाहिये और ऐसा बार-बार करना पड़ेगा।

अतः मैंने बिना संकोच के ऐसा करने से इन्कार कर दिया। अपना नाम वापस ले लिया। भविष्य में ऐसे चुनाव की उम्मेदवारी का परित्याग कर दिया। स्वात्माभिमानी व्यक्ति को ऐसे चुनाव का विचार भी मन में न आने देना चाहिये। यह पाप की जड़ है, तीव्र कषाय पोषक और द्वेष-भाव वर्धक है।

सरकारी विकालत से त्याग-पत्र

लखनऊ ज़िले की सरकारी विकालत मैंने १६०१ से १६१६ तक की।

C. L. M. Eales, Sir Henry Daly Griffin, Sir Henry Moncrieff Smith, Sir Mohammad Rafique, Sir Seetla Prasad Bajpeyi; W. H. Warburton, H. D. Simpson, J. L. Johnston, T. K. Johnston, Jwala Prasad, Kunwar Parmanad आदि सेशन्स जजों के सामने काम किया।

Sir Edward Chamier, Sir Benjamin Lindsay Sir Louis Stuart, Sir Syed Wazir Hasan, Sir George H. Thomas, Sir Bisheswarnath Srivastava, Sir Sundar Lal आदि Chief Court के जजों के सामने भी काम किया।*

सरकारी विकालत के १६ बरस के समय में मेरा उद्देश्य सतत यह रहा था कि मैं अन्याय या अत्याचार का निमित्त कारण न हो जाऊं। मैंने कभी गवाहों को नहीं सिखाया न ऐसी गवाही पर ज़ोर दिया जो मेरी समझ में झूठ थी। सरकारी वकील का कर्तव्य है कि प्रजा के साथ न्याय पूर्वक व्यवहार में सहायक हो। वह पुलिस का वकील नहीं है, जैसा लोग साधारणतया समझते हैं।

---

*इनमें से कुछ महानुभावों के प्रशंसा-पत्र परिशिष्ट "स" में उद्धृत हैं।

यह भी मेरा सतत प्रयत्न रहा कि सरकारी वकील के पद की प्रतिष्ठा, सम्मान, और शुल्क की यथोचित उन्नति की जाय। मेरा अभीष्ट तथा प्रयत्न था कि—

१—सरकारी वकील की दैनिक फ़ीस २५) से बढ़ाकर ५०) कर दी जाय।

२—यह नियम कि यदि काम ३ घण्टे से कम में समाप्त हो जाय तो आधी फ़ीस दी जाय, मिटा दिया जाय; कारण कि बहुधा अवसर अपनी परिस्थिति विशेष के कारण सरकारी वकील से सम्बन्ध नहीं रखते, जैसे अभियुक्त का बीमारी के कारण जेल से न आना, जज का बीमार पड़ जाना, या किसी आकस्मिक कारणवश न आना, अभियुक्त का आकस्मिक मरण, मुक़द्मे का स्थगित हो जाना। साधारणतया सेशन का मुक़दमा दिन भर का या उससे अधिक समय लेने वाला ही होता है।

३—रेल का किराया अव्वल दरजे का मिलना चाहिये और दैनिक भत्ता ५) रोज़; कारण कि लखनऊ के सरकारी वकील की आय प्रति मास ५००) से अधिक ही होती थी, अर्थात् अव्वल दरजे के अफ़सर की होती थी।

४—सरकारी वकील जुडीशल-आफ़िसर-सूची में मिला दिया जाय। योग्यता वा आवश्यकतानुसार सरकारी वकील जुडीशल आफ़िसर और जुडीशल आफ़िसर सरकारी वकील होता रहे। दृष्टान्ततः कुँवर परमानन्द सरकारी वकील के पद से Subordinate Judge ७००) के grade में नियत किये गये।

मेरा प्रयत्न असफल रहा।

एक पत्र में Legal Remembrancer E. H. Ashworth ने मुझे लिखा "क्या तुमको कोई title (खिताब) दिया जाय, तो तुम संतुष्ट होगे?" मैंने उत्तर में लिखा कि सामाजिक संस्कृति के अनुसार "राय-

साहेब" तो साधारणतया प्रत्येक प्रतिष्ठित सज्जन को कहा ही जाता है और कभी-कभी बहादुर शब्द भी बढ़ा कर राय...साहिब-बहादुर भी लिख दिया जाता है। "रायसाहब" या "रायबहादुर" कुछ विशेष मानप्रद पद नहीं हैं। और इससे अधिक की आशा साधारणतया मैं नहीं कर सकता। Sir यानी Knighthood की आशा तो मेरे लिये असम्भव ही है।

अन्ततः असंतुष्ट होकर मैंने मार्च १६१६ में सरकारी विकालत से त्याग-पत्र दे दिया। मेरी सरकारी विकालत के ज़माने में Sir Harcourt S. Butler कई बरस तक लखनऊ के डिप्टी कमिश्नर रहे। वह मेरे काम से प्रसन्न थे। उनकी सिफ़ारिश पर मुझे Typist clerk और Type-writer दे दिया गया। मेरी प्रार्थना पर दफ़्तर से रिपोर्ट थी कि सरकारी वकील को आवश्यक प्रतिलिपि दफ़्तर से दी जाती है। कभी टाइपिस्ट नहीं दिया गया। Butler महोदय ने उस पर लिखा था। "Lucknow, the Capital is the Cinderalla of the Province. Lucknow has not and shall not have anything, until it asks for it. Government Pleader must have a Typist. Write to Government". उन दिनों मैं सरकारी विकालत से सन्तुष्ट था। यदि मैं चाहता, तो बटलर महोदय जो Education Member Goverment of India, Governor of Burma, Governor of U. P. तथा President Indian State Committee हो गये, मुझको कशमीर, बड़ौदा, इन्दौर, ग्वालियर आदि बड़ी रियासत का दीवान या हाईकोर्ट जज करा देते।

ट्रेडिंग ऐण्ड बैङ्किंग हाउस लिमिटेड

इण्डियन स्पीसी बैंक में मैंने १६१५-१६१६ में १०-१५ हज़ार रुपया मियादी अमानत के रूप में जमा किया था। वह बैंक दिवालिया हो गया। वहाँ पण्डित सम्पतराम जानी काम करते थे। बैंक के दिवाला निकालने की खबर फैल गई थी। मैंने बैंक से प्रस्ताव किया कि मेरा रुपया मियाद से पहले ही तुरन्त दे दिया जाय। मैं ब्याज सबका सब छोड़ने को तैयार हूं। बैंक के अधिकारियों ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। सम्पतराम जानी ने सलाह दी कि बैंक से उस अमानती रुपये की ज़मानत पर उधार रुपया ले लिया जाय। मैं उन दिनों काठियावाड़ बैंक के लिक्वीडेटर की तरफ़ से वकील था। और मेरी समझ में कम्पनी क़ानून के अनुसार दिवालिया हो जाने पर उधार का रुपया अमानत में से कट नहीं जायगा, बल्कि कर्जदार से पूरा ब्याज समेत लिया जायगा, तथा मेरा अमानती रुपया मुझको हिस्से रसदी बटने पर मिलेगा।

मेरी यह धारणा ग़लत निकली। यदि मैं सम्पतराम की सलाह मान लेता, तो फ़ायदे में रहता। अन्ततः मुझे स्पीसी बैंक से रुपये में ।।।) या ।।।-) मिले।

इस दुर्घटना से प्रभावित होकर अपने मित्र बुलन्दराय, सब रजिस्ट्रार लखनऊ की राय से मैंने ट्रेडिङ्ग ऐण्ड बैङ्किंग हाउस, लखनऊ की स्थापना श्री एल० एम० जापलिङ्ग डिप्टी कमिश्नर द्वारा कराई।

श्री सम्पतराम जानी को ५०) मासिक पर मैनेजर नियुक्त किया। मैंने १००००) के हिस्से लिये और मैनेजिङ्ग डाइरेक्टर रहा। सम्पतराम

जी को बैङ्क के ऊपर के भाग में बिना किराये स्थान दिया गया। शनैः शनैः सम्पतराम जी का वेतन २००) मासिक हो गया। इसके अतिरिक्त मंहगाई, प्राविडेयटफ़यड, वार्षिक पारितोषिक (Bonus) आदि मिलते हैं।

पिछले ३४ वर्ष में बैङ्क ने आशातीत सफलता प्राप्त की है। अन्तिम चिट्ठे के अनुसार बैङ्क में हिस्सेदारों का रुपया ४००००) है।

साख इतनी है कि साढ़े तीन लाख से ऊपर बाज़ार का रुपया जमा है। बैङ्क का मकान लाख रुपये के दाम का है, यद्यपि उसके दाम चिट्ठे में १७५००) ही लिखे हैं।

पण्डित अर्जुनलाल सेठी

पण्डित अर्जुनलाल सेठी B. A. से मेरा परिचय दिल्ली में भाई मोतीलाल जी के घर पर सतघरा मुहल्ले में हुआ। वह खंडेलवाल जैन थे। जैन धर्म का गहरा तत्वज्ञान था। श्वेताम्बर साधु से उन्होंने कर्म ग्रन्थ का अध्ययन किया था। उनके पिताजी एक ठिकाने के कारभारी थे। बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने पर उनके पिता का स्थान इनको दिया जाने का प्रस्ताव हुआ। किन्तु इन्होंने इन्कार कर दिया और इस स्थान पर अपने भाई इन्द्रलाल सेठी की नियुक्ति करा दी। अर्जुन लाल जी को विद्या-प्रचार, समाज सेवा, जैनजाति-उत्थान, जैनधर्म-प्रचार की लगन थी। उन्होंने जयपुर में जैनशिक्षा-प्रचारक समिति, जैनसन्मति पुस्तकालय, वाचनालय स्थापित किये। बालकों की प्रातःसायं प्रार्थना की रचना की जिसका व्यापक प्रचार हुआ। समिति में निस्वार्थ कार्यकर्ता अर्जुनलाल जी को मिल गए थे। जो अपना स्वार्थ त्याग देता है, उसको निःस्वार्थ कार्यकर्ता मिल ही जाते हैं।

१९१० में अर्जुनलाल जी ने जैन यंगमेन्स एसोसियेशन को जयपुर में वार्षिक अधिवेशन करने का निमन्त्रण दिया। संस्था का नाम "भारत जैन महामण्डल" रखा गया। उसी अवसर पर यह निश्चय हुआ कि किसी उचित स्थानपर जैन गुरुकुल की स्थापना की जाय। उसी के फलस्वरूप १ मई १९११, वैशाख शुक्ल अक्षय तृतीया के दिन हस्तिनापुर में "ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम" की स्थापना हुई।*

अर्जुनलाल जी से आग्रह किया गया कि वह जयपुर की जैन शिक्षा प्रचारक समिति आश्रम में मिला दें। किन्तु उन्होंने न

---

* देखिये पृष्ठ ८४

माना। परिणामतः जो धन समाज से सेठी जी को मिलता था, आश्रम को मिलने लगा। सेठी जी की संस्थाओं को हानि पहुँचने लगी। सेठी जी ने इन्दौर मे कल्याण हाई स्कूल में मुख्याध्यापक की नौकरी २००) मासिक पर स्वीकार कर ली। तनख्वाह का बहुभाग जयपुर संस्थाओं को भेजने लगे। उधर उनकी शिक्षा संस्था के चार विद्यार्थी * धन उपार्जनार्थ निकल पड़े। वह महाराष्ट्र देश के और तिलक महाराज के अनुगामी थे। चारों युवक एक महन्त के आश्रम में पहुँच गए। महन्त अपना धन तिजोरी में रखता था। युवकों ने रात को महन्त की जटा से तिजोरी की कुञ्जी निकालीं, तो महन्त जाग पड़ा। युवकों ने महन्त को मार डाला और उसका शव एक अन्धे कुएं में डालकर सूर्योदय से पहले भाग गए। बरस भर गुज़र गया किसी को पता नहीं चला। दिल्ली में लार्ड हारडिंज की सवारी के समय बम फेंकने के सम्बन्ध में पुलिस ने तहक़ीक़ात के सिलसिले में अर्जुनलाल सेठी के तार-पत्र आदि रोक कर जाँचने शुरू कर दिये और संदेह के कारण अर्जुनलाल को अकेले नज़रबन्द कर के जयपुर में सरकारी हुक्म से रखा। उनको नज़रबन्दी से मुक्त कराने तथा उन पर खुली कचहरी में मुकदमा चलाने के लिए मैंने १९१३ से १९२० तक निरन्तर प्रयत्न किया। ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद, बैरिस्टर जगमन्धर लाल तथा महात्मा गांधी ने पर्याप्त सहयोग दिया, कोशिश की। अर्जुनलाल जी जयपुर से मद्रास प्रान्त के वालटेयर जेल में रखे गये। उनके अनशन सत्याग्रह पर सरकार ने जैनमूर्ति जेल में भिजवा दी। मूर्ति लेकर महात्मा भगवानदीन जी गये और वहाँ रहे।

जेल में एकाकी रहने के कारण अर्जुनलाल जी का चित्त विक्षिप्त हो गया। १९२० में जब राष्ट्रीय अपराध में कैद रखे गये बन्दी छोड़े

---

* देखिये "चार चाँद" पृष्ठ ८६। मानिकचन्द को फाँसी हो गई। दूसरा राज-साक्षी हो गया, तीसरा लुक गया और चौथे की मुझे याद नहीं।

गये, तब छूटे। जैन समाज ने उनका यथोचित सम्मान नहीं किया। आर्थिक कष्ट और विक्षिप्त मन के कारण वह मुसलान हो गए और शरीरान्त होने पर मुसलमानों ने उन्हे क़ब्र में गाड़ दिया।

मैं महात्मा गाँधी से इस सम्बन्ध में १९१२ में मिला था। उनके हस्तलिखित तीन पत्र यहाँ प्रकाशित किये जाते हैं। पहला पत्र १ नवम्बर १९१६ का हैं, दूसरा फ़रवरी और तीसरा अप्रैल १९१७ का।

Ahmedabad
1st Nov 1916

Dear Mr Jyotiprasada

I well remember having met you at Bombay.

I talk[ed] about Pandit Arjanlal in the early part of this year but I understood then that the Government had positive proof in their possession of a damaging nature. Since then I have become lukewarm. I should like to discuss the matter further with you before taking further steps. I know the argument that we ask not for an unconditional discharge but for a proper trial. The most effective appeal can however be based only on real innocence of the party concerned. If you come to Lucknow during the Congress week we shall discuss the whole matter.

Yours sincerely,
M K Gandhi

Ahmedabad
1st Nov. 1916

Dear Mr. Ajit Prasada.

I well remember having met you at Bombay.

I took action about Pandit Arjun Lal in the early part of the year but I understood then that the Government had positive proof in their possession of a damaging nature. Since then I have become lukewarm. I would like to discuss the matter further with you before taking further steps. I know the argument that we ask not for an unconditional discharge but for a proper trial. The most effective appeal can however be based only on real innocence of the party concerned. If I come to Lucknow during the Congress Week, we shall discuss the whole matter.

Yours sincerely
M. K. Gandhi

२

भाई श्री०—

आप का खत मिला है। मैं सेठी जी को मिलने को तजवीज कर रहा हूँ। प्रयत्न का परिणाम लिखूंगा।

अमदावाद — मोहनदास गांधी
माघ कृष्ण ५

३

मैं कल मुसाफरी में से वापस आया अब तक जाने का मुकरर नहि हुआ है। इसलिये तार नहि कीया हूं। मैं भारी प्रयत्न कर रहा हूं। खबर मीलने से तार भेजूंगा। मुसाफरी का खर्च आप दे सकेंगे, तो लूंगा।

अमदावाद — मोहनदास गांधी
गुरुवार

गणेशगंज सेवा-समिति

१६१८ के अप्रैल मास में श्री लछमन पाँडे जी के विशाल चबूतरे पर एक वृहद् जन-समूह में मेरे भाषण तथा प्रस्ताव पर गणेशगंज सेवा-समिति की स्थापना हुई। तुरन्त ही कार्य प्रारम्भ हो गया। प्रारम्भ में रात का पहरा लगाने की योजना की गई। प्रत्येक घर से एक व्यक्ति ने रात भर पहरे पर रहने के लिये सहर्ष स्वीकृति प्रदान की। अपनी-अपनी गली में पहरा देना सीमित रखा गया। अन्य गलियों में पहरे के काम पर जाने का प्रत्येक सभासद को अधिकार था। प्रत्येक सभासद को drill भी सबके साथ सीखनी पड़ती थी। रमज़ान का महीना था, मुसलमानों के रोज़े के दिन थे। जो मुसलमान काँसटेबिल गणेशगंज चौकी पर रहते थे (वह पुलिस चौकी अब अमीनाबाद चौकी में मिला दी गई है) उन्होंने हम लोगों पर भरोसा करके अपना गश्त का काम छोड़ दिया और बेफ़िक्री से सोने लगे।

एक दो सप्ताह में हमारा पहरा देने का काम लखनऊ भर में फैल गया।

मैं नित्य रात को ६ बजे अपनी टमटम पर नवाबगंज, चौपटिया, रानीकटरा, चौक, यहियागंज आदि नगर के सब मोहल्लों में काम की निगरानी कर आता था। ३-४ बजे घर लौटता था। असाधारण घटनाओं की लिखित रिपोर्ट मेरे पास आती थी। महीने भर में समिति का इतना प्रभाव पड़ा कि शहर में चोरी होना ही बन्द हो गया।

पुलिस का उद्देश्य यह होना चाहिये कि अपराध होना ही बन्द हो जाय। मगर पुलिस के हाकिमों ने चोरी की रिपोर्ट बन्द हो जाने का अर्थ यह लगाया कि पुलिस-दरोगा चोरी की घटनाओं को छिपाते

हैं। और बिना प्रमाण के इस अनुमान पर हमारी समिति का विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। उस विरोध का श्रीगणेश इस प्रकार हुआ कि "अवध सेवा समिति" नाम की संस्था स्थापित कराई गई। उस संस्था ने चाहा कि गणेशगंज सेवा समिति उस संस्था में ही गर्भित हो जाय और उसका उद्देश्य दुखी दरिद्र जनता की सहायता तथा मेलों का प्रबन्ध रहे। पहरे देने का काम पुलिस पर छोड़ दिया जाय।

इसी प्रकार डिप्टी कमिश्नर, ने शहर के सब महाजन, रायबहादुर, खानबहादुर आदि रईसों की एक बड़ी सभा अपने बंगले के बड़े कमरे में की। उस सभा में मुझे भी निमन्त्रित किया। गणेशगंज सेवा समिति के काम की प्रशंसा करते हुए कहा कि अच्छा हो यदि गणेशगंज सेवा समिति को नियमबद्ध (organise) कर दिया जाय। उसके सदस्य पुलिस लाइन्स में ड्रिल सीखने जाएं और कुछ सरकारी काम में भी सहायता दें, जैसे कि अभियुक्त अपराधियों को जेल से लाना और पहुँचाना, सरकारी खज़ाना ले जाना, आदि। और एक संस्था Civic-Guard के नाम से स्थापित की जाय। यह Civic Guard संस्था २४-२५ बरस बाद सरकार ने स्थापित की जिसका बीजारोपण १९१८ में हुआ था।

मैंने कहा कि हमारी समिति के सदस्य भले घरों के व्यक्ति हैं, वह अपनी गली में काम करना अपना कर्तव्य समझते हैं, पहरा देना आत्म सम्पत्ति की रक्षा का काम है। सरकारी काम करना वह पसन्द नहीं करेंगे। ड्रिल सीखने के लिए हम अपनी समिति के अधिकारी वर्ग को military लाइन्स में फ़ौजी अफ़सरों से ड्रिल सीखने के लिये भेजने को तय्यार हैं, वह हमारे स्वयंसेवकों को सिखा लेंगे। पुलिस वाले असभ्य बर्ताव करते हैं, अतः पुलिस लाइन्स में ड्रिल सीखने के लिए जाना पसन्द नही करेंगे।

अवध सेवा समिति को सरकारी सहायता मिलने लगी, हमारी समिति का उत्साह साहस खंडित हो गया। और समिति का कार्यक्षेत्र मेलों पर प्रबन्ध करने में सीमित रह गया। गोविन्दप्रसाद गुप्त, चन्द्रशेखर-पांडे आदि पुराने कार्य कर्ताओं के देहावसान के कारण गणेशगंज सेवा समिति का अब केवल नाम शेष रह गया है।

अन्ततः कुछ घटनाओं का वर्णन करके इस प्रसंग को समाप्त करता हूं।

१—हमारी समिति में एक व्यक्ति ने पत्र पेश किया, जो उसके पास आया था, और जिसमें लिखा था कि अमुक स्थान पर ५००) लेकर आधी रात को आओ, और दे जाओ, नहीं तो तुम्हारे घर पर डाका पड़ेगा। हमारी समिति के सदस्य उसी रोज़ उसी समय, उसी स्थान पर गए। कोई आदमी भी नहीं आया। डाके की धमकी व्यर्थ ही रही।

२—एक दिन एक फ़ौजी सिपाही गणेशगंज के एक कपड़ा बेचने वाले की दुकान पर बिना दाम दिये कपड़े का थान उठाकर चलने लगा। वह शराब के नशे में था। हमारे स्वयंसेवकों ने उसको मार-पीट कर थान उससे छीन लिया। इतने में पुलिस के सिपाही हमारे स्वयंसेवकों को पकड़ कर ले गए, हवालात में बन्द कर दिया। कचहरी से घर आने पर मुझको यह खबर मिली। मैं तुरन्त कोतवाली गया, अपने स्वयं-सेवकों को छुड़ा कर लाया। सिटी मैजिस्ट्रेट के यहां मुकदमा पेश हुआ, स्वयंसेवक बिना जवाब छूट गये, और उस सिपाही पर ४) जुरमाना हुआ, जो मैंने स्वयं दे कर उसको भी छुड़ा दिया।

३—रात को कुछ आदमी इक्के में जा रहे थे, इक्के का परदा पड़ा हुआ था, हमारे स्वयंसेवकों को मरदानी आवाज़ सुन कर शक हुआ कि किसी औरत या लड़की को भगाए लिये जा रहे हैं। उन्होंने इक्का रोक लिया, परदा उठा दिया, तो मालूम हुआ कि कुछ शराबी मर्द ही हैं।

यदि यह सेवा-समिति सरकारी हस्तक्षेप के कारण बंद न करदी जाती, तो नगर की बड़ी उपकारी संस्था होती। और चोरी या अन्य अपराध बन्द हो जाते; राम राज्य का दृश्य दिखाई पड़ता। किन्तु यह न होना था न हुआ। मेरा सब प्रयत्न एक स्वप्नवत् रह गया।

यह गणेशगंज सेवा-समिति एक काम अवश्य कर पाई। वह यह कि उन दिनों हैज़े की बीमारी का बहुत ज़ोर था। हमारे ब्राह्मण स्वयंसेवकों ने कहारों की परिचर्या करी है, और उनके मृतक शरीर की अन्तिम क्रिया की है।

मेरी पत्नी के देहान्त पर भी हमारे स्वयंसेवक रात भर मेडिकल कालिज के पास घास पर लेटे बैठे रहे तथा शव-यात्रा में साथ गए।

वैवाहिक जीवन—पत्नी वियोग

माता जी के मरने के कुछ दिन पीछे ६ बरस की उमर में ही मेरी सगाई हो गई। मनोहरी मुझसे डेढ़ बरस छोटी थी। हम दोनों नए मन्दिर जी की ज़नानी ड्योढ़ी के मैदान में अनार के वृक्ष के नीचे अनार की कलियाँ चुन-चुन कर खेला करते थे। विवाह छह बरस पीछे हुआ। बीच के छह बरस में बैसाखी, जेठी, सलोनो, दशहरे, दिवाली, होली आदि त्योहारों पर मेरी सुसराल से खरबूज़े, आम, पीतल के मट्टी के खिलौने, मिठाई, नमकीन आदि के थाल आते थे और मुझको हर त्योहार पर बुलाकर सम्मानित किया जाता था। मेरे श्वसुर श्री मोहरसिंह अलवर रियासत में तहसीलदार-मजिस्ट्रेट थे, लेकिन केवल एक लड़की छोड़ कर जवान मर गये। मनोहरी लाला रिश्कलाल रईस के घर जो मेरे श्वसुर के चचा थे, और रियासत अलवर में फौजदार ज़िला मजिस्ट्रेट थे, रहने लगी। उन्हीं के घर से सतघरे मोहल्ले से मेरा विवाह सामने वाली ऊंची ड्योढ़ी की बड़ी हवेली से हुआ।

मुझे बचपन से विद्योपार्जन का शौक़ था। बराबर अपनी कक्षा में सर्वोच्च रहता था। विवाह के समय मैं १२ बरस का था। विषय वासना जाग्रत नहीं हुई थी। एन्ट्रेन्स परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुका था। मई १८८८ में पत्नी मनोहरी दिल्ली से लखनऊ आई। सहवास के लिये मुझे और उसे लैम्प जला कर कमरे में बन्द कर दिया गया। वह लैम्प के पास बैठी रही, मैं पलंग पर लेट रहा। हाथ में लघु सिद्धान्त कौमुदी थी। और व्याकरण के सूत्रों की पुनरावृत्ति कर रहा था। मैं पत्नी के पास तक न गया। न वह मेरे पास आई। उसने कई दफ़ा दरवाज़ा खटखटाया। दादी जी और भाभी जी बाहर से झिरियों में से झाँकती रहीं; और आखिरकार

दरवाज़ा खोल दिया। मैं बाहर छत पर जा सोया; और वह भी अलग सो गई। दो-तीन दिन बाद परदा तानकर एक पलंग पर सोने का हम दोनों को आदेश हुआ। मैं थोड़ी देर लेटा रहा। फिर परदे से बाहर आकर लेटा रहा। इसी तरह करीब एक महीना बीत गया। फिर बड़ा परदा बड़ी छत पर लगाया गया और वहाँ दो पलंग बिछा दिये गये। हम दोनों अलग-अलग पलंग पर सोते थे। आपस में वार्तालाप तक नहीं करते थे। जून महीने में रात को ज़ोर की बारिश हुई। तेज़ हवा चली। बिजली कड़कती रही। कमरे में हम दोनों एक पलंग पर सोए। बिजली, वर्षा, के कारण आवाज़ कमरे के बाहर न सुनी जा सकती थी। उस रात को बातचीत और गर्भाधान संस्कार हुआ।

दो-चार महीने पीछे वह दिल्ली चली गई और वहाँ अगस्त १८६० में चन्द्रवती उपनाम सरला पुत्री जन्मी। फिर १०-११ बरस तक मेरी पत्नी अधिकतर अपनी माँ के पास दिल्ली ही रही। सरकारी वक़ील हो जाने पर मैं शेर दरवाज़े के सामने तारघर, कचहरी के पास एक मकान किराये पर लेकर रहने लगा। पंडित गोकरणनाथ मिश्र मेरे पड़ौसी थे। उसी मकान में परदे का प्रबन्ध करके पत्नी और बेटी के रहने की सुविधा कर ली। मेरे नाना भगत जी भी वहाँ ही रहने लगे। उस मकान में १६१० तक रहे। और वहाँ से अपने घर के मकान अजिताश्रम में गृह-प्रवेश किया।

सहधर्मिणी का स्वास्थ्य प्रबल था। ३१ बरस के वैवाहिक जीवन में, और छः बच्चों की जननी होकर उसको कभी किसी वैद्य हकीम की आवश्यकता नहीं पड़ी। पानी में बनी हुई डाक्टरी दवा (mixture) का तो आजन्म त्याग कर दिया था। केवल सूखी दवा की छूट रखी थी, जिसके प्रयोग का कभी अवसर नहीं पड़ा।

धार्मिक क्रियाकांड में उसका गहरा श्रद्धान था। निर्जल उपवास महीने में एक दो हो जाते थे। कभी कभी निरन्तर २ दिन का निर्जल उपवास हो जाता था और भी अनेक नियमों का पालन करती थी।

आसाढ़ १६१८ के अन्तिम सप्ताह में नन्दीश्वर द्वीप पूजा विधान के दिनों में जिनको अठाइयाँ कहते हैं, मेरी पत्नी ने दो दिन का निरन्तर उपवास किया उसको "वेला" कहते हैं।

तीसरे दिन नियमों की कठिनता के कारण उसने सूखे आटे की चपाती, कोयलों पर अधसिकी, खाकर पानी पी लिया। उसके परिणामरूप वमन तथा पतले दस्त होने लगे। डाक्टर ने दवा लिख दी। मैंने स्वतः दवा मिलाकर उसमें पानी मिलाया। और निशान बनाकर पीने को दे दी। मैं "पुरुषार्थसिद्ध्युपाय" के अंग्रेज़ी अनुवाद करने में लग गया। जब रोग का आक्रमण बढ़ता गया, और मैंने अन्दर जाकर पूछताछ की तो उसने स्वीकार किया कि उसने दवा का एक निशान भी नहीं पिया। एक एक करके निशान के बराबर दवा चिलमची में गिराती रही क्यों कि उसको संदेह हो गया था कि दवा डाक्टर के दवाखाने से बन कर आई है। डाक्टर को फिर बुलाया तो उसने कहा कि हैज़ा ज़ोर पकड़ गया है। मरीज़ को मेडिकल कालिज लेजाना आवश्यक है। पत्नी से कहा कि मेडिकल कालिज चलना होगा। तो लालो (कैलाश भूषण) को जो १५ महीने का था गोद में लेकर प्यार किया और वेहोश हो गई। पालकी गाड़ी से उसको मेडिकल कालिज ले गये। पहुँचते पहुँचते रात हो गई। वहां नमक का पानी (saline injection) रग काट कर वेहोशी की दशा में चढ़ाया गया। बुखार चढ़ आया। मगर होश में नहीं आई। ज्वरताप एक बगल में १०५ और दूसरी में १०६ था। बरफ़ में भिगोई चादर लपेटी गई। फिर रुई के पहल पाव पर बांधे गये। सब उपचार व्यर्थ गये। और सूर्योदय से पहले प्राणान्त हो गया। गणेशगञ्ज सेवा-

समिति के कार्यकर्त्ता मेरे मित्र दरवाजे के पास मैदान में घास पर रात भर बैठे लेटे रहे।

अष्टान्हिका पर्व के दिन उसका अन्तिम संस्कार जैन विधिपूर्वक उसके जेष्ठ पुत्र सुमति ने किया।

गृहिणी के देहान्त के पहले ही मैंने सरकारी विकालत से तो त्यागपत्र दे दिया था। उसके देहान्त पर सब कानूनी पुस्तकें तथा असबाब दो दिन तक नीलाम किया गया, दोनों कोठियाँ बेच दी गई। मैं भाई मोती लाल जी के साथ नन्दन लालो को लेकर काशीवास के अभिप्राय से बनारस चला गया। सुमति, नेमी, शान्ति तो वहाँ पहले ही से छात्रालय में रहते और पढ़ते थे।

काशी वास

जनवरी १६१६ में, भाई मोतीलाल जी के परामर्श तथा सहयोग से, नन्दन-लालो दोनों बच्चों को लेकर मैं दुर्गाकुण्ड रोड पर गुरुद्वारे की ऊपरी मंज़िल में किराये पर रहने लगा। सुमति, नेमी, शान्ति तो पहले से ही सेन्ट्रल हिन्दू कालिज के छात्रालय में रहकर अध्ययन करते थे।

थोड़े ही दिनों पीछे भाई मोतीलाल जी किसी बात पर नाराज़ होकर मुझसे कहे बिना चल दिये। मैं अकेला रह गया।

गरमियों के दिनों में परीक्षामुख, न्याय दीपिका, नयकर्णिका, नयावतार, खाद्यखण्डन, पुरुषार्थसिद्धयुपाय, आत्मख्याति, समयसार, अन्य संस्कृत साहित्य का अध्ययन जारी रहा।

सुमति के एन्ट्रेंस पास होने के उपलक्ष में आम के रस की बर्फ़ कुल्फ़ी का प्रीति-भोज अच्छा हुआ।

ब्रजविलास जी की संरक्षता में सुमति-नेमी गङ्गा पार तक तैर गए। मैं भी बीच धारा में कूद कर तैर आया। लालो-सुमति दोनों बीमार भी पड़े। मेरे भी जाँघ में फोड़े पर डाक्टर गोपीलाल ने नश्तर बेहोशी सुंघा कर चलाया।

डाक्टर गणेश प्रसाद जी* को मुझसे प्रेम था। ४६ दुर्गाकुण्ड उनको कण्ठस्थ हो गया था। उन्होंने पर्याप्त प्रयत्न किया कि हिन्दू यूनिवर्सिटी की काउन्सिल की सदस्यता में मेरा नाम निर्वाचित हो जाय। श्री मालवीय जी को जैन धर्मावलम्बियों से साम्प्रदायिक अप्रसन्नता थी। इस कारण डा० गणेश प्रसाद असफल रहे। विश्वविद्यालय में भी मुझको

*भारत के प्रसिद्ध गणितज्ञ

मानद निःशुल्क कानूनी अध्यापक का स्थान नहीं मिला और न थियोसोफ़िकल सोसाइटी में कोई पदाधिकार प्राप्त हुआ।

जब मैं काशी में रहता था, श्री बाबू निर्मल कुमार जी ने १०-१२ हज़ार की लागत से आरा निवासी श्री चंदी प्रसाद जी की देख-रेख में, अपने दादा के बनवाये हुये प्रभुघाट की मरम्मत कराई। उन दिनों भदैनी घाट को हम लोग प्रभुघाट कहते थे, और उस स्थान का जहाँ स्याद्वाद महाविद्यालय स्थित है निर्वाण कुञ्ज कहते थे।

जिस उद्देश्य से महाविद्यालय स्थापित कराया गया था, वह भी पूरा नहीं हुआ। स्याद्वाद महाविद्यालय से केवल एक क्षुल्लक गणेश प्रसाद जी ही ऐसे प्रौढ़ विद्वान् तथा चरित्रवान निकले कि जिन पर जैन समाज को यथोचित अभिमान है।

स्याद्वाद विद्यालय के प्रबन्धकारिणी समिति का सदस्य मैं उसकी स्थापना के समय से बरसों तक रहा। महाविद्यालय में धनी वा प्रतिष्ठा प्राप्त घरों के बालक बहुत कम प्रविष्ट होते थे। जो बालक भरती होते थे, उनको भोजन, वस्त्र बिना दाम मिलता ही था, और पढ़ाई निःशुल्क थी ही। फिर भी कुछ विद्यार्थी ऐसी संकीर्ण प्रवृत्ति के थे कि समाज के प्रतिष्ठित सज्जनों से गुप्तपत्र लिख कर आर्थिक सहायता प्राप्त कर लेते थे। इस व्यवहार से महाविद्यालय की महिमा में बट्टा लगता था। एक सज्जन ने कितने ही कपड़े के थान महाविद्यालय को भेंट किये। कमेटी ने विद्यार्थियों के वस्त्र एक प्रकार के बनवा देने का प्रस्ताव किया। इस पर विद्यार्थियों ने विद्रोह मचा दिया कि हम सिपाहियों की सी वर्दी नहीं पहनेंगे। हम अपने मन का कपड़ा, और अपनी पसन्द की काट का वस्त्र बनवाएँगे।

विद्यार्थियों ने यह भी कुटेव कर ली थी कि रसोई के समय अपनी-अपनी घी की हाँडी लेकर जाते थे। कमेटी ने निश्चित किया कि घी

विद्यार्थी के पास न रहे। सब घी दाल में रंधते समय डाल दिया जाय, और रोटी रूखी परसी जाये। इस पर विद्रोह बढ़ गया। उद्दण्डता के कारण कुछ विद्यार्थियों को विद्यालय से पृथक करना पड़ा। मामला फिर कमेटी के सामने पेश हुआ। मैंने इस पर प्रबन्ध-समिति से त्याग पत्र दे दिया।

अब भी महाविद्यालय के भारी मासिक व्यय को ध्यान में रखते हुए यथोचित सफलता नहीं है। द्रव्य का यथेष्ट सदुपयोग नहीं हो रहा है।

जैन जाति के विद्यार्थियों ने महाविद्यालय को गिराकर अनाथालय सा बना दिया है, और इसी कारण कोई प्रतिष्ठित सज्जन अपने बालक इस जैन संस्था में पठनार्थ नहीं भेजते।

कलकत्ता अशासकीय आयोग

१९१७ में कलकत्ता नगर में भारी हिन्दू-मुस्लिम बलवे हुए, जिनमें सैकड़ों मनुष्य जान से मार डाले गए या घायल हुए, और लाखों का माल लुट गया।

उस दुर्घटना की जाँच करने के वास्ते एक अखिल भारत वर्षीय कमीशन कलकत्ते की जनता ने स्थापित की, जिसका नाम Calcutta Non-official Commission रखा गया। सर्वश्री L. P. E. Pugh, H. D. Bose, Barristers High Court Calcutta, सेलम निवासी मदरास हाईकोर्ट के ऐडवोकेट श्री० विजय राघवाचार्य, बड़ोदा हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज अब्बास तैय्यबजी, और मैं उसके सदस्य निर्वाचित किये गए।

कलकत्ता हाईकोर्ट से मिले हुए एक दफ़तर में उसका अधिवेशन होता था। एक मास से अधिक गवाहों के बयान हुए। हम लोग करीब-करीब रोज़ श्री चित्तरंजन दास के मकान पर मिलते थे।

श्री विजय राघवाचार्य जी ने कानूनी दृष्टिकोण से और मैंने कमीशन की घटना के सम्बन्ध में रिपोर्ट लिखी। श्री सी० आर० दास ने मेरी लिखित रिपोर्ट पढ़ कर कहा कि वह उस रिपोर्ट का अनुवाद संसार की समस्त भाषाओं में करा के वितरित करवाएँगे। मैं वापस लखनऊ आगया। मेरी रिपोर्ट को एच० डी० बोस महोदय ने काट छांट के धीमी करदी, और मेरे दस्तखत के वास्ते लखनऊ भेज दी। रिपोर्ट का मूल-रूप विकृत हो जाने से श्री० चितरञ्जन दास जी हतप्रभ हो गए और उसे प्रकाशित नहीं कराया। कमीशन के दफ़्तर में ही रह गई।

जैन पोलिटिकल कानफ़रेन्स

१६१७ में श्री ई० एस० मानटेग्यु, सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट लन्दन से भारत इस उद्देश्य से पधारे कि जाँच करके पार्लियामेन्ट को रिपोर्ट करें कि भारतवासियों को क्या वैधानिक सुविधा तथा स्वत्व प्रदान किये जाने उचित हैं।

श्री मानिकचन्द्र वकील खंडवा ने और मैंने भारतीय जैन समाज के प्रतिष्ठित सज्जनों को पत्र लिखे, तथा समाचार-पत्रों ने भी आन्दोलन किया कि श्वेताम्बर, दिगम्बर, स्थानकवासी आदि सब को साम्प्रदायिक भाव गौण करके अखिल भारतीय जैन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली एक जैन पोलिटिकल कानफ़रेन्स नाम की संस्था स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है।

उन पत्रों और प्रकाशित लेखों के फलस्वरूप २७ अक्टूबर १६१७ को निम्नलिखित महाशय दिल्ली में रायसाहेब बाबू प्यारेलाल वकील की कोठी पर एकत्रित हुए।

(१) श्री टेकचन्द, जंडियाला गुरु (अमृतसर)

(२) श्री परमानन्द, कसूर (लाहौर)

(३) रायसाहेब मोती सागर, लाहौर

(४) सेठ सोहनलाल, पहाड़ी धीरज, दिल्ली

(५) श्री खैरातीलाल, मालीवाड़ा, दिल्ली

(६) श्री गोकुलचन्द, मालीवाड़ा, दिल्ली

(७) श्री लालचन्द, पहाड़ी, दिल्ली

(८) रायसाहेब बाबू प्यारेलाल, दिल्ली

(६) श्री अजितप्रसाद, लखनऊ

निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से स्वीकृत हुए :—

(१) जैन पोलिटिकल कानफ्रेन्स नाम की संस्था स्थापित की जाय।

(२) इस संस्था के उद्देश्य होंगे—

(क) अखिल जैन समाज के राष्ट्रीय अधिकारों और स्वत्वों की रक्षा और वृद्धि करना।

(ख) उपयुक्त उद्देश्य पूर्ति में निरन्तर प्रयत्न और प्रचार करना।

(३) २१ बरस की उम्र के ऊपर का प्रत्येक जैन धर्मानुयायी इस संस्था की सदस्यता का अधिकारी है।

(४) उपस्थित सज्जनों को मिलाकर कुल ३३ सदस्यों की एक कमेटी स्थापित की जाती है, जो एक प्रार्थनापत्र तैयार करेगी। इस कमेटी को अपनी सदस्य संख्या में वृद्धि करने का अधिकार होगा। यह कमेटी वैधानिक संशोधन की जो योजना नैशनल कांग्रेस और मुसलिम लीग ने सहमत होकर तय्यार की है उसको पूर्णतया स्वीकार करके उसमें इतने सुधार की प्रार्थना करेगी कि जैन समाज को एक गण्यमान लघुसंख्यक समाज मान कर उसको अधिकार दिया जावे कि वह अपनी ओर से एक प्रतिनिधि केन्द्रीय धारा सभा में और एक प्रतिनिधि प्रत्येक प्रान्तीय धारा सभा में भेज सके।

(५) सेक्रेटरी को अधिकार दिया जाता है कि पंडित अर्जुन लाल सेठी बी० ए० की विनिमुक्ति के वास्ते एक प्रार्थनापत्र केन्द्रीय सरकार और एक प्रार्थनापत्र महाराजा जयपुर की सेवा में प्रस्तुत करें।*

(६) कानफ्रेन्स का मुख्य कार्यालय दिल्ली में हो; उसकी शाखा लखनऊ में रहे।

---

*देखिये पृष्ठ ११७

(७) राय साहेब बाबू प्यारे लाल अध्यक्ष और श्री अजित प्रसाद सेक्रेटरी निर्वाचित किये गए।

यह अधिवेशन श्री टेकचन्द जंडियाला गुरू की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ।

श्वेताम्बरी मूर्तिपूजक जैन समाज के प्रतिनिधि बम्बई निवासी श्रीयुत् मकन जी जेठाभाई मेहता, बैरिस्टर-ऐट-ला के पत्र दिनांक २६ अक्टूबर १६१७ का आँशिक उद्धरण नीचे दिया जाता है—

"I am glad to hear that you and our other Jain friends and brethren are going to hold a Political Conference at Delhi. I regret I am unable to accompany you to Delhi, but I think myself fortunate that I had an opportunity of discussing the subject of Jain representation with you.

I believe that this is the best time to move if *as a community* the Jains want separate representation in the Provincial and Imperial Legislative Councils. We should adopt the scheme published by the Congress and the Muslim League and ask for separate representation as an important minority.

All the three sects should combine and there should be a joint representation or address in the matter. All the three seats should form an electorate, which body should elect the Jain representative. We should not ask for nomination by Government but for election"

मैंने प्रार्थनापत्र तैयार करके संयुक्त प्रान्त, बिहार, मदरास, बम्बई प्रांतों में भेजा किन्तु किसी स्थान पर भी वह लिया ही नहीं गया। कुछ न कुछ कारण बताकर वापस कर दिया गया। प्रार्थनापत्र की प्रतिलिपि नीचे प्रकाशित की जाती है—

To

His Excellency the Viceroy and Governor-General of India

AND

The Right Hon'ble His Imperial Majesty's Secretary of State for India.

The respectful representation of the Jain Political Conference.

MOST RESPECTFULLY SHEWETH :—

1. That the Jain Political Conference begs to present this humble representation on behalf, and as a representive, of the whole Jain community of India.

2. That the Jainas of India form a very ancient community. According to their own traditions they have existed from eternity ; and there never was a time when they did not exist. The historical monarch Chandragupta was a Jain. Marasimha who ruled in Mysore territory in the tenth century was a Jain King. The well-known Kumarpala was also a Jain ruler. Learned scholars of antiquities such as Weber, Jacobi, Leumann, Hoernb, Buhler have proved to demonstration the antiquity of the Jainas. The great oriental scholar Vincent Smith has, in his "Akbar the Great Moghul King" published in 1917, shown the vast influence exercised by the Jainas at the Court of Akbar the Great. The substantial co-operation and the invaluable services rendered by the Jain community to the East India Company, and thereafter to the British Government, are matters of Modern History, In States ruled by independent Chiefs and Princes, the Jainas occupy high and responsible positions as ministers and counsellors,

3. That the Jain religion, based on reason, has reconciled together practical ethics, philosophical speculations, the discoveries of science and the apparent contradictions in various systems of thought The doctrines of Individual Responsibility, and supreme Free Will, the lofty conception of self-redemption, and the great principle of Universal Brotherhood, Love and Peace among all living beings, human and sub-human, have imparted to it a magnificent vitality which has withstood the political attacks of centuries.

4. That the colossal Jain statues in Mysore, are among the "Wonders of the World" The glorious rock-cut temples at Mount Abu, the numerous sacred edifices on Shatrunjaya Hills, in Palitana, on the lofty peaks of Mount Girnar in Kathiawar, and on the Parasnath Heights, and the thousands of splendid temples in all towns, attract vast crowds of visitors and bear testimony to the importance of the Jain community.

5. That in proof of the commercial importance of the Jainas it is sufficient to refer to a pronouncement by Lord Curzon that one-half of the wealth of India passes through their hands.

6. That in the present European War, the Jainas have been singularly forward in supply of men and money. Rai Bahadur Seth Hukmchand of Indore has contributed a crore of rupees to the War Loan, an amount which no single individual has yet subscribed.

7. That in point of general literacy the Jainas occupy a very high position and stand only next to the Parsees.

8. That although various political changes and other causes have very much reduced the numerical strength of the Jain community of India, they still number about a million and a quarter, which is nearly equivalent to the self-governing population of South Africa and may therefore well lay a modest claim to be reckoned as an important minority in the vast Indian population.

9. That the Jainas of India are sincerely grateful for the announcement of a liberal policy of Constitutional Reforms concerning India ; and after an anxious deliberation, the Jain Political Conference is of opinion that the adoption by His Majesty's Government of the Scheme of Reforms jointly proposed by the All-India Congress Committee and the Muslim League will constitute a substantial advance towards responsible Self-Government ; and trusts that in the Reconstruction of the Empire after the War, India shall be placed on an equality with the Self-Governing Dominions, as a free and Self-Governing nation in the British Commonwealth.

10. That in the execution of the aforesaid Reform Scheme, the Jain community should be recognized as an "important minority," and should be accorded the privilege of electing one member for the Imperial and one for each of the Provincial Legislative Councils.

11. That in the humble opinion of this Conference, the Jainas along with the Sikhs, Parsees, and Mohamedans form "important minorities" which with the Hindu Community, embracing all its various schools of Philosophy, sects and sub-sects, constitute the Indian Nation.

With these humble suggestions, the Jain Political Conference concludes its respectful representation with an expression of gratitude to his Majesty's Government and the Government of India for affording to the people of this country an opportunity of stating their views on Constitutional Reforms.

Rai Bahadur Seth Hukmchand, Indore ... *Patron.*
Rai Sahib Lala Piyare Lal, Delhi ... *President.*
Babu Ajit Prasad, Lucknow ... *Secretary.*
Babu Umrao Singh Tank, Delhi ... *Joint Secretary.*
Lala Gokul Chand, Delhi ... *Treasurer.*

Jain Political Conference.

१९१७ का कांग्रेस अधिवेशन कलकत्ते में मिसेज़ बेसेन्ट की अध्यक्षता में हुआ। देश के प्रायः सभी नेता उपस्थित थे। उसी समय लोकमान्य श्री बालगंगाधर तिलक के सभापतित्व में जैन पोलिटिकल कानफ्रेंस का भी अधिवेशन हुआ। अन्य ४ अधिवेशन अहमदाबाद, गया, नागपुर, वर्धा में पंडित अर्जुनलाल सेठी को कारागार से मुक्त कराने के उद्देश्य से किये गए। किन्तु सब प्रयत्न असफल रहे।

इसका कारण समाज से पर्याप्त सहयोग का अभाव था।

महात्मा भगवानदीन जी का मुकदमा

११ अप्रैल १६१६ को पानीपत में पूर्ण हड़ताल हुई, जिसका कारण यह था कि महात्मा गांधी १० अप्रैल को पलवल रेलवे स्टेशन पर गिरफ़्तार कर लिये गए थे जब वह दिल्ली आ रहे थे। हड़ताल के दिन ११ अप्रैल को हिन्दू-मुसलमान आम रियाया का अनुमानतः २००० का समूह देवी ताल पर प्रातः ८ बजे एकत्रित हुआ। उस बृहज्जन समूह में अन्य वक्ताओं के अतिरिक्त महात्मा भगवानदीनजी ने भी भाषण दिया। उस भाषण के निम्न अंशों को अपराध-पूर्ण बतलाया गया—

(१) रौलट ऐक्ट के अनुसार अभियुक्त अपनी सफ़ाई में प्रमाण नहीं पेश कर सकता। विचार तक भी दण्ड योग्य है। सारा अधिकार पुलिस के सिपाही में केन्द्रित है जो ८) वेतन पाता है, और अभियुक्त को यह नहीं विदित किया जायगा कि उस पर किस प्रकार का अपराध लगाया जा रहा है।

(२) अंग्रेज़ों ने इस पर ध्यान नहीं दिया कि हिन्दुस्तान बरबाद हो रहा है। भारत का व्यापार नष्ट करने के अभिप्राय से अंग्रेज़ों ने यह कानून बना दिया कि भारत का कपड़ा अंग्रेजी बाज़ार में जहाँ भी मिले फूँक दिया जाय।

(३) पुलिस के सब अधिकारी घूस खाते हैं।

मुकदमा १२ जूलाई से १३ सितम्बर तक ज़िला मैजिस्ट्रेट दीवान टेकचन्द की कचहरी में चला।

दीवान साहेब ने तजवीज़ किया कि अपराध १ का अभियुक्त अपराधी है। अपराध २-३ का अपराधी नहीं है।

"अभियुक्त जैन ब्रह्मचारी उपदेशक हैं। उसके जीवन व्यवहार, साधारण सदाचार और बलिष्ठशरीर न होने को ध्यान में रखते हुए ६ मास का सादा कारागार पर्याप्त दंड प्रतीत होता है"।

भगवानदीन जी के भाषण के कुछ पद्य यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

(१)

ता शाना खिफ्त सर न निही तहे आरा,
हरगिज़ ब सरे जुल्फ़े निगारें न रसी।

जब तक तू अपना शिर आरे के नीचे नहीं रखेगा, कभी भी प्रियतम के केश की नोक तक नहीं पहुँच सकेगा।

(२)

ता हमचो हिना सूदा न गरदी तहे संग,
हरगिज़ ब कफ़े पाए निगारे न रसी।

जब तक तू मेंहदी की तरह पत्थर के तले पिस न जायगा, कभी भी प्रियतम के पैर के तलुवे तक नहीं पहुँच सकेगा।

(३)

ता खाके तुरा कूज़ा न साज़न्द कलालां,
हरगिज़ ब लबे लाले निगारे न रसी॥

जब तक तेरी मट्टी से कुम्हार कुल्हिया न बना लेंगे, तू कभी भी प्रियतम के मणितुल्य ओठ तक नहीं पहुँच सकेगा।

(४)

वह कौन सा उक़दा है जो वा हो नहीं सकता,
हिम्मत करे इन्सान तो क्या हो नहीं सकता॥

वह कौन सा फंदा है जो नहीं खुल सकता है, यदि मनुष्य हिम्मत करे तो सब कुछ हो सकता है।

मैं हर पेशी पर बनारस से करनाल जाता था। अपील करनाल के सेशन्सजज Colonel R. W. E. Knollys के सामने पेश हुआ। पाँच छः दिन निरन्तर अपील की सुनाई होती रही। १२ नवम्बर १६१६ को अपील नामंजूर हुआ। विद्वान जज की तजवीज़ २१ पृष्ठ में टाइप हुई है।

इसकी निगरानी हाई कोर्ट लाहौर में डाक्टर सर मोतीसागर ने दाखिल की। १३ युक्तियाँ लिख कर दिखलाया कि ज़िला मैजिस्ट्रेट और सेशन्सजज दोनों का फ़ैसला न्याय विरुद्ध है। निगरानी ५. फरवरी १६२० को Judge Scott Smith के सामने पेश हुई। राष्ट्रीय बंदीजन बादशाही हुक्म से बन्दीखाने से छोड़ दिये गए थे। जज महोदय ने मोतीसागर जी से कहा कि प्रार्थी शाही हुक्म से छोड़ दिया गया है। अब इस मामले में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। मोती सागर जी ने कहा कि यदि आप यह लिख दें कि शाही हुक्म से अपराध मिट गया, तो मुझे कुछ आगे नहीं कहना है। जज ने कहा कुछ भी हो यह बहुत समय लेने वाला मामला है, हम निगरानी खारिज करते हैं। मुक़दमा बिना सुनवाई के ही खारिज हो गया।

थोड़े दिन बाहर रहने के उपरांत, महात्मा भगवानदीन जी को पुनः सिवनी में कांग्रेस सम्बन्धी सत्याग्रह में भाग लेने के कारण सपरिश्रम कारागार का दण्ड सहना पड़ा। उन्होंने जेल में आतंककारी सरकार का अन्न ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया, दिन प्रतिदिन जेल के अधिकारी वर्ग से केवल पानी पीकर वह वार्तालाप करते थे। एक दिन वादविवाद में कोई जेल अधिकारी कह पड़ा "पानी क्यों पीते हो? जेल में नल भी तो सरकार ने ही लगवाए हैं।" इसपर भगवानदीन जी ने जल का भी त्याग कर दिया। गरमी के दिन थे। गले और जिह्वा में कांटे पड़ गए। जिस दिन महात्माजी मरणासन्न थे, उस दिन एक बैरिस्टर अपने घर से जल-फल

लाए। महात्मा जी ने अनशन तोड़ा। प्रतिदिन बैरिस्टर महोदय के घर से महात्मा जी के लिये आहार पानी आता रहा।

अक्टूबर १६२२ में प्रांतीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन पर भगवान दीन जी के देहरादून में दर्शन हुए। कारावास समाप्त करके आये थे। पैरों में बेड़ियों के घाव के निशान ताज़े थे।

———

कांग्रेस अधिवेशन

कांग्रेस सदा ही मेरी मनोनीत संस्था रही। प्रायः उसके वार्षिक अधिवेशनों में जाता रहता था। सन् १८६६ से लेकर हरिपुरा की सन् १६३८ की अद्वितीय सादगी की शान आँखों में बसी है। परन्तु इस साधारण वेशभूषा के साथ उच्च विचारों का वह वांछनीय स्तर कल्पना से बहुत नीचे रह गया। एक बार सोचा था मैं भी चार आने का सदस्य बन जाऊँ; परन्तु तब मुझे यह गुमान न था कि जेल जाने से मन्त्री पद तक की भी प्राप्ति हो सकती है, और ना ही खद्दर की गांधी टोपी में इतनी अटूट श्रद्धा थी। जैन-जाति-समुत्थान की लगन ही लिपटी रही और उसी में मैंने अपना तन-मन-धन लगा दिया।

(१) अहमदाबाद, १९२१

देखने को तो १८६६ की लखनऊ कांग्रेस देखी, १६१६ में लखनऊ में दूसरी मरतबा कांग्रेस के अधिवेशन का आनन्द लिया।* १६१७ में कलकत्ता कांग्रेस में सम्मिलित हुआ तथा गया और हरिपुरा कांग्रेस में गया, किन्तु जो अपूर्व आनन्द अहमदाबाद अधिवेशन में १६२१ में प्राप्त हुआ, उसकी मेरे चित्त पर अमिट छाप पड़ी है।

पूज्य भाई मोतीलाल जी ब्रह्मचारी के साथ दिल्ली से २२ दिसम्बर १६२१ को प्रातः चला। तीसरे दर्जे में नेहरू कुटुम्ब भी था। मार्ग में जगह जगह स्वागत जयकार होते जाते थे। २३ की शाम को कांग्रेस कैम्प में पहुँच गए। एक कुटिया में शरणली, तीन चारपाइयाँ पड़ी थीं।

---

*इसी समय महात्मा गांधी भारत जैन महामण्डल के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिये मेरे घर, अजीताश्रम में पधारे थे। देखिये पृष्ठ ८८

२४ को सूर्योदय से पहले, भिन्न प्रान्तों की महिला मंडली प्रभात फेरी के लिये राष्ट्रीय गान गाती निकल पड़ी। पं० अर्जुन लाल सेठी की कृपा से राज-स्थान के प्रतिनिधि का पद मुझे प्राप्त हो गया क्योंकि नसीराबाद (अजमेर) मेरी जन्मभूमि है।

श्री मावलंकर महोदय, जो आजकल केन्द्रीय संसद के स्पीकर हैं, उस समय स्वागतकारिणी के मन्त्री थे।

२५ तारीख को प्रदर्शिनी देखने गए। महिलाओं का पूर्ण प्रबन्ध था। बाहर दरवाज़े पर एक महिला खद्दर पहने, बिन्दी लगाए, नाक में लौंग तक नहीं, हाथ फैलाए चौराहे के सिपाही के समान रास्ता रोके खड़ी थी। युवक समूह एक दूसरे से ज़ोर आज़माई कर रहे थे, किन्तु किसी को दुर्व्यवहार करने का साहस न था। प्रदर्शिनी ऊपर के मकान में थी। जब वहाँ से खबर आती थी कि दर्शकों को आने दो, तो हाथ नीचे करके दर्शकों को एक एक करके क्रमानुसार क्यू (queue) के समान जाने दिया जाता था। नियमित संख्या के गुज़र जाने पर फिर रास्ता रोक दिया जाता था। प्रदर्शिनी के अन्दर भी दर्शकों को अधिक देर तक एक ही स्थान पर खड़े रहने पर टोक दिया जाता था। "चालो भाई" सुन कर आगे चलना ही पड़ता था।

रात्रि को आधी रात तक खुले मैदान में आकाश के नीचे जन समूह विविध वक्ताओं के उत्साह वर्धक व्याख्यान सुनता रहा। व्याख्यानों की भाषा सरल, सुसज्जित, उत्तेजक, मनोग्राही थी। कुछ वाक्य नमूने के तौर पर याद रह गए हैं—

(१) खैर सरकार की मनाते हैं। जिसका खाते हैं, उसका गाते हैं।

(२) यह पालतु बन्दर* घर नहीं छोड़ते।

(३) मत निकालो जेल से इस खानमाँ बरबाद को।
चार दिन सुसराल में रहने तो दो दामाद को॥

---

*अंग्रेज-लोग

(५) वह अपनी खू[1] न छोड़ेंगे
हम अपनी वज़आ[2] क्यों छोड़ें ।

(६) फ़र्क़ है शाह-ओ-गदा में इस क़दर ही ऐ अमीर ।
शेर-ए-क़ालीं[3] और है, शेर-ए-नयस्तां[4] और है ॥

२६ तारीख़ को प्रातः खिलाफ़त कान्फ्रेंस में मुसलिम नगर में मौलाना मुहम्मद अली का भाषण सुना । मौलवी सैयद ज़हूर अहमद[5] और मौहम्मद वसीम मिले ।

२७ को अब्बास तैय्यबजी अपनी बेटी रेहाना तैय्यबजी के साथ मुझे और भाई मोतीलाल जी को मंच पर लिवा लेगए । हकीम अजमल खाँ सभापति थे । सावित्री गोरखाली १६ वर्षीय कन्या ने मेज़ पर खड़ी हो कर मरदाना आवाज़ से जोश भरे शब्दों में कहा—"मैं टोपी कुरता पहन कर हथकड़ी, बेड़ी, फांसी के लिये तैयार हूं ।"

२८ को फिर कांग्रेस अधिवेशन में गया । श्री विष्णु दिगम्बर बम्बई के संगीत महाविद्यालय के अध्यक्ष ३० शिष्य मंडली सहित पधारे, मंगल गान किया । रेहाना तैय्यबजी का गाना हुआ । महात्मा गांधी का प्रवचन हुआ, सरदार पटेल ने समर्थन किया । मौलाना हसरत मोहानीने कहा कि लाला लाजपत राय जेल में अनशन कर रहे हैं । । पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा कर देनी उचित है ।

२६ तारीख को ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद की अध्यक्षता में, श्री मूलचंद कृष्णदास कापड़िया, श्री नेमी शरण बिजनौर के वकील, श्री जैनेन्द्र, श्री पंडित लालन, श्री मुनि जिनविजय, श्री खापर्डे आदि की उपस्थिति में जैन कान्फ्रेंस का अधिवेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ ।

अहमदाबाद जैन आश्रम के दर्शन किये ।

३१ दिसम्बर को अहमदाबाद से वापस रवाना हुआ ।

---

१. आदत, २. व्यवहार, ३. चित्र में बना हुआ, ४. जंगल का
५. मेरे सहपाठी जो मेरे साथ लखनऊ में वकालत करते थे और जिनके स्वर्गवास को लगभग १० वर्ष हुए ।

(२) देहरादून, १९२२

संयुक्त प्रान्तीय कांग्रेस का अधिवेशन देहरादून में था। साथ में खिलाफ़त कानफ़रेन्स का जलसा भी था। यह अधिवेशन अपूर्व महत्व का था। देवी सरोजिनी नायडू अध्यक्ष पद पर विराजमान थीं। बी अम्मा, बेगम मोहम्मद अली भी पधारीं। महिलाओं के लिये परदे का प्रबन्ध करके पीछे की तरफ़ स्थान दिया गया था। देवी सरोजिनी ने प्रारम्भ में ही कहा—"मैं अपनी बहनों का अपमान सहन नहीं कर सकती। अध्यक्ष गद्दी से दाहिनी तरफ़ का स्थान महिलाओं के लिये छोड़ दिया जाय। जो मनुष्य पवित्र भाव से अपनी माता-बहन-पुत्री तुल्य महिलाओं को नहीं देख सकते, वह आँखें बन्द कर लें या अपने मुँह ढक लें, परन्तु अपने मलिन भावों के कारण महिला मंडल को पीछे बिठाकर मेरा अपमान न करें।"

इस जोशीले कथन पर दाहिनी तरफ़ का स्थान तुरन्त खाली हो गया। महिला समूह परदे से निःसंकोच बाहर निकल कर हर्षितचित्त बैठ गया। स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक थी। कोलाहल रंचमात्र भी न था।

महात्मा भगवानदीन, पंडित सुन्दर लाल, लालचन्द फ़लक, अर्जुन लाल सेठी, श्रीमती सत्यवती, सुभद्रा चौहान भी दिखाई पड़े।

मैं २९, ३०, ३१ अक्टूबर १९२२, तीन दिन तक इस जलसे में शरीक रहा। लाला जयप्रसाद के मकान पर महात्मा भगवानदीन के साथ दरवाज़े के ऊपर वाले कमरे में ठहरा था। १ नवम्बर को लखनऊ वापस आ गया।

(३) गया, १९२२

दिसम्बर १९२२ के अन्तिम सप्ताह में भाई मोती लाल जी के साथ गया कांग्रेस देखने के आशय से दिल्ली से गया। फल्गु नदी के

तट पर स्वराज्यपुरी में भूमिपर बिस्तर जमाने का स्थान मिल गया। श्री बैरिस्टर चित्तरंजन दास सभापति थे, उन्होंने स्वराज्य पार्टी की स्थापना की। पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने सनातन हिन्दु महासभा की स्थापना की।

श्री विजय राघवाचार्य तथा अब्बास तैयबजी के साथ होने से मुझे कांग्रेस अधिवेशन में मँच पर स्थान मिल गया।

हिन्दू महासभा की विषय निर्धारिणी समिति में मैंने लिखित प्रस्ताव उपस्थित किया था कि "सनातन हिन्दू समाज बहुधा स्थानों पर जैनरथ यात्रा का विरोध करती है। यह महासभा इस विरोध प्रवृत्ति को घृणा की दृष्टि से देखती है। और आशा करती है कि सनातन हिन्दू समाज अपने जैन भाइयों की, उनके रथोत्सव निकालने में तथा अन्य धार्मिक उत्सवों में सहकारी होगो।" इस प्रस्ताव को खुले अधिवेशन में उपस्थित करने का मुझे अवसर ही नहीं मिला।

बुद्ध मन्दिर के दर्शन किये। वट-वृक्ष भी देखा जिसके नीचे बुद्धदेव को ज्ञान प्राप्ति हुई थी, जहां चीन, जापान आदि विदेशी बुद्ध उपासक नित्य उपासनार्थ आते हैं।

विष्णुपद, ब्रह्मयोनि, रुद्रयोनि भी देखे। गया के महन्त जी के दर्शन किये। ३ जनवरी को दिल्ली वापस आ गया।

(४) हरिपुरा, १९३८

जनवरी १९३८ में जावरा की जजी से त्याग पत्र देकर पहली फ़रवरी को इन्दौर रवाना हुआ। वहां से बड़ौदा और सूरत गया। सूरत में ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी मिल गये। उनके साथ हरिपुरा

कांग्रेस में गया। Subjects Committee का भी Press-Gallery का पास मिल गया था। ५१ बैल—सजे धजे २५ की जोड़ी, एक बैल आगे सुन्दर रथ को खेंच रहे थे। रथ किसी रजवाड़े का था। हाथी दांत का बारीक नकाशी का काम जगह जगह बना हुआ था। छोटे छोटे सैकडों घूंघुरु लटक रहे थे। रथ एक अनोखी प्रदर्शनीय वस्तु थी। रथ को हाकने के लिये देसाई महोदय जिन्होंने आजन्म अपनी ज़मीदारी, अपना घर बार सब "लगान न दो" सत्याग्रह में त्याग दिया और वापस न आने का संकल्प कर लिया था, विशेष आग्रह से बुलाये गए थे। उस रथ में श्री सुभाषचन्द्र बोस जनता कीजयजयकार गरजन के साथ शनैः शनैः चल रहे थे। सड़क के दोनों तरफ़ जनता उमड़ रही थी। वह दृश्य मेरे हृदय पर चिर स्मरणीय रूप में अङ्कित हो गया। Buses सूरत से हरीपुरा तक, रात के १०-११ बजे तक चलती रहती थी। सूरत से एक नदी पार बस खड़ी होती थी। नदी पर स्वयं सेवक प्रबन्धार्थ उपस्थित रहते थे। Bus में पहले महिलाओं को स्थान मिलता था। जब महिलाओं को स्थान मिल गया तो मैंने कहा कि "old men next" और मुझे तथा ब्र० शीतल को भी स्थान मिल गया। हरीपुरा ग्राम एक विशाल नगर की बस्ती बना दिया गया था। सरदार विट्ठल भाई पटेल की विशाल मूर्ति के सामने जनसमूह दर्शनार्थ उपस्थित रहता था।

प्रदर्शिनी की भी सैर की। सैर से मन नहीं भरता था। शरीर थक जाता था।

पेशाबघर, पाखाने, कचरा डालने के पात्र जगह जगह पर थे। स्वच्छ रहते थे। भोजन के लिये भोजनालय, पकवान, पूरी कचौरी की दूकानें और अन्य वस्तु का बाज़ार लगा था। सब वस्तु उचित दाम पर अच्छी मिल जाती थी। प्रबन्ध प्रशंसनीय था।

एक रोज़ हम दोनों को अधिवेशन में अधिक समय लग गया। Bus Service बंद हो गई थी। रात को एक विमोचित तम्बू मे भूमि पर हम दोनों लेट रहे। नींद तो नहीं आई। सामायिक तथा स्तोत्र पाठ करके रात बिता दी और प्रातः सूर्योदय से पहले पैदल चलकर सूरत कापडियाभवन आए।

खद्दर का मंडप तथा बैठने का सादा मंच, नारियलजटा के तकिये, सादगी की शान तो सबने देखी है। श्रम करने वाले स्त्री-पुरुष कांग्रेस के अधिवेशन को।=) रोज़ की मज़दूरी के नाम से याद करते थे। साधारण मजदूरी ।) प्रति दिन थी। कांग्रेस के अवसर पर ।=) रोज़ पर महीनो तक सैकड़ों मज़दूर सड़क बनाने, भूमि को समतल करने, फूल-पत्ती लगाने, रहने के स्थान खड़े करने में लगे रहे।

एक वह सादगी की शान देखने में आई। और आजकल अंग्रेजों के समान कांग्रेस के कार्यकर्त्ता वायुयानों में उड़ रहे हैं, स्पेशल ट्रेन में चल रहे हैं, मोटरों में हज़ारों मील सैर करते हैं। भाषण देने, parties में भोजन के स्वाद लेने, अभिनन्दन पत्रस्वीकार करने, आत्म प्रशंसा का आनन्द लूटने, ऊँचे ऊँचे पदों पर हज़ारों का वेतन पाने के आनन्द में मग्न हैं। Controls की ओट में अपने और अपने मित्र-बन्धु वर्ग के घर भर लिये हैं। टके टके के आदमी लखपती हो गए हैं। अन्य वीरों के बलिदान से जो अधिकार प्राप्त हुआ, उससे मदान्ध हो रहे हैं। प्रजा दुखी है, आर्त है। अन्न, वस्त्र, औषध, निवासस्थान, शिक्षण सब दुष्प्राप्य हो रहे हैं। जो कष्ट कभी नहीं देखा न सुना, उस कष्ट का अनुभव अमीर-गरीब सब प्रजा कर रही है। और आगे को कुछ सुधार की आशा नहीं है। नैराश्य का घोर अंधकार छाया हुआ है।

बनारसी दास चतुर्वेदी ने ५ जून १९५० की "नई दुनियाँ" में स्पष्ट संक्षिप्त शब्दों में सत्य का प्ररूपण इस भाँति किया है—

"सच्ची स्वाधीनता अभी कोसों दूर है। सर्व साधारण के कष्ट पहले से बढ़ गए हैं। नौकरशाही का शिकंजा और भी अधिक कस गया है। सार्वजनिक जीवन में स्वच्छन्दता तथा आदर्शवादिता की बहुत कमी हो गई है।"

१९३९ के त्रिपुरा अधिवेशन के लिये महात्मा गांधी पट्टाभिसीतारम्मया को सभापति बनाना चाहते थे। परन्तु सदस्यों ने सुभाष बोस को पुनः निर्वाचित किया। इस पर महात्मा गाँधी ने "हरिजन" में लिखा—" I regard the defeat of Pattabhi as my own defeat". (पट्टाभि की हार को मैं अपनी हार समझता हूं) महात्मा-जी का संकेतमात्र पर्याप्त था। बोस निर्वाचित तो हो गए, परन्तु कार्यकारिणी सभा ने उन्हें टिकने नहीं दिया। बीच साल में ही उन्हें सभापति के पद से त्यागपत्र देना पड़ा।

इस घटना से कांग्रेस के प्रति मेरी श्रद्धा को ठेस लगी। जो संस्था लोक-कल्याण के लिये बनाई गई थी, उसका सभापति बहुमत से निर्वाचित न हो—इस बात का द्योतक था कि कांग्रेस कुछ अधिकार-सत्तावादियों की बपौती बनती जा रही है। इन्हीं सत्ता-वादियों के चेले चपाटों को भारत के सात प्रान्तों में शासन करने का अधिकार प्राप्त हो गया था। मन्त्रीपद पाकर वह कैसे मदान्ध और स्वार्थ-लोलुप हो गये, उसका विवरण मैं ऊपर कर चुका हूं।

फलतः कांग्रेस से दूर ही रहने का मैंने निश्चय कर लिया और फिर किसी अधिवेशन में नहीं गया।

दिल्ली-प्रवास

(१) महासभा की धांधली

१७ नवम्बर १६२२ को लखनऊ से दिल्ली पहुँचा। मोहल्ला "चाह रहट" में मकान किराये पर लिया। दिल्ली में "खजूर की मसजिद" मोहल्ले में स्थापित पंचायती मन्दिर सम्बन्धी "पंच कल्याणक प्रतिष्ठा" के अवसर पर महासभा को निमंत्रित करने का प्रस्ताव मैंने ज़ोर से भाषण देकर स्वीकार करा लिया। किन्तु मुख्य नेता, अधिकार प्राप्त पुरुषों का सहयोग नहीं मिला।

पञ्चकल्याणक विधान का मङ्गलमुहूर्त-पूजन करने के वास्ते भूमि भले प्रकार शुद्ध नहीं की गई। १५-२० मिनट में पूजन हवन विधि सब समाप्त हो गई। लाला जग्गीमल जौहरी चौधरी प्रतिष्ठाकारक थे। वह न तो पद्मासन लगा सके, न शुद्ध पाठ उच्चारण कर सके।

दिल्ली वालों ने मुख्य स्थानों पर अपने डेरे लगा कर अपने रहने के वास्ते सुसज्जित सुविधाप्रद स्थान बना लिये। बाहर से आने वालों की सुविधा का प्रबन्ध कुछ नहीं किया। दिल्ली वालों के डेरों में उनके कुटुम्बीजन, मित्रवर्ग आराम करते थे। बाहर से आने वाले अधिकतर मुझ को जानते थे। मुझे पूछते थे, मैंने जान-बूझ कर अपने ठहरने का स्थान नहीं रखा, और न वहाँ रहा। बहुत से लोग तो खंडेलवाल महासभा और जैन महासभा के मंडप में ही ठहर गए। शेष ने अपना प्रबन्ध स्वयं कर लिया।

सुना गया इस पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा में ३०-४० हज़ार की बचत हुई। और वह रुपया किसी दिल्ली निवासी जैन के पास ब्याजू जमा रहा।

महासभा अधिवेशन में तुरन्त सदस्यपत्र भरवा कर सदस्य बना लिये गये। बैरिस्टर चम्पतराय जी के जैन गजेट (हिन्दी) के सम्पादक निर्वाचित होने के प्रस्ताव का समर्थन करने को लाला देवीसहाय फीरोज़पुर वाले खड़े हुए, उनको पकड़ कर एक महाशय ने बिठा दिया। और अनियमित अनधिकार बहुमत से एक पंडितपेशा महाशय को सम्पादक बनाने का प्रस्ताव पास करा लिया। ऐसी खुली धाँधली देख कर कितने ही सदस्य उठ खड़े हुए और दूसरे मंडप में एकत्रित होकर भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् की स्थापना की। प्रथम अध्यक्ष रायबहादुर सेठ माणिक चन्द सेठी झालरा पाटन वाले निर्वाचित हुये। ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी ने सदस्य सूची पर प्रथम हस्ताक्षर किये।

(२) दिल्ली युनिवर्सिटी में अध्यापकी

दिल्ली में विश्वविद्यालय नवीन स्थापित हुआ था। रायसाहब प्यारेलाल वकील विश्वविद्यालय की प्रबन्धक कमेटी के सदस्य थे। उनके प्रस्ताव पर मैं आनरेरी रीडर फ़ौजदारी क़ानून और ज़ाबता (Head of the Department of Criminal Law and Procedure) निर्वाचित हो गया और काम करने लगा। परीक्षा का समय निकट आने पर विद्यार्थी चाहते थे, कि मैं उनको नोट लिखा दूँ, जिनमें उन प्रश्नों के उत्तर भी हों जो परीक्षा में रखे गए हैं। मैंने कहा कि स्नातक (Graduate) होकर उनको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। वह कहने लगे कि अन्य प्रोफेसरों ने तो ऐसे नोट लिखा दिये हैं। डाक्टर सर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय के

एक रात को नए नौकरों की मदद से चोर घर में घुस आए। हम लोग सब ऊपर हॉल में सो रहे थे। हम लोगों के सोते-सोते स्वर्गीय चन्द्रवती के क़ीमती वस्त्र के दो बक्स उठा ले गए। प्रातः पुलिस आई। ठाकुर* पुराना विश्वसनीय नौकर था। उसे मैंने बचा दिया। गाज़ी-नीमर नए नौकरों को पुलिस ले गई। दिन भर उन्हें कठिन दण्ड दिया। परन्तु कुछ भी बरामद नहीं हुआ।

१७ मार्च १९३४ को मेरे पुत्र अभिनन्दन प्रसाद के पुत्र-जन्म हुआ। यह मेरा प्रथम पौत्र था। उसका नामकरण संस्कार हवन-पूजन-विधि अनुसार स्थानीय जैनसमाज की उपस्थिति में किया गया। नवेन्दु नाम रखा गया। सम्पूर्ण जैन समाज तथा हिन्दु-मुसलमान वकील-डाक्टर मित्रवर्ग को प्रीति-भोज में निमन्त्रित किया गया। रात तक भोज चलता रहा।

२७ अप्रैल को रांची† में तार मिला कि "२३ को नवेन्दु का अन्तिम संस्कार हो गया"। कई दिन तक मैं शोकार्त रहा। रह-रह कर नवेन्दु की याद आ जाती थी।

नवेन्दु के देहावसान के पश्चात् मुझे वकॉलत से घृणा हो गई। मैंने उसे छोड़ने का दृढ़ निश्चय कर लिया। परन्तु मेरा कुटुम्ब पहले

---

* ठाकुर विजय बहादुर सिंह १८ वर्ष की अवस्था में मेरे पास १९१२ में आया था। असीम स्वामीभक्ति से मेरी ३६ वर्ष तक उसने सेवा की। खिचरन के पुरवा, डाकखाना गौरीगंज, ज़िला सुलतापुर में उसकी विधवा को सान्त्वना देने गया और तिरही के दिन ५०) भेंट किए। ठाकुर के इस लोक से चले जाने से मैं निरन्तर १९४८ से अपने जीवन में एक अभाव अनुभव करता हूँ।

† उन दिनों मैं रांची में Injunction suit में विकालत कर रहा था। देखिये पृष्ठ १६१

से अब बढ़ गया था। गणेशगंज के पुराने मकान* को गिरा कर फिर से बनवाया और जून १६२५ में गृह प्रवेश किया।

डबकॉट छोड़ने पर भी बराबर कष्ट देता रहा। किराएदार आते और चले जाते। किराए के लिए बराबर नालिश करनी पड़ती। हताश होकर १६४१ में मैंने उसे १६०००) में बेच दिया और एक भयावह स्वप्न समाप्त हुआ।

---

*देखिये पृष्ठ ६१

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी

दिगम्बर जैन समाज के वास्तविक दानवीर श्री सेठ माणिकचन्द हीराचन्द, जे० पी०, (Justice of the Peace) "शान्ति रक्षक" पदवी से विभूषित, जैन जाति-उद्धारक, जैन धर्म सेवक, जैन धर्म प्रभावना संचारक, धर्मवीर ने श्वेताम्बर जैन समाज के अत्याचार, तथा जैन तीर्थ क्षेत्रों पर अनधिकृत आक्रमण के कारण शीर्षोक्त कमेटी की स्थापना करना आवश्यक समझा।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी का कार्यालय नियमानुसार बम्बई की हीराबाग धर्मशाला में खोला गया। सेठ जी ने महामंत्री पद का काम अपने ऊपर लिया।

तीर्थक्षेत्र कमेटी की स्थापना के समय से सेठ माणिक चन्द जी नित्य प्रति हीराबाग धर्मशाला के कार्यालय में ३-४-५ घंटे कार्य की आवश्यकतानुसार स्वतः पधारते थे, सब पत्र व्यवहार करते और काम काज देखते थे।

(१) पूजा केस

७ मार्च १६१२ को बाबू महाराज बहादुरसिंह ने श्वेताम्बर जैन संघ की ओर से, सेठ हुकुमचन्द तथा १८ अन्य भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के प्रमुख सदस्यों के विरुद्ध, आर्डर ८ रूल १ के अनुसार, सबजज हज़ारीबाग की कचहरी में नालिश पेश की।

मुद्दई का दावा था कि श्री सम्मेद शिखर जी निर्वाणक्षेत्र-स्थित टोंक, मन्दिर, धर्मशाला सब श्वेताम्बर संघ द्वारा निर्मित हुई हैं।

दिगम्बराम्नायी जैनियों को श्वेताम्बर आम्नाय के विरुद्ध और श्वेताम्बर संघ के अनुमति विना प्रक्षाल-पूजा आदि करने का अधिकार नहीं है; न वह धर्मशाला में ठहर सकते हैं।"

यह मुकदमा साढ़े चार बरस से ऊपर चला। उभय पक्ष का कई लाख रुपया व्यर्थ व्यय हुआ। अन्तिम निर्णय सब-जजी से ३१ अक्टूबर १९१६ को हुआ।

इस निर्णय के अनुसार श्री ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ, महावीर स्वामी तीर्थंकरों का निर्वाण श्री कैलाश (हिमालय) चंपापुर (भागलपुर) गिरनार (गुजरात), पावापुर (पटना) से हुआ है। इन चार तीर्थङ्करों की टोंको के अतिरिक्त अन्य सब टोंकों में प्रतिवादी दिगम्बरी संघ का प्रक्षाल-पूजा का अधिकार निश्चित पाया गया। दिगम्बरी समाज के यात्री प्रातः जाते हैं, और सूर्यास्त से पहले वापस लौट आते हैं। वह पर्वत राज पर अन्न-जल नहीं लेते, न वहाँ ठहरते हैं, धर्मशाला से उनको कुछ मतलब ही नहीं होता है।

१९१७ का कांग्रेस अधिवेशन देखने के लिए मैं कलकत्ता गया। एक दिन महात्मा भगवान दीन जी के साथ मै ब्रह्ममुहूर्त में महात्मा गांधी के निवास स्थान पर गया। महात्मा जी से निवेदन किया कि वह दिगम्बर-श्वेताम्बर समाज के पारस्परिक विरोध का, जो कई बरस से चल रहा है, जिसमें कई लाख रुपया उभय समाज का नष्ट हो चुका है और पारस्परिक मनोमालिन्य बढ़ता जा रहा है, अन्त करा दें। महात्मा गांधी ने हमारी प्रार्थना ध्यान से सुनी, और मामले का निर्णय करना स्वीकार किया और कहा कि चाहे जितना समय लगे, मैं इस झगड़े का निबटारा कर दूँगा किन्तु उभय पक्ष इकरार नामा रजिस्टरी कराके मुझे दे दें कि मेरा निर्णय उभयपक्ष को निःसंकोच स्वीकार और माननीय होगा।

महात्मा भगवान दीन जी और मैं कितने ही बार रायबहादुर बद्री दास जी की सेवा में उनके निवासस्थान पर गए और उनसे प्रार्थना

की कि वह श्वेताम्बर समाज की ओर से ऐसे इकरार नामे की रजिस्टरी करा दें। रायबहादुर बद्रीदास जी को आश्वासन दिया कि दिगम्बरीय समाज की ओर से रजिस्टरी करा देने की ज़िम्मेदारी हम अपने ऊपर लेते हैं। लेकिन रायबहादुर जीने बात को टाल दी। यही कहते रहे कि समाज उनके कहने में नहीं है। कुछ न होना था, कुछ न हुआ। सब प्रयत्न व्यर्थ हुआ।

हज़ारीबाग सबजज के निर्णय की अपील हाईकोर्ट पटना में उभयपक्ष ने किया। दोनों अपील १४ अप्रैल १६२१ को खारिज हुए।

उभयपक्ष ने फिर आगे दूसरा अपील लंदन में प्रीवी काउन्सिल में किया। वह दोनों अपील भी १६ दिसम्बर १६२५ को खारिज हुए।

परिणामतः जैन समाज के प्रचुर द्रव्य का अपव्यय और पारस्परिक मनोमालिन्य की वृद्धि हुई। वकील और पैरोकार-मुखतार अमीर हो गए।

(२) इञ्जङ्क्शन केस

"पूजा केस" के निर्णय के पश्चात्, जिसमें श्वेताम्बर समाज को यथेष्ट सफलता नहीं प्राप्त हुई, सम्मेदाचल तीर्थराज के श्वेताम्बराम्नायी प्रबन्धकों ने यह प्रयत्न किया कि श्री कुँथनाथ की टौंक के पास जहाँ से मधुवन के रास्ते से तीर्थ राज की यात्रा प्रारम्भ होती है, एक बड़ा फाटक खड़ा करें, जिसमें यात्रियों को यात्रा के लिये श्वेताम्बर समाज की दया-दृष्टि पर निर्भर रहना पड़े, उस फाटक के पास तलवार बँदूक आदि हथियार बन्द सिपाही भी रक्खे जावें। तीर्थराज पर बिजली गिरने से पूज्य चरणालय जिनको "टौंक" कहा जाता है टूट जाती हैं और नूतन चरण स्थापना की आवश्यकता होती है। ऐसे नवीन चरण श्वेताम्बर समाज के प्रबन्ध से इस रूप में स्थापित किये गये थे जिस रूप से वह दिगम्बर आम्नायी उपासकों द्वारा पूज्य नहीं थे।

दिगम्बर आम्नाय के अनुसार "चरण चिन्ह" अर्थात् चरणों के तलवों की छाप पूज्य है, किन्तु चरण युगल की आकृति अर्थात् नाखून-दार अँगूठा अँगुलियों की और पंजे की आकृति अपूज्य है। अतः फाटक और सिपाहियों के निवासस्थान बनाने को रोकने और अपूज्य चरणों को हटाकर पूजा योग्य चरण-चिन्ह स्थापन किये जाने के वास्ते दिगम्बर समाज की ओर से हजारीबाग के सबजज की कचहरी में ४ अक्टूबर १९२० को नालिश दाखिल की गई।

इस मुकदमे में (१) सर सेठ हुकुम चन्द, इन्दौर (२) श्री जम्बू प्रसाद, सहारनपूर (३) श्री देवी सहाय, फ़ीरोज़पुर (४) सेठ हीरा चन्द, शोलापुर (५) सेठ सुखानन्द, बम्बई (६) सेठ दयाचन्द, कलकत्ता (७) सेठ मानिक चन्द, झालरापाटन (८) सेठ टेकचन्द, अजमेर (९) सेठ हरसुखदास, हज़ारीबाग ९ मुद्दई थे।

(१) बाबू महाराज बहादुर सिंह, (२) नगरसेठ कस्तूरभाई, अहमदाबाद, (३) बाबू रायकुमारसिंह, कलकत्ता, (४) सेठ मोतीचन्द, कलकत्ता श्वेताम्बरी जैनसमाज के प्रतिनिधिरूप मुद्दालेह बनाये गए थे।

नालिश आर्डर ८ रूल १ के अनुसार की गई थी। दिसम्बर १९२३ के प्रारम्भ में उस मुकदमे में गवाह पेश होने का अवसर आया। सेठ मानिक चन्द जी का स्वर्गवास हो चुका था। कमेटी की रोकड़ में खर्च के वास्ते पर्याप्त धन नहीं था। श्री बैरिस्टर चम्पत राय जी हरदोई ज़िले में ख्यातिप्राप्त फौजदारी के विशेषज्ञ वकील थे। उन्होंने तीर्थराज की सेवा करने और बिना किसी फीस के मुकदमे में काम करने के अभि-प्राय से बैरिस्टरी का व्यवसाय त्याग दिया, जिससे उनको कई हज़ार रुपये की मासिक आमदनी थी। श्री चम्पतराय के लिखने पर मैंने भी तीर्थराज की सेवा बिना किसी फ़ीस करना स्वीकार कर लिया।

हम दोनों २ दिसम्बर १६२३ को लखनऊ से चलकर ३ दिसम्बर को हजारी बाग पहुँच गये। ४ दिसम्बर १६२३ से १६ जनवरी १६२४ तक हमारी तरफ़ के गवाह पेश होते रहे, जिनमें मुख्यतया लाला देवीसहाय जी फीरोज़पूर, सेठ हरनरायण जी भागलपुर, रायसाहेब जुगमन्धर दास नजीबाबाद, सर सेठ हुकुमचन्द इन्दौर, राय बहादुर नाँदमल अजमेर, रायसाहेब फूलचन्दराय लखनऊ, पंडित पन्नालाल न्याय दिवाकर, पंडित जयदेव जी, पंडित गजाधर लाल जी थे।

रायसाहेब फूलचन्द राय का बयान चालू था कि यकायक १७ जनवरी को सबजज साहेब को हज़ारीबाग से राँची की बदली का हुक्म आ गया। मुकदमा चलना बन्द होगया। फिर मुकदमा भी हजारीबाग से राँची को भेज दिया गया। और राँची में २५ मार्च १६२४ से राय साहेब फूल चन्द राय की गवाही चलने लगी। २४ अप्रैल १६२४ को बाबु महाराजबहादुर सिंह प्रतिवादी न० १ के गवाहों के बयान खतम हुये।

उभयपक्ष की बहस १८ दिन तक चली और २६ मई १६२४ को हमारा दावा खर्चे समेत डिगरी हुआ। निर्णायक श्री फणीन्द्र लाल सेन संस्कृतज्ञ सबजज महोदय थे। उस निर्णय का अपील पटना हाई कोर्ट में श्री Ross और श्री Wort दो अँग्रेज़ जजों के सामने पेश हुआ। श्वेताम्बरी संघ की तरफ़ से श्री भूलाभाई देसाई ने बहस की थी। चरण-चिन्ह के विषय में हमारी जीत हुई और अन्य विषयों पर श्वेताम्बरी समाज की अपील में जीत हुई।

श्री चम्पत राय जी विलायत चले गये।

(३) श्री राजगृह केस

श्री चम्पत राय जी के विलायत चले जाने के बाद मैं श्री राजगृह या पंचपहाड़ी केस में तथा पावापुरी केस में काम करता रहा।

कलकत्ते में क़रीब एक मास तक दिन प्रति-दिन श्री पूर्णचन्द्र नाहर की गवाही उनके निवास स्थान न० ४८ इन्डियन मिरर स्ट्रीट पर होती रही, जो पुस्तकाकार छप गई है।

राजगृह केस में पारस्पारिक समझौता होकर सुलह नामा कचहरी में दाखिल हो गया। दोनों आम्नायों ने आपस में टौंके बाट लीं।

(४) पावापुरी केस

पावापुरी में तालाब के बीच में एक रमणीक मन्दिर है। उसमें भगवान के चरण-चिन्ह हैं। चरण-चिन्हों के आगे श्वेताम्बरीयों ने महावीर स्वामी की प्रतिमा स्थापित कर रखी है। दिगम्बरी पूजा करते समय प्रतिमा को हटा देते थे। इस पर केस चलता रहा। पटना के सबजज की कचहरी से हमारी जीत हुई। अपील में हाईकोर्ट से भी हम जीते। किन्तु लंदन प्रीवी काउन्सिल अपील की पेशी की खबर श्री चम्पत राय जी को, जो उस समय लंदन में ही थे, नहीं मिली। हमारे बैरिस्टर की नासमझी के कारण हमारी हार होगई।

मैंने ७ वर्ष तक १९२३ से १९३० तक तीर्थक्षेत्र कमेटी का काम किया। ४६०००) मेरे नाम से तीर्थक्षेत्र कमेटी की बही में दानखाते जमा हैं।

काकोरी षडयंत्र केस

एक क्रान्तकारी दल ने सन् १९२६ में कलकत्ता मेल को काकोरी स्टेशन से आगे चेन खेंच कर रोक लिया। जिस में सरकारी खज़ाना जा रहा था। तिजोरी को घन चलाकर तोड़ लिया। और हज़ारों का नोट-रुपया लेकर भाग गए।

इस केस में मैजिस्ट्रेट श्री सैयद ऐनुद्दीन जी, तथा सेशन्स जज हैमिल्टन महोदय की कचहरी में मैंने राम प्रसाद मुख्य अभियुक्त की ओर से निःशुल्क विकालत की।

मैजिस्ट्रेट की कचहरी में एक दो दिन श्री पंडित गोविन्द वल्लभ पन्त* तथा श्री मोहनलाल सक्सेना पधारे थे। एक बंगाली बैरिस्टर अन्य अभियुक्तों के वकील थे। श्री चन्द्रभान गुप्त† मुकदमे के कागज़ात की संभाल रखते थे। श्री हरकरण नाथ मिश्र एक अभियुक्त के वकील सरकार की तरफ़ से नियत किये गए थे, जिसने अभियोग में शरीक होना स्वीकार किया था।

सेशन में पंडित जगतनारायण जी सरकारी वकील नियत किये गए थे।

मैं रामप्रसाद तथा अन्य अभियुक्तों से वार्तालाप करने जेल हवालात में भी गया था। और उनको उचित परामर्श दिया था।

जब तक तिजोरी तोड़ नहीं ली, क्रान्तकारी रेल के बराबर बराबर पिस्तौल लेकर खड़े हो गए और मुसाफ़िरों को चेतावनी देते रहे कि

---

* वर्तमान उत्तर-प्रदेश के प्रधान-मन्त्रि।

† वर्तमान उत्तर-प्रदेश के खाद्य-मन्त्रि।

कोई अपने दर्जे से बाहर न निकले। वह किसी को हानि नहीं पहुँचाना चाहते। केवल सरकारी खज़ाना लूटना चाहते हैं। एक अब्दुल्ला मुसाफ़िर घबराकर अपनी औरतों को देखने के लिए अपने दर्जे से निकलकर ज़नाने-दर्जे की ओर चढ़ा। अकस्मात वह गोली का निशाना हो गया।

मैंने राम प्रसाद को अनुमति दी थी कि वह काकोरी डकैती करना और क्रान्तिकारी-दल का सदस्य होना स्वीकार करले। मैं उसे प्राणदंड से बचा लूँगा, क्योंकि उसने किसी भी डकैती में किसी भी व्यक्ति की जानकर हत्या नहीं की थी। किन्तु रामप्रसाद ने मेरी सलाह नहीं मानी। प्रत्येक लगाए हुए अभियोग से इन्कार किया। परिणामतः मैंने उसकी विकालत छोड़ दी और रामप्रसाद को फांसी हो गई।

———

अजिताश्रम चैत्यालय

२३ जुलाई १६२६ को ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी लखनऊ पधारे। लखनऊ की जैन जनता स्वागतार्थ रेलवे स्टेशन पर गई। अजिताश्रम के आगे घोड़ा-गाड़ी रुकवा के ब्रह्मचारी जी उतरे। अजिताश्रम के सब कमरों को देखकर नीचे के बैठकखाने को निवासार्थ पसंद किया। शहर के जैनियों के आग्रह करने पर उनसे कह दिया कि मैं 'गोमट्टसार' के अँग्रेज़ी अनुवाद और भाष्य को छपाने के लिये लखनऊ आया हूं। यह मेरा प्रमुख उद्देश्य है। यह काम अजिताश्रम में रह कर ही ठीक हो सकता है। छापेखाने के प्रूफ़ संशोधन में यहाँ अजितप्रसाद जी से जो सहयोग मिलेगा वैसा अन्य स्थान में सुलभ नहीं है।

ब्रह्मचारी जी को नित्य देवदर्शन का नियम था। अष्टमी चतुर्दशी को ब्रह्मचारी जी का प्रोषधोपवास होता था। उस दिन वह सवारी का इस्तेमाल नहीं करते थे। उनके पधारने के दूसरे दिन २४ जुलाई को चतुर्दशी थी। ब्रह्मचारी जी पैदल दर्शन करने यहियागंज गये। और पैदल ही वापस आये। गरमी के मौसम में उनका इस प्रकार परिश्रम करना मुझे बहुत खटका। मैंने भी उस दिन भोजन नहीं किया। २३ जुलाई की रात कों चौक के मन्दिर गया और मुखिया भाइयों से कहा कि ब्रह्मचारी जी के लिये देवदर्शन प्रतिज्ञा पूर्णार्थ एक मूर्ति मन्दिर से दे दी जाये। मगर यह नहीं हुआ। २५ जुलाई को इतवार था, मैं और लाला जुगमन्दर दास, जो उस जमाने में मेरे साथ मुन्शी का काम करते थे दोनों बाराबङ्की गये; और बाराबङ्की से एक प्रतिष्ठित मूर्ति ले आये। उसी दिन अजिताश्रम में जिनबिम्ब स्थापित करके पूजन, भजन, आरती हुई। ब्रह्मचारी जी ने शास्त्रोपदेश दिया। और इस

प्रकार पूजन आरती शास्त्रसभा का नित्यक्रम अजिताश्रम में जारी हो गया।

२७ जुलाई को अजिताश्रम चैत्यालय की नींव खुदनी प्रारम्भ हो गई। पहिली अगस्त को नींव की पहिली ईंट ब्रह्मचारी जी ने जमाई; फिर मैंने, मेरे पुत्रों, पुत्रियों, पुत्रवधुओं और प्रपौत्रियों ने नींव में चूने से ईंट जमाई। उस समय वर्षा ज़ोर से हो रही थी। और हम लोग स्तोत्रपाठ आदि पढ़ते हुए काम कर रहे थे। वह पवित्र समय मेरे और शेष अजिताश्रम वासियों के जीवन में चिरस्मरणीय रहेगा।

१६ नवम्बर से १८ नवम्बर तक मंत्र के आठ हज़ार जप होकर वेदी प्रतिष्ठा हुई। चौक की पंचायत ने ब्रह्मचारी जी से आग्रह किया कि अजिताश्रम चैत्यालय के लिये मूर्ति पसंद करलें और बाराबङ्की की मूर्ति वापस करादें। ब्रह्मचारी जी ने दो मूर्तियाँ पसन्द की और उन दो प्रतिष्ठित मूर्तियों को लाकर विराजमान किया गया। बाराबंकी की मूर्ति वापस कर दी। एक मूर्ति श्वेतपाषाण की पद्मासन, सुन्दर आकृति क़रीब ७५० वर्ष की प्रतिष्ठित है। घुटनो के बीच के स्थान पर एक लेख है; वह जहाँ तक पढ़ा गया यहाँ लिखा जाता है:—

संवत् १२२५ जेठ सु
दि १२ देवसहाय तत सुत विवा
सल पाह X X X पुत्र X X प्रतिष्ठापिता

और आसन के सामने बेल बूटे में छिपा हुआ अर्द्धचन्द्राकार चिन्ह है, जिस से यह मूर्ति श्री चन्द्रप्रभु भगवान की प्रतीत होती है।

दूसरी मूर्ति अत्यन्त प्राचीन है। यह पीतल वा अष्टधातु की है। आसन के पीछे चार छेद हैं। दो छेदों में एक छत्र मंडल खड़ा हो जाता है, जिस पर सर्प के चिन्ह हैं। यह प्रतिमा पार्श्वप्रभू के नाम से प्रतिष्ठित हुई होगी। दूसरे दो छेदों में भी एक ऐसा ही मंडलाकार बड़ा छत्र लगता होगा, ऐसा अनुमान है। किन्तु वह मिला नहीं।

आसन के नीचे एक छेद बीच में है, इसमें भी फणदार नाग का चिन्ह लगा होगा ऐसा मालूम पड़ता है। इस पर कोई लेख नहीं है। फूल पत्तियों के चिन्ह, अभिषेक पीछे, कपड़े से सुखाये जाने की रगड़ से घिस गये हैं। हाथ और शरीर की लम्बाई अच्छी है, यह मूर्ति अर्द्ध-पद्मासन वा सुखासन है।

ऐसी अर्द्धपद्मासन मूर्तियाँ उत्तरभारत में देखने में नहीं आती हैं; किन्तु हैदराबाद (दक्षिण) के केसरगंज मंदिर में बीसों प्राचीन मूर्तियाँ अर्द्धपद्मासन विराजमान हैं। जब भद्रबाहुस्वामी के समय उत्तर भारत में १२ वर्ष का दुष्काल पड़ा था तो वह अधिक मुनि संघ को लेकर दक्षिण चले गये थे। जो यहाँ रह गये उनको काल दोष से दिगम्बर मुद्रा छोड़कर वस्त्र धारण करने पड़े। इस से सिद्ध होता है कि दक्षिण में शुद्ध दिगम्बराम्नाय कायम रही, और अर्द्धपद्मासन दिगम्बर मूर्ति शुद्धाम्नाय की है।

यह दोनों मूर्तियाँ चौक के मन्दिर से १२ जनवरी १६२७ को ब्रह्मचारी जी के साथ जाकर बहुत से लोग अजिताश्रम लाये और मंत्र का जप करके चैत्यालय में विराजमान करके मज्जन, अभिषेक, पूजन किया।

विशेष जप, पूजा, हवन आदि १३, १४, १५ जनवरी तक जारी रहा है। १५ जनवरी को वृहत् उत्सव हुआ। जल-यात्रा के पश्चात् लखनऊ के सब जैनियों ने मिलकर अभिषेक पूजन किया; और फिर बिरादरी के नर नारियों का जीमन हुआ। "सत्यार्थ यज्ञ" पुस्तक बाँटी गई।

सेन्ट्रल जैन पब्लिशिङ्ग हाउस

कुमार देवेन्द्र प्रसाद के बालपन में ही उनके पिता का देहान्त हो गया था। फलतः उनके मामा ने, जो आरा में ज़मीदार थे, उन्हें शिक्षा दी। कुमार देवेन्द्र से मेरी भेंट Central Hindu College, Benares में हुई जब वह F. A. में पढ़ रहे थे। वहाँ वह F. A. की परीक्षा में असफल रहे और अगले साल प्रयाग विश्वविद्यालय में आकर भरती हुए। प्रयाग में इनका परिचय इन्डियन प्रेस के संचालक और संस्थापक श्री चिन्तामणि घोष से हो गया। श्री घोष के सहयोग से कुमार देवेन्द्र ने 'द्रव्य संग्रह', 'तत्त्वार्थसूत्र', और 'पंचास्तिकाय' तीन जैन अध्यात्मिक ग्रन्थों को सर्वोत्तम रीति से प्राकृत गाथा, संस्कृत छाया, पदच्छेद, शब्दार्थ, अंग्रेज़ी अनुवाद तथा वृहद्भाष्य सहित प्रकाशित कराया।

सन् १९२१ में "जैन महिलाओं का चक्रवर्त्तित्व" प्रकाशनार्थ कलकत्ते गए। वहाँ उन पर चेचक का महाप्रकोप हुआ और घर से दूर बाबू छोटेलाल जी जैन, M.R.A.S. के आतिथ्य में केवल ३१ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हो गया।*

स्वर्गीय कुमार देवेन्द्र प्रसाद जी ने १९१५ में अध्यात्मिक ग्रंथों के प्रकाशनार्थ आरा में "सेन्ट्रल जैन पब्लिशिङ्ग हाउस" नामक संस्था की स्थापना की। उसी ख्याति-प्राप्त संस्था का स्थानपरिवर्तन, ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी के परामर्श और इन्दौर हाईकोर्ट के जज जुगमन्धरलाल जैनी की आर्थिक सहायता से, अजिताश्रम लखनऊ में कर दिया गया।

---

* विवरण के लिए देखिए मेरा लिखा हुआ "देवेन्द्र चरित"

सन् १९२६ में ब्रह्मचारी जी ने चतुर्मास (बरसात के चार महीने) अजिताश्रम् में बिता करके* जैनवाङ्मय का अंग्रेज़ी भाषा में प्रकाशन का निश्चय किया। बैठकखाने में दो तख्त बिछे थे। छत से बिजली का पंखा लगा था। एक तख्त पर ब्रह्मचारी जी बैठते, काम करते और लेटते थे, दूसरे तख्त पर मैं। उन दिनों में "काकोरी साज़िश" वाले डकैती और क़तल के मुकदमें में प्रमुख मुलज़िम रामप्रसाद की तरफ़ से बिना फ़ीस काम कर रहा था।† मेरे कचहरी के काम का ध्यान रखते हुए, ब्रह्मचारी जी ने यह निश्चित किया कि मैं और वह मिलकर 'गोमट्टसार' का काम रात्रि को तीन बजे से छः बजे तक नित्य, दिन प्रतिदिन करते रहें। इस निश्चय पर बराबर अमल होता रहा। ब्रह्मचारी जी तीन बजे मुझे जगा देते थे, और हम दोनों छः बजे तक निर्विघ्न काम करते थे। इसका परिणाम मेरे लिये इतना सुखप्रद हुआ कि मुझे ब्रह्ममुहूर्त में जाग उठने का अभ्यास हो गया।

'आत्मानुशासन', 'समयसार', 'नियमसार', 'गोमट्टसार' जीवकाँड भाग १, अंग्रेजी में श्रीयुत जे० एल० जैनी द्वारा अनुवादित, भाष्य, उपोद्घात और प्राक्कथन सहित, नवलकिशोर मुद्रणालय में अत्यन्त परिश्रम से शुद्ध करके छपवाये और प्रकाशित कराये।

अगस्त १९२७ में श्री जे० एल० जैनी का ४६ वर्ष की अवस्था में आकस्मिक शरीर छूट गया। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति १४ अगस्त १९२६ को वसियतनामा रजिस्ट्री कराके जैनधर्म प्रचारार्थ अर्पण कर दी थी।

ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद, सहारनपुर के वकील विमल प्रसाद, तथा झालरापाटन के सेठ लालचन्द विनोदीराम सेठी को ट्रस्टी नियत किया और यह लिख दिया कि तीन ट्रस्टीयों के रिक्त-स्थान की पूर्ति इन्दौर

---

* देखिये पृष्ठ १६६ † देखिये पृष्ठ १६४

हाईकोर्ट के आदेशानुसार की जाय। ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद तथा श्री विमल प्रसाद जी का शरीर शान्त हो चुका है। सेठ लालचन्द सेठी अपने निजी कार्यों में व्यस्त रहते हैं। ट्रस्ट का प्रबन्ध श्री जौहरीलाल जी मीतल, ऐडवोकेट कर रहे हैं। ट्रस्ट की सम्पत्ति अनुमानतः ६०,०००) होगी।

श्री जे० एल० जैनी के शरीरान्त के बाद मैंने "पुरुषार्थसिद्धयुपाय", ब्रह्मचारी जी और मैंने मिलकर 'कर्मकांड' भाग २, और श्री शरतचंद्र घोषाल, मैजिस्ट्रेट कूच-बिहार ने "परीक्षामुखम्" का अंग्रेजी में वृहद् भाष्य और उपोद्घात सहित अनुवाद किया। श्री घासी राम जैन, प्रोफ़ेसर लश्कर कॉलिज, ग्वालियर ने 'तत्त्वार्थ-सूत्र' के पञ्चम अध्याय के आधार पर "Jain Cosmology" शीर्षक मौलिक ग्रन्थ लिखा। इस प्रकार The Sacred Books of Jainas Series (जैन धर्म की पवित्र पुस्तकों की ग्रन्थावली) में १२ पुस्तकें अंग्रेजी में छप चुकी हैं, जिनमें से तीन कुमार देवेन्द्र प्रसाद ने आरा से प्रकाशित कीं। "भावपाहुड" और "आतमिमांसा" इस समय मेरे पास मुद्रणार्थ तैयार रखे हैं। अब अजिताश्रम में लगभग १००००) की रक़म के ग्रन्थ मौजूद हैं।

———

बीकानेर हाईकोर्ट में

फ़रवरी १६२६ में पावापुरी केस सम्बन्धित गवाहों का बयान दिल्ली में कमीशन पर हो रहा था।* श्री वैद्यनाथ दास चीफ़ जस्टिस बीकानेर का पत्र पाकर मैं Sir Manubhai Mehta, Prime Minister से मिलने गया। मेरे प्रमाणपत्र देखकर उन्होंने कहा "You will hear from me" "तुमको मैं लिखूंगा।" मार्च में मुझे तार मिला "Ajit Prasada appointed Judge on 600/-" "अजित प्रसाद ६००) पर जज नियुक्त किये गए।" १५ मार्च १६२६ को हाईकोर्ट जजी का काम मैंने संभाल लिया। वहां हम तीन जज थे। श्री वैद्यनाथ दास चीफ़ जस्टिस १२००), राय बहादुर लक्ष्मी नारायण जी ६००) और मैं ६००) पाते थे।

बीकानेर राज्य में सैकड़ों मील बालू-रेत के मैदान पड़े हैं। गरमी सरदी वहाँ तीव्रतम होती है। वर्षा बहुत कम; कुएँ बहुत गहरे। पानी का कष्ट रहता है। मीलों से पानी ऊँटों पर भारी मशकों में आता है। सब जैनी भी मश्क का पानी पीते हैं। प्याज़ खाते हैं। एक विशाल ऊंचा दिगम्बर जैन मन्दिर कई मील दूर है। श्वेताम्बरों का मन्दिर अच्छा है। स्थानकवासी जैनियों तथा साधुओं की अधिकता है। तेरापन्थी श्वेताम्बर साधु भी अधिक संख्या में हैं। श्री मुनि जवाहर लाल जी के व्याख्यान में मैं कई दफ़ा गया हूं। वह अच्छे प्रभावशाली व्याख्याता थे। व्याख्यान के अन्त में भक्ति आवेश में उच्चस्वर से अध्यात्मिक भजन गाते थे।

महाराजा सर गंगासिंह अंग्रेज़ी का उच्चारण ऐसा करते थे कि यदि परदे के पीछे खड़े हों तो यह प्रतीत हो कि कोई अंग्रेज ही बोल रहा है।

---

* देखिये पृष्ठ १६३

अंग्रेज़ी लिखते भी अच्छी थे। परिश्रमी भी थे। खाना-पीना, पोशाक रहन-सहन सब अंग्रेज़ी ढंग का था। गनगौर के मेले में महाराजा, दीवान साहेब, जज, अन्य अधिकारी वर्ग सब पैदल चलते थे। इसी प्रकार विजय दशमी के दिन महाराजा जी स्वयं रावण पर तीर छोड़ते थे, जो तीर को उठा लाता था ५) पारितोषिक पाता था। महाराजा जी अपने सामने बकरे की बलि चढ़ाते थे। मैंने देखा कि एक सुन्दर काले बकरे के गले में रस्सी बांधकर दो आदमी पकड़े रहे। एक आदमी ने तलवार से उसकी गर्दन अलग कर दी। महाराजा जी ने उस समय अपना मुंह फेर लिया था। होली, दिवाली, महाराजा जी के जन्म दिन आदि पर दरबार होता था। महाराजा जी सिंहासनारूढ़ होते थे। सब अधिकारी, जो मुत्सद्दी कहलाते थे, उपस्थित होकर अपने-अपने स्थान पर बैठते थे। फिर एक व्यक्ति पुकारता जाता था। और अपने स्थान से उठकर एक एक अधिकारी दोनों हाथ में भेंट लेकर तीन बार झुक कर प्रणाम करता हुआ महाराजा को भेंट अर्पण करता था। महाराजा जी भेंट लेकर एक आदमी को देते जाते थे। दरबार में लाल या पीली पगड़ी, चोग़ा, फेंटा कमर बंद, चूड़ीदार पाजामा पहनना आवश्यक था। अंग्रेज़ों को यह नियम लागू न था। वह दरबार की उपस्थिति से भी मुक्त थे। वर्ष में दो-तीन बार सहभोज होता था। उसमें अंग्रेज़ बुलाए जाते थे, और जो हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी खाना खाते थे; वह भी निमन्त्रित होते थे। हाईकोर्ट के हम तीनों जज शाकाहारी थे। परन्तु भोजन (banquet) के समय उपस्थिति अनिवार्य थी। हम तीनों ६ बजे रात को राजमहल में पहुँच जाते थे। एक कमरे में बैठे ताश खेलते या वार्तालाप करते रहते थे। क़रीब आधी रात को भोज-समाप्ति पर जज बुलाए जाते थे। महाराजा जी हाथ मिलाते, पूछते थे कि जज साहेब अच्छे हैं। और "मिज़ाज़ पुरसी" करके फिर अंग्रेज़ों और मेमों के साथ

बातचीत में लग जाते थे। जब महाराजा जी महल में जाते थे, तब हम सबको छुट्टी मिलती थी।

राजकुमारी जी के विवाह के दिन भी तीनों जज ६ बजे रात से जाकर कुरसियों पर बैठे रहे। महाराजा जी अंग्रेज़ों और मेमों के साथ खाते-पीते बातें करते रहे। हम लोग आपस में बातचीत करते-करते रात भर जहाँ के तहां बैठे रहे। प्रातः सूर्योदय के समय राजकुमारी ने डोले में प्रस्थान किया। कोटा के युवराज से उनका विवाह हुआ था। मोल लिये हुए १०-१२ दास-दासियां डोले के साथ थे।

राजकुमारी के विवाह में २०-२५ लाख रुपया खर्च हुआ।

ज़िलों के काम की देख-भाल मेरे सुपुर्द की गयी थी। मैंने देखा कि यद्यपि अंग्रेज़ी राज्य का फ़ौजदारी क़ानून बीकानेर राज्य में जैसा का तैसा लागू था, परन्तु उसका निरादर किया जाता था। पुलिस की हवालात में अभियुक्त जन महीनों पड़े रहते थे, यद्यपि पुलिस को केवल २४ घंटे स्वतः अपने अधिकार से और १५ दिन तक मैजिस्ट्रेट की आज्ञानुसार अभियुक्त को अपने बन्धन में रखने का अधिकार है। पुलिस का अत्याचार तो पुराने ज़माने का सा जारी था। एक व्यक्ति को हमने देखा कि उसकी हाथ की अंगुलियां जलाई गई थीं।

दो-दो साल के कैदियों को भी सूती और ऊनी दरियां, क़ालीन बनाना सिखाया जाता था। एक-एक ऊनी क़ालीन २०००) तक का तैयार होता था। ऊन की उपज राज्य में बहुत है, मनों ऊन बाहर भी जाता है, ऊन की रंगाई देशी रङ्गों से होती है, जो देशी वस्तुओं से वहाँ ही बनाए जाते हैं।

बीकानेर हाईकोर्ट का काम हिन्दी में होता है। फैसले देवनागरी लिपि में लिखे जाते हैं। लॉ रिपोर्ट भी हिन्दी ही में प्रकाशित होती हैं, किन्तु शब्द उर्दू भाषा के ही होते हैं। मैंने हिन्दी शब्दों का प्रयोग

प्रारम्भ किया था। Pre-emption के लिये पूर्वक्रयाधिकार का, वाक़या के लिये घटना का, मुद्दई-मुद्दालेह के लिये वादी-प्रतिवादी, मुलज़िम के लिये अभियुक्त आदि का प्रयोग किया। सर मनुभाई मेहता ने एक सभा में मेरे सम्बन्ध में कहा था, "He is an acquisition to the State"

कचहरी के मुकदमों के कुछ संस्मरण लिख देना अनुचित न होगा।

एक युवक ने अपने मामा की सहायता से दिन के समय खेत में अपने पिता को जान से मार डाला। कारण यह था कि उसका पिता उसकी पत्नी से व्यभिचार करता था और यह बात गाँव में फैल गई थी। दोनों अभियुक्तों ने अपराध स्वीकार किया। उनको जन्म कैद का दण्ड दिया गया। अपील दो जजों के सामने पेश हुआ। मैंने निर्णय लिखा, अपील खारिज किया। और मुकदमे की सारी मिस्ल, रिपोर्ट लिख कर महाराजा जी की सेवा में भेज दी कि वह अपने राज्याधिकार से उनका दंड कम कर दें। महाराजा जी ने युवक को तो बिल्कुल छोड़ दिया, यह लिखकर कि जो सज़ा इसने भुगत ली वह काफ़ी है, और प्रौढ़ पुरुष को केवल ४ वर्ष कारागार का दंड दिया।

एक मुकदमा मैंने फ़ौजदारी का किया, जिसमें एक सेठ पर यह अभियोग था कि उसने अपनी रसोईदारनी ब्राह्मणी के साथ बलात्कार मैथुन किया, और उसको बलात्कार रोक रक्खा। खाना बनाने वाली ब्राह्मणी का सेठ जी से अनुचित सम्बन्ध हो गया था। सेठजी ने उसे कुछ आभूषण भी बनवा दिये थे। एक दिन किसी बात पर तकरार होगई। वह गहना ले कर चली गई, सेठजी उसके पीछे पकड़ने को गए। रेल पर वह चढ़ गई थी, सेठजी ने रेल रुकवा कर उसको उतरवा लिया। बैलगाड़ी में वापस लाये। मार्ग में उसके साथ उसकी मरज़ी के विरुद्ध मैथुन किया। मैंने सेठ जी को तीन

बरस कारागार का दंड बलात्कार मैथुन के अपराध में, और ५००) दंड बलात्कार रोकने के अपराध में किया । अपील हाईकोर्ट में दो जजों के सामने होता। किन्तु सेठ ने महाराजा जी को अरज़ी दी कि हाईकोर्ट के दोनों जज उसके मुक़दमे में पहले से उसके विरुद्ध सम्मति प्रकाशित कर चुके हैं; उसके अपील की सुनाई के वास्ते नई कचहरी बनाई जाय । ऐसा ही हुआ, और उस नवनिर्मित कचहरी के जजों ने बलात्कार मैथुन का अपराध अनिश्चित रखा, कारागार का दण्ड काट दिया । किन्तु ५००) जुरमाना बलात्कार रोकने के अपराध में क़ायम रक्खा । सेठ तो रुपये वाले थे, उन को ५००) दण्ड की परवाह न थी ।

बीकानेर राज्य में काश्तकार, (खेती पेशा जनों) के अधिकार का कोई क़ानून नहीं है । भूमिपति, (जिनको वहाँ पट्टेदार कहते हैं) जिसे किसी कृषक को जब चाहे कृषिभूमि से हटा सकता है । एक मुकदमे में कृषक कई सौ बीघा भूमि से बेदखल कर दिया गया । अपील में भी वह असफल रहा । दूसरा अपील हाईकोर्ट में मेरे और राय बहादुर लक्ष्मी-नारायण जी के सामने पेश हुआ । कृषक का कहना था कि "हमारे पुराण पुरुष महाराजा बीकाजी के साथ आये थे जब उन्होंने बीकानेर बसाया । हम लोगों ने भूमि पर परिश्रम करके उस को उपजाऊ बनाया है, उस पर बाग़ लगाये हैं । लगान जितना भी लगाया गया है हमने मँजूर किया है, बराबर लगान देते रहे हैं, बाकीदार नहीं हैं, बदचलन नहीं हैं, निःकारण हमसे भूमि छीनी जाती है ।" मैंने श्री लमक्ष्मी नारायण जी से कहा कि यह तो अत्याचार है । वह बोले कि इस राज्य में कृषक को कोई सत्व प्राप्त नहीं है । हाईकोर्ट से भी यही निर्णय किया गया है, भूमिपति पट्टेदार की मरज़ी है जिससे चाहे भूमि निकाल ले, जिस को चाहे दे दें । मैंने कहा कि यह बात तो न्याय विरुद्ध है, और हम दोनों की सलाह से मुक़दमा फैसले के वास्ते तीन जजों के सामने रखा गया । निर्णय लिखने का काम मेरे ज़िम्मे रहा । पट्टेदार ने पट्टे में

प्रतिज्ञा की थी, कि वह प्रजा को सन्तुष्ट रक्खे गा। और इसी युक्ति के आधार पर अपील स्वीकार करके पट्टेदार का दावा खरचे समेत खारिज कर दिया। चीफ़ जस्टिस और श्री लक्ष्मी नारायण जी इस निर्णय में मुझसे सहमत रहे। महाराजाजी की प्रीवी काउन्सिल से हम लोगों का निर्णय स्थिर रक्खा गया। यह निर्णय राज्य बीकानेर लॉ रिपोर्ट, जिल्द ३, हिस्सा ३, पृष्ठ ८४ पर प्रकाशित है।

एक और मुकदमे का ज़िक्र करना उचित जान पड़ता है। पुलिस विभाग में ७७०००) का ग़बन हो गया। २०-२५ बरस का युवक जो खज़ानची का काम करता था, पुलिस ने पकड़ कर अपनी हवालात में महीनों तक रखा। उसकी तरफ़ से उस पर अत्याचार किये जाने की अरज़ी गुज़रने पर हाईकोर्ट ने उसे जेल हवालात में रखे जाने का हुक्म दिया। पुलिस चाहती थी कि अभियुक्त उनके कब्ज़े में रहे। अभियुक्त को अपराध तो स्वीकार था, किन्तु उसका कहना था कि वह तो १०-५ हज़ार ही अपने खर्च में लाया है, बहन का विवाह किया है, एक मन्दिर बनवाया है इत्यादि, शेष बड़ी रकमें उच्च अधिकारी वर्ग ने हथियाई हैं। सुना गया है कि इन बातों को लेकर राजा साहेब "महाजन"* की अध्यक्षता में पट्टेदारों ने महाराजा साहेब तक हाईकोर्ट के विरुद्ध प्रार्थना पहुँचाई।

स्वतन्त्र विचार का मनुष्य उन दिनों की रियासतों में नहीं निभ सकता था, और एक-एक करके हम तीनों जज २-३ बरस के अन्दर बीकानेर से वापस आ गए।

बीकानेर हाईकोर्ट की जजी के दिनों में मैं सुख से नहीं रहा। पहले तो ६ मास तक मकान ही नहीं मिला। जब मकान मिला, तो मैंने अपने

*"महाजन" एक इलाके का नाम है।

पुत्र अभिनन्दन प्रसाद को सपरिवार और अपनी बेटी शान्ति को बीकानेर बुलवा लिया। मेरी पौत्री इन्दुमती क़रीब ६ सप्ताह तक बीमार रही। सिविल सरजन के इलाज से, Oxygen Injections से कुछ लाभ नहीं हुआ, यद्यपि वह रोग से युद्ध करती रही। उसके शरीर का अग्नि-संस्कार मैंने दुःखित हृदय से बीकानेर की मरू-भूमि में किया। पुत्री शान्ति भी वहाँ रोग-पीड़ित कई सप्ताह तक रही, और यदि उसके पतिदेव उसको बीकानेर से न ले जाते, तो शायद उसका भी देहान्त बीकानेर में ही हो जाता।

पुत्र-वधु भी बहुत दिनों तक बीमार रही। स्वतः मैं भी रोगपीड़ित रहा। सिविल सरजन ने तो कह दिया कि मुझको श्वास (asthma) रोग होगया है। ६ मास की छुट्टी लेकर अपना इलाज कराना चाहिये।

बहु के आभूषण चोरी गए। पुलिस ने कुछ भी पता न लगाया। मेरा बँगला ले लिया गया, और मुझसे कहा गया कि बस्ती में किराये का मकान लेकर रहूं। यह मुझे स्वीकार न था और इसी बात पर मैंने त्याग-पत्र दे दिया।

इस प्रसंग में जो पत्र-व्यवहार हुआ, उसे प्रकाशित कर देना अनुचित न होगा :

1.

LETTER DATED THE 8TH MAY 1930 FROM THE MINISTER, PUBLIC WORKS DEPARTMENT.

" The State house at present occupied by you is required by Government, and I am directed to request you to be so good as to vacate it by the 1st of July. "

2.

D. O. LETTER NO. 2113|2324 P. M. DATED 23-7-1930 FROM THE PRIME MINISTER, SIR MANUBHAI MEHTA.

"Dear Mr. Ajit Prasad,

I have already informed you that the State house at present in your occupation has been allotted to Captain Hector Kothawala. For want of other State house, I have asked you to be so good as to make your own arrangements for a residential house······ I am therefore reluctantly compelled to ask you kindly to vacate the house by the 31st July 1930."

3.

LETTER OF RESIGNATION DATED THE 23RD AUGUST 1930 FROM MR. JUSTICE AJIT PRASAD M. A. LL. B. TO THE PRIME MINISTER FOR BIKANER STATE.

"Since vacating house No. 38, I have been staying, as a temporary measure, with the Chief Justice. I have not been able to find another suitable house, and feel compelled to tender my resignation from service which may kindly be accepted from the 1st October 1930, or from such other date, as may suit the convenience of the Government."

4.

PRIME MINISTERS ORDER, DATED 9TH SEPTEMBER

"The resignation of Justice Ajit Prasad is accepted."

लाहौर हाईकोर्ट में

नवम्बर १९३० में मेरे स्कूल के सहपाठी डाक्टर सर मोती सागर* का सहसा देहान्त हो गया। सम्वेदनार्थ मैं लाहौर गया। उनके बेटे प्रेम-सागर ने कहा कि "११०००) की फ़ीस पेशगी मिल चुकी है। कितने ही अपीलों में अभी तक हाज़िरी का परचा भी नहीं लगा है। लोग रुपया वापस मांग रहे हैं ताकि दूसरा कोई वकील कर लें। यदि आप पिताजी के दफ़्तर का काम संभाल लें तो यह बला टल जाय।" मैंने स्वीकार कर लिया और ५ फ़ीरोज़पुर रोड पर पूर्ण अतिथिसत्कार से रहने लगा। सर मैल्कम हेली, गवर्नर पंजाब की दावत मोती सागर ने की थी, तो उन्होंने कहा था "You are living in a palace, Moti Sagar." कोठी में विशाल दूब लगा हुआ बाहर का प्रगांण, पुष्प-फल का उद्यान, मोटर के आने जाने के दो फाटक थे। कश्मीरी ऊनी ग़ालीचे, बहुमूल्य खाने का सजा हुआ कमरा और विशाल सुसज्जित तीन तीन कमरों के सेट्स, बीच में रास्ता (gallery), पीछे खुला हुआ चौड़ा बरामदा था। सब राजकीय ठाठ थे। सर मोतीसागर का पुस्तकालय लाहौर में सर्वश्रेष्ठ था। २ दिसंबर १९३० को मेरा नाम ऐडवोकेट श्रेणी में लिख लिया गया और ६ तारीख से मैंने काम प्रारम्भ कर दिया। Letters Patent Appeals, First Appeals, Second Appeals आदि सब प्रकार के मुक़द्दमों में मेरा नाम १९३१ से १९३४ तक के All-India Reporter में प्रकाशित हुआ है।

डा० सर मोती सागर के दफ़तर में काम करनेसे मुझे अनुभव हुआ कि विकालत करने में असामान्य कठिन परिश्रम करना पड़ता है। ५००) पेशी से कम तो फ़ीस वह लेते ही न थे। यों एक-एक मामले में हज़ारों

---

* देखिये पृष्ठ ४१-४२

रुपये पेशगी लिए थे। मामले भी उनके पास अत्यन्त कड़े आते थे। कई मुकदमों में मुझे रातों जागकर पढ़ना और युक्ति-संग्रह करना पड़ा है। हिन्दुस्तान के समस्त हाईकोर्टों के निर्णयों के विरुद्ध Chancery Division, King's Bench, Equity, Exchequer, Privy Council Reports, Indian Appeals इत्यादि लंदन के प्रकाशित निर्णयों की युक्तियों का उपयोग करके यह सिद्ध करने का प्रयास करना पड़ता था कि हिन्दुस्तान के हाईकोर्ट—कलकत्ता, बम्बई, मदरास, इलाहाबाद, लाहौर, रंगून, नागपुर— सब ने भूल की है; और प्रस्तुत विषय का निर्णय मेरी उपस्थित की हुई युक्तियों के आधार पर होना चाहिये।

मुझे काम में पर्याप्त सफलता मिली किन्तु इतरपंजाबी होने के कारण नया काम कम मिला।

जैसे-जैसे काम का बोझ कम होता गया, मेरे सरकार में भी कमी होने लगी। शनैः शनैः कोठी भी किराए पर दे दी गई। खाली ज़मीन पर एक सुन्दर विशाल चित्रगृह (Plaza) खड़ा किया गया।

लाला फ़कीर चन्द ऐडवोकेट ने जो नं० १० Fane Road पर हाईकोर्ट के पास ही रहते थे, मुझे प्रोत्साहन और सहायता दी। वह अद्वितीय उदारचित्त, सहृदय, दानशील महोदय थे। मैं उनका उपकार कभी नहीं भूल सकता। उनका चिरकृतज्ञ रहूँगा। लाला फ़कीर चन्द जी के पुत्र श्री नरेन्द्रनाथ के विवाहोपलक्ष में मैंने सेहरा पढ़ा था जिसके निम्न पद पर जज सर अब्दुल क़ादिर की गर्दन झूम गई थी :

दिल के मुस्तग़नी हैं,
गो कहते हैं अपने को फ़क़ीर।
चन्द गर ऐसे हों,
हो कौम के सर पर सेहरा !!

पञ्जाब भूगोल संघ

पञ्जाब भूगोल समिति, लाहौर (The Punjab Geographical Association) ने १६३२ में सेन्ट्रल ट्रेनिङ्ग कालिज के अध्यापक श्री सोहनलाल की अध्यक्षता में एक सङ्घ चलाया था।

लाहौर से ३७५ यात्री स्पेशल ट्रेन से चले थे। जेहलम, रावलपिंडी तथा बीच के स्टेशनों से और भी यात्री सम्मिलित हो गए थे। इनमें प्रोफ़ेसर, डाक्टर, वकील, बैरिस्टर, पैंशनर, १०० के अनुमानतः छात्राएँ, तीन योरुपीय महिला और कितनी ही सनातनधर्म, दयानन्द ऐंग्लो वेदिक, हेली, लेडी मेकलेगन आदि कालिजों की अध्यापिकायें थीं। अधिकतर समूह पुरुष विद्यार्थियों का था। उनका व्यवहार विनय, सभ्यता, शिष्ठता पूर्ण न था।

स्पेशल ट्रेन में प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के दरजे भी थे। शेष तीसरे दरजे लगे थे। मुझे एक Coupe में स्थान मिल गया। मेरे सह-यात्री श्री रायबहादुर दुर्गादास के सुपुत्र श्री लक्ष्मणदास विद्यार्थी थे, जिनसे मुझे मार्ग में विविध प्रकार सुविधा मिली।

लाहौर से ४ मार्च को प्रातः चल कर ५ मार्च को प्रातः तक्षशिला स्टेशन पहुँचे। वहाँ से पैदल चल कर २ घण्टे में तक्षशिला पहुँचे। वहाँ एक पहाड़ी पर स्तूप, बड़ा कमरा, गिरो-पड़ी दशा में कोठरियाँ थी। सारनाथ (बनारस) और राजगृह के निकटस्थ नालन्दा में स्तूप, कमरे, कोठरी आदि कहीं अच्छी दशा में हैं। वहाँ की ईंट यहाँ की ईंट से बड़ी और मज़बूत है।

प्राचीनवस्तु संग्रहालय का प्रवेश शुल्क =) प्रति व्यक्ति था। वहाँ

मिट्टी के बर्तन, कांच के आभूषण, चाँदी के गहने, पुराने सिक्के प्रदर्शित किए गए थे। सर जान मार्शल (Director-General of Archaeology) का निवासस्थान सुखप्रद, रमणीक था।

फिर हसन अब्दाल उतरे जो सिख धर्म का पूज्य तीर्थ है और पञ्जा साहेब के नाम से विख्यात है। पुराण कथा है कि यहाँ शुष्क स्थान था। एक सिख गुरु ने अपनी सिद्धि की शक्ति से वहाँ पानी की धारा बहा दी। फिर उस प्रवाह को अपने पंजे से रोक दिया। एक स्थान पर जहाँ पानी श्रोत से आता है, पञ्जा बना हुआ है। पानी सरोवर में एकत्र होता है। उसमें हम लोगों ने स्नान किया। वहाँ के गुरुद्वारे में ग्रन्थ साहेब का अखंड पाठ निरन्तर होता रहता है। यात्रियों को सब प्रकार की सुविधा प्राप्त है। उत्तम प्रबन्ध है।

फिर पेशावर उतरे। खालसा हाई स्कूल के विद्यार्थी स्टेशन पर उपस्थित थे। प्रेमभाव से आदर सत्कार किया। आराम से स्कूलभवन में ठहरे। बाज़ार में घूमे फिरे।

दूसरे दिन धीमी छोटी रेल से लंडीकोतल के लिये प्रस्थान किया। इसलामिया कॉलिज, जमरूद क़िला आदि स्टेशन बीच में पड़े। जमरूद क़िले से खैबर की घाटी प्रारम्भ हो जाती है। हमारी रेल में रक्षार्थ तहसीलदार और पुलिस गार्ड थे जो पश्तो भाषा जानते थे। यह घाटी ३३ मील तक चली गई है। कहीं-कहीं तो बहुत तंग हो गई है। दोनों तरफ़ २०० फ़ीट ऊँचे पहाड़ हैं। इन पहाड़ों की चोटियों पर बंदूक ताने हथियार बन्द सिपाही निरन्तर पहरा देते रहते हैं, क्योंकि मोहमंद आदिवासीयों के आक्रमण का निरन्तर भय लगा रहता है। यहाँ प्रत्येक घर गढ़रूप बना है, छत पर बन्दूक लिये कोई न कोई बैठा रहता है, जान जोखों में रहती है। इस ही घाटी से सिकन्दर, तैमूर, नादिर, अहमदशाह आदि ने भारत

पर आक्रमण किया। जो लोग पहरा देते हैं खस्सादार कहलाते हैं इस ही घाटी से सौदागरों के ५-५ मील लम्बे संघ जिन्हें क़ाफ़िला कहते हैं, विविध माल असबाब ऊँट, बकरी, भेड़, बैल आदि लेकर और शुक्रवार को आते हैं। रेल २७ मील लम्बी है। ३२ गुफायें मार्ग में पड़ती हैं।

जमरूद किला महाराजा रणजीत सिंह के सेनापति श्री ईश्वरी सिंह नलवा ने बनावाया था। किले की दिवार १० फ़ीट मोटी हैं, और गढ़ के फाटक दोहरे हैं। १८३७ तक हरी सिंह नलवा इस गढ़ से अफ़गानों से लड़ते रहे और वहाँ इन को वीरगति प्राप्त हुई। बुर्जी के निकट ही उन के शरीर का अन्तिम संस्कार किया गया था।

लंडीकोतल उस समय अंग्रेजी सेना की छावनी थी। निरन्तर पहरा लगा रहता था। हमारा संघ स्वतः वहाँ के रहने वालों की दृष्टि में एक प्रदर्शनीय वस्तु हो गया था। मोहमन्द महिला काले रंग के वस्त्र पहनती हैं। वह गौराङ्ग सुन्दर स्वस्थ, किन्तु निर्धन हैं।

मार्ग में अटक नदी पर से रेल गई थी। अटक नदी का पाट दो मील चौड़ा है। धारा प्रवाह अत्यन्त तीव्र है। उसमें पैर जमाना कठिन है। महाराजा रणजीत के सेना अध्यक्षों ने अटक नदी के तीव्र बहाव को देखकर उसको पार करते समय संकोच किया था। उस समय महाराजा ने तुरन्त अपना घोड़ा नदी में डाल दिया और कहा—

सभी भूमि करतार की, या में अटक कहा।
जा के मन में अटक है, सो ही अटक रहा॥

७ मार्च सन् १९३२ को हमारा संघ लाहौर वापस आ गया।

देवगढ़

देवगढ़ जैसा उसका नाम है, एक छोटे से पहाड़ पर बना हुआ गढ़ है। सारा का सारा गढ़ देवताओं को अर्पित कर दिया गया है। पहाड़ पर ३ ऊँची दीवारें एक के अन्दर एक सब तरफ़ हैं। हर दीवार में अन्दर जाने के फाटक हैं, तलहटी से पहाड़ की चढ़ाई सुगम है। फाटक के पास दो बड़े-बड़े ढोल रखे हैं। पहाड़ पर अनगिनती मूर्तियां हर प्रकार की भिन्न धर्मों की हैं, देवी-देवताओं, यक्ष अप्सरा, सिंह, विविध पशु, बेल बूटे, वादित्र, अनेक ढंग के नृत्य प्रदर्शन हैं। अधिकतर मूर्तियां जैन साधुओं की हैं। किसी के बाल पीछे को मुड़े हुए हैं, किसी के बीच में से आधे इधर आधे उधर, किसी के जटा रूप बंधे हैं, किसी के मीढियां सी गुथी हैं, किसी के कंधों पर फैले हैं, किसी की लटें वक्षस्थल तक लटक रही हैं। किसी के बायें हाथ में ताड़पत्र लिखित शास्त्र है, किसी का हाथ उपदेश रूप उठा हुआ है, किसी को श्रावक आर्यिका नमस्कार कर रहे हैं। संक्षेपतः यह प्रतीत होता है कि केश लुंचित, केश सहित, पीछी-कमन्डल सहित, सामान्य साधु, उपाध्याय, आचार्य, केवली, तीर्थंकर, पञ्चपरमेष्ठी, गणधर की मूर्तियाँ स्थापित की गई हैं।

बुंदेलखण्ड में जैन धर्म का विशेष प्रचार, प्रभावना हुई है। जैन धर्मानुयायी राजाओं, सेठों सदस्यों का अधिकार रहा है। पपोरा के सैकड़ों मन्दिरों से, चन्देरी के विशाल प्रतिष्ठित प्रतिबिम्बों से, खजुराहा के मन्दिरों से, सोनागिरि, द्रोणागिरि, नैनागिरि, अहार, पचराई, पावा, बूढ़ी चन्देरी आदि जिनालयों और भग्नाव-

शेषों से जैनधर्म का प्रसार स्पष्ट प्रतीत होता है। एक बरामदे में "ज्ञान शिला" पाषाण पर १८ भाषाओं में १८ प्रकार की लिपि में लेख खुदे हुए हैं। देवगढ़ तो ऐसा स्थान है कि जहाँ खोज, परिश्रम, धन के सदुपयोग से महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री जैनधर्म-प्रभावना की मिल सकती है।

इस स्थान का पता ४०-४५ वर्ष हुए लगा। सरकारी अधिकार से श्रीयुत् दयाराम सहनी, M.A. डाइरेक्टर पुरातत्व विभाग यहाँ कई महीने तक रहे। १००-१५० शिला लेखों की प्रतिलिपि तैयार की। जब जैनीयों को पता लगा तो श्री नाथुराम सिंघई के मन्त्रित्व में एक कमेटी बनाई गई। और झाँसी के कलेक्टर महोदय से पत्र व्यवहार प्रारम्भ हुआ। उस प्रयत्न के परिणामस्वरूप इस कमेटी को देवगढ़क्षेत्र के प्रबन्ध का अधिकार मिल गया।

एक शिला लेख से पता चला है कि राजा स्वामीभट्ट, पुत्र केशवभट्ट, पौत्र गोमलकाभट्ट ने एक जिनालय बनाया था। दूसरे शिला लेख में लिखा है भगवत गोविन्द, केशवपुर के राजा ने शान्तिनाथ भगवान की पूजा के अर्थ नगर को अर्पित किया। पहाड़ पर ३१ मन्दिर हैं। श्री शान्तिनाथ जी का मन्दिर एक अद्वितीय अतिशय क्षेत्र है। भगवान शान्तिनाथ की कायोत्सर्ग पाषाण मूर्ति करीब ८ गज़ लम्बी चारों ओर दीवारों से वेष्टित अन्धेरे स्थान में है, जहाँ १०-१२ मनुष्य खड़े होकर दर्शन कर सकते हैं। अन्दर जाने का मार्ग एक कोने में पौन गज से गज़ भर के छिद्र से है, जिसमें झुक कर के अन्दर पहुँच सकते हैं।

१९३१ में आगरा निवासी श्रीयुत सेठ पद्मचन्द्र जी ने अनेकों मूर्तियों को दीवार के सहारे जमवा कर जीर्णोद्धार करके महान धर्म प्रभावना और पुण्योपार्जन किया है। आवश्यकता है कि देवगढ़

क्षेत्र का सचित्र विवरण प्रकाशित किया जाय जिसमें पहाड़ के भिन्न-भिन्न कोनों से चित्र हों। मूर्तियों का छायाचित्र, शिलालेखों की प्रतिलिपि, उसका हिन्दी अनुवाद, विशेष मूर्तियों के फ़ोटोग्राफ़ और पहाड़ का प्रमाणिक इतिहास हो।

तलहटी में जिनालय, धर्मशाला, पाठशाला हैं। देवगढ़ प्रबन्धक कमेटी का अधिवेशन फ़रवरी १६३४ में भीलसा निवासी श्रीमान सेठ लक्ष्मी चन्द्र जी दानवीर के सभापतित्व में हुआ। कमेटी के अध्यक्ष सेठ पन्नालाल टडैया, उपाध्यक्ष सिंघई भगवान दास सर्राफ़, कोषाध्यक्ष सिंघई बच्चू लाल जी थे।

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी का अधिवेशन भी उसही अवसर पर किया गया। ललितपुर रेलवे स्टेशन से वैरिस्टर चम्पत राय, वाणीभूषण पंडित तुलसीराम, मास्टर भगवानदास, कुंवर दिग्विजय सिंह सिंघई और मैं, बच्चूलाल जी की मोटरकार में रवाना हुए। स्टेशन से हम सब क्षेत्रपाल मन्दिर में दर्शन, धर्मशाला में स्नान सामायिक आराम करने चले गए थे। मन्दिर ऊँचे स्थान पर है। धर्मशाला बगीचे में सुखप्रद सुन्दर है।

तीर्थक्षेत्र कमेटी के अधिवेशन के अध्यक्ष वैरिस्टर चम्पत राय थे। उन्होंने अपने भाषण में दो योरोपीय महिलाओं का उल्लेख किया था, जिनको जैनधर्म की पर्याप्त लगन थी और प्रस्ताव किया था कि उनको इस अधिवेशन की ओर से पारितोषक-रूप कुछ आभूषण भेजने उचित हैं। श्री वर्णी गणेश प्रसाद जी ने उस अवसर पर अपनी माता चिरोंजी बाई जी की ओर से कुछ रुपये भेंट किये थे।

दोनों अधिवेशन सफलतापूर्वक समाप्त हुए। पुलिस का प्रबन्ध और व्यवहार अच्छा था। प्रबन्धक कमेटी ने यात्रियों का आतिथि-सत्कार श्रद्धा तथा उत्साह से किया।

श्री ऋषभदेव केसरियानाथ जी

उदयपुर राज्यान्तर्गत, धुलेव ग्रामस्थित जैन धर्म का महान तीर्थ-स्थान ऋषभदेव केसरियानाथ जी प्राचीन काल से चला आ रहा है। समस्त सम्प्रदाय के जैनधर्मानुयायी-दिगम्बर, श्वेताम्बर, बल्कि हिन्दू और भील तक भक्तिभाव से यात्रा करने आते हैं।

मूलनायक मूर्ति श्री ऋषभ देव की है, जो प्रथम तीर्थंकर युगादि पुरुष थे। चरण पादुका के तले १६ स्वप्न के चित्र बने हैं। अन्य मूर्तियों पर सन् १६१५, १६८६, १६६६, १७०३, १७१०, १७११, १७७७, १८०६ आदि के लेख हैं और श्री सुरेन्द्र कीर्ति, सकल कीर्ति, देवेन्द्र कीर्ति आदि दिगम्बर आचार्यों द्वारा प्रतिष्ठित होने के उल्लेख हैं।

मूर्ति की पूजा दिगम्बरी उपासक अभिषेक करके दिगम्बररूप में और श्वेताम्बरी केसरलेप करके मुकुट आदि से अलंकृत करते हैं।

४ मई १९२७ को जिस समय दिगम्बरीय उपासक पूजा कर रहे थे, कुछ श्वेताम्बरीयों ने रोक कर अपने ढंग से लेप अलंकार करना चाहा। तकरार हो गई। श्वेताम्बरीय राज्याधिकारियों ने सेना के सिपाहियों को, जो साथ में थे, मन्दिर के अन्दर बुला लिया और दिगम्बरीयों पर घोर निर्दयता से मारपीट कराई और ज़खमियों को मन्दिर के बाहर फिकवा दिया। पुजारी तो मर ही गया।

उसी मई १९२७ में इन्दौर के सर सेठ हुकुम चन्द, रायबहादुर कस्तूर चन्द, अजमेर के रायबहादुर सेठ टीकमचन्द सोनी, रायबहादुर

नांदमल सरकारी पेंशनर, बम्बई के सेठ चुन्नीलाल हेमचन्द, और लखनऊ के श्री अजित प्रसाद वकील श्री महाराजा जी तथा श्री महाराज कुमार जी की सेवा में उपस्थित हुए और जो अत्याचार दिगम्बरीय प्रजा पर किया गया था उसका नम्रनिवेदन किया। महाराजा जी ने तथा महाराज कुमार ने आश्वासन दिया कि न्याय होगा।

१६३५ में जीर्ण-शीर्ण ध्वजा-दण्ड के स्थान में नवीन ध्वजा-दण्ड दिगम्बर या श्वेताम्बर धार्मिक विधि के अनुसार स्थापित किया जाय, यह विषय विवादास्पद हो गया। राज्य ने ४ अधिकारी वर्ग का विशेष न्यायालय इस विवाद का निर्णय करने के उद्देश्य से स्थापित किया।

दिगम्बर पक्ष की युक्तियां प्रस्तुत करने का कार्य मुझे सौंपा गया। किन्तु उन युक्तियों के समर्थक प्रमाण-पत्र मेरे पास नहीं भेजे गए। और नियमित तिथि पर श्वेताम्बर पक्ष के समर्थन में बम्बई के सर चिमन लाल शीतलवाद, और दिगम्बर पक्ष के समर्थन में श्री मोहम्मद अली जिन्नाह उदयपुर उपस्थित हुए। कमीशन ने युक्तियाँ सुन कर अपना निर्णय स्थगित रखा। १२ बरस पीछे १६४७ में निम्न आशय की राज-प्रशस्ति प्रकाशित हुई।

उदयपुर—५ जून, १६४७

नं० १०३३८ सन् १६४७—५८६११-६०. पोलि—२.

(क) ऋषभदेव जैन मन्दिर दिगम्बरीय आम्नाय द्वारा स्थापित हुआ है। किन्तु प्राचीन काल से हिन्दु, भील, तथा अखिल सम्प्रदाय के जैन यहाँ पूजा करने आते हैं।

(ख) मन्दिर की चल-अचल सर्वसम्पत्ति महाराना उदयपुर के अधिकार में ट्रस्टी के तौर पर है। और २ शताब्दियों से इस प्रकार

प्रबन्ध चल रहा है, जिसमें मन्दिर के धार्मिक रीति और उत्सवविधान तथा ध्वज-दंड की स्थापना शामिल है।

अनुमानतः ध्वजा-दंड राज्य की तरफ़ से सनातन हिन्दु धर्म विधि अनुसार चढ़ाया गया होगा।

बन्दर और बिल्लियों की कहावत इस पारस्परिक विवाद से चरितार्थ हो गई।

मुनि जयसागर महाराज उपसर्ग निवारण

जुलाई १६३३ में आलीजाह निजाम हैदराबाद ने हैदराबाद नगर तथा रियासत हैदराबाद में मुनि जयसागर महाराज के दिगम्बररूप विहार करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जैन समाज की ओर से मुझको हैदराबाद भेजा गया। मैंने हैदराबाद जाकर दीवान बहादुर सर राजा कृष्ण प्रसाद तथा अन्य राज्याधिकारियों से मिल कर उन को जैन धर्म के तत्त्व और जैन मुनि धर्म के पवित्र और कड़े नियम समझाये। और परम माननीय निज़ाम साहेब ने प्रतिबन्ध हटा दिया। मुनि महाराज ने आमरण अनशन व्रत ले लिया था। घोर उपसर्ग धैर्य तथा दृढतापूर्वक सहन कर रहे थे। उपसर्ग के अन्तिम दिनों में मूत्राशय से रुधिरश्राव होने लगा था। मुनि महाराज मरणासन्न थे। प्रतिबन्ध के हटजाने पर मुनि महाराज ने आहार के वास्ते नगर में विहार किया। धर्म के प्रताप से उपसर्ग हट गया। दिगम्बरत्व की विजय हुई।

———

जैन कॉलेज

भारत जैन महामंडल के प्रारंभिक अधिवेशनों से ही एक जैन कॉलेज स्थापित करने की आयोजना होती रही। श्री बाबूलाल वकील मुरादाबाद, श्री जुगमन्दरदास नजीबाबाद, श्री अर्जुनलाल सेठी आदि महानुभावों की मण्डली ने उसके सम्बन्ध में दौरा भी किया था।

वर्णी दीप चन्द जी ने दिल्ली से एक विज्ञप्ति निकाली जिसके अनुसार "समन्तभद्र जैन विद्या-मन्दिर" खोलने की आयोजना थी। उसमें दो प्रमुख विभाग होने—एक वस्तु विज्ञान विषयक और दूसरा धर्म की उच्चतम शिक्षा प्रदान करने के लिये। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये वर्णी जी व उनके अन्य दो सहयोगी भागीरथ जी और गणेश प्रसाद जी ने श्रुत पंचमी वीर सं० २४५६ को संकल्प लिया कि वे "संयुक्त प्रदेश, पंजाब व अन्य प्रान्तों में एक वर्ष तक पर्यटन करके प्रत्येक जैन को व्यक्तिगत रूप से इस संस्था की अनिवार्यता" से अवगत करेंगे।

निश्चित अवधि निकल गई; वर्णीत्रय केवल दस बारह नगरों में जा सके और "जैन-मित्र" में तद्विषयक कुछ पत्र प्रकाशित हुए। वर्णी आंदोलन के असफल रहने पर २० अगस्त, १६३३ को बाबू प्यारे लाल वकील की कोठी पर निम्नलिखित महोदयों की एक सभा हुई :—

(१) रायबहादुर श्री नन्दकिशोर इंजीनियर, अध्यक्ष

(२) पं० गणेश प्रसाद वर्णी

(३) रायसाहेब रतन लाल एम० ए०

(४) पं० अजित प्रसाद

(५) श्री बलवीर चन्द, मुजफ्फर नगर

(६) प्रो० मूल चन्द

(७) प्रो० लक्ष्मी चन्द

(८) बाबा भगीरथ जी वर्णी

(९) पं० तुलसी राम जी वाणीभूषण

इस सभा ने जैन कॉलेज सोसाइटी नामक एक संस्था स्थापित की जिसके उद्देश्य इस प्रकार थे :—

The aims and objects of the Society would be to provide higher education accompanied by moral and religious instruction, to encourage the study of Sanskrit and Prakrit and to popularise the study of Jain religion. To this end the Society shall

(i) establish a Jain College at Delhi affiliated to the Delhi University. This College shall include a separate Sanskrit. Department and a Central Jain Research library,

(ii) establish other institutions such as colleges, schools, hostels and research libraries,

(iii) manage all institutions and endowments which may be made over to the Society, and

(iv) adopt any other proper measures in furtherance of the above objects.

कार्य प्रारंभ करने के लिये पं० महबूब सिंह की दरयागंज वाली कोठी उपयुक्त समझी गई। विचार विनिमय के बाद यह निष्कर्ष निकला कि दो लाख रुपया इकट्ठा होते ही एक किराए का मकान लेकर कॉलिज प्रारम्भ कर दिया जाए। रुपये की बात आते ही वर्णी जी ने पता चला कि लोगों ने सप्रतिबन्ध वायदे तो ज़रूर किये, परन्तु नक़द

कुछ नहीं दिया। दिल्लीवालों ने ५०,०००) देना स्वीकार किया यदि कॉलिज दिल्ली में ही स्थापित हो और पहले अन्य स्थानों से डेढ़ लाख रुपया इकट्ठा हो जाए। इतना ही नहीं, दिल्ली वालों ने एक और प्रतिबन्ध लगा दिया कि उनकी संकलित पूँजी को कोई न छुए; केवल ५०,०००) के ब्याज का ही उपयोग किया जाए।

इन्हीं दिनों दिगा के बाबू रामलाल महतो ने बिहार प्रान्तीय हिन्दूसभा के नाम १३ बीघे ज़मीन का पट्टा लिख दिया था। मैंने अँग्रेजी जैन गज़ट में अपील निकाली कि हमारे सेठ और महाजन प्रतिवर्ष लाखों रुपया पूजा, प्रतिष्ठा, तीर्थ-यात्रा नए-नए मन्दिर और वेदियाँ बनवाने में व्यय करते हैं। क्या वे एक विद्या-मन्दिर के लिये एक-दो एकड़ जमीन का भी दान न करेंगे? यदि किसी कारण-वश पाँच वर्ष में कॉलिज की इमारत न बन सकी तो ज़मीन दाता की ही रहेगी, इसका उत्तरदायित्व मैंने अपने ऊपर लिया।

ज़मीन मिलने पर एक विशाल भवन बनवाकर, दस लाख रुपये से कॉलिज प्रारम्भ करने की अन्तिम आयोजना थी। दस लाख रुपये तो दूर रहे, जैन कालिज सोसाइटी के कार्य्यालय को स्थापित करने के लिये केवल ५०००) की आवश्यकता थी। वह भी पूरी न हुई। दिल्ली वालों ने प्रारम्भिक चिट्ठा भरने से इन्कार कर दिया। सारा परिश्रम व्यर्थ हुआ। हवाई क़िला कागज़ पर ही रह गया।

झांसी शास्त्रार्थ

अप्रैल १६३४ में श्री विश्वम्भर दास गार्गीय ने झांसी में आर्य समाज और जैन समाज में परस्पर धार्मिक शास्त्रार्थ का आयोजन किया। आर्य समाज की ओर से श्री रामचन्द्र देहलवी और जैन समाज की ओर से मैं शास्त्रार्थ के अध्यक्ष निर्वाचित हुए थे, जो वक्ताओं के भाषण का समय, भाषा, विषय, आदि का नियन्त्रण करते थे। जैनियों के प्रतिनिधि पंडित राजेन्द्र कुमार जी मथुरा संघ के अध्यक्ष, और आर्यसमाज के प्रतिनिधि श्री स्वामी कर्मानन्द जी थे। अनुमानतः २००० जनता—हिन्दु-मुसलमान, क्रिस्तान उपस्थित थी।

इसी अवसर पर पंडित धर्मनन्द B. SC. का भाषण जैन मन्दिर में, और मेरा भाषण सार्वजनिक सभा में हुआ। मेरे भाषण के समय श्री घुलेकर जी वकील सभापति थे।

जावरा की जजी

जुलाई १६३७ में, मैंने चीफ़ जज, चीफ़ कोर्ट रियासत जावरा की पदवी का चार्ज लिया।

रियासत जावरा में चीफ़ कोर्ट ही, बीकानेर की प्रकार रियासत का सेशन कोर्ट भी था। चीफ़ जज को निम्नलिखित अधिकार भी प्राप्त थे—

(१) डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट।

(२) डिस्ट्रिक्ट जज।

(३) मुन्सिफ़ी के फ़ैसले के अपील सुनना। मुन्सिफ़ों को मैजिस्ट्रेट दरजा अव्वल के अधिकार भी थे।

(४) २००) तक के मामलों में जज अदालत खफ़ीफ़ा के अधिकार।

(५) ५००) से अधिक की मालियत के मामलों में दिवानी के जज का अधिकार।

(६) जुडीशल सेक्रेट्री।

(७) अफ़सर खज़ाना।

(८) डिस्ट्रिक्ट रजिस्ट्रार।

(६) उन सब अपीलों में जो मेरे फ़ैसले के विरुद्ध नहीं होते थे, जुडीशल कमेटी में मदारूल महाम दीवान साहेब के साथ बैठना। जुडीशल कमेटी का निर्णयपत्र (Judgment) चीफ़ मिनिस्टर की सम्मत्यानुसार मैं ही लिखता था।

(१०) (Extradition) रियासत ग़ैर मुजरिमों के लेनदेन का अधिकार।

(११) शिक्षा विभाग की निगरानी।

(१२) जेल-विभाग।

(१३) म्यूनिसिपल कमेटी के निर्णय के अपील।

मैं यह सब काम आसानी से कर लेता था। न्यायप्रार्थियों को कष्ट नहीं होने पाता था। व्यर्थ समय जब नहीं होता था काम शीघ्रता से हो जाता था। खफ़ीफ़ा के मामले अधिकतर वादी-प्रतिवादी की गवाही से निश्चित हो जाते थे। फौजदारी के मामलों में पुलिस की प्राथमिक रिपोर्ट पर जो संगीन मामलों में शीघ्रातिशीघ्र आजाती है, ध्यान देने से और रोज़नामचा देखते रहने से जल्दी काम निमट जाता है। पुलिस को रिमांड देने में भी छान-बीन करनी उचित है। यदि रिमांड स्टेशन अफ़सर, या तहक़ीकात कुनिन्दा ख़ुद आकर पेश करे, और उससे भले प्रकार जांच करके रिमांड एक दो तीन दिन से अधिक न दिया जावे, तो अन्तिम निर्णय में देरी न हो, और पुलिस का अत्याचर भी बन्द हो जाय।

दीवानी के मामलों में यदि पहली पेशी पर उभय पक्ष के लिखित प्रमाणपत्र एक एक करके जाँच कर लिये जावें, और उनका मामले से सम्बन्धित या असम्बंधित होना निश्चित कर दिया जाय, और वादी-प्रतिवादी का बयान सख्ती के साथ, छानबीन कर सोच समझ कर लिख जाय लिया तो मामला सुलझ जाता है।

नवाब इफ़तिख़ार उद्दीन समझदार, प्रजा प्रतिपालक, प्रजापूज्य थे। नवाब साहेब ईद के दिन सब प्रजा से गले मिलते थे। उनको प्रजा से किञ्चितमात्र भय न था। दरबार आम में सब प्रजा को आने की इजाज़त थी।

जावरा में नदी के पुल के एक किनारे पर हिन्दुओं का मन्दिर था, जहाँ शाम को शंख घड़ियाल बजता था, और सामने के किनारे

पर मस्जिद में अज़ान और नमाज़ उसी समय होती थी। रामलीला उत्सव के साथ नवाब साहेब खुद घोड़े पर चलते थे।

मुझे काम करते हुए कुछ महीने हुए थे कि नवाब साहेब ने विश्राम लेने के आशय से रियासत का सब काम युवराज को दे दिया।

युवराज पुलिस के इन्सपेक्टर जेनरल भी थे। युवराज ने एक व्यक्ति को जो अंग्रेज़ी पुलिस वर्ग से पृथक् कर दिया गया था, कोतवाल बना दिया। उसने एक साधु को जाली सिक्का बनाने के अपराध में चालान कर दिया। मैंने अभियुक्त को निरपराध निश्चित कर छोड़ दिया। फिर उसने तीन ग्रामीण जन को जो शक्कर की मिल में नौकरी के आशय से जावरा आए थे, चोरी के अपराध में चालान कर दिया। वह मुक़दमा भी मैंने छोड़ दिया, और यह निर्णय किया कि चोरी का अपराध झूठा था।

एक गुंडा पठान मुन्सिफ़ की कचहरी से लड़की को भगाने के अपराध में सज़ा पा गया। अपील में मैंने उसे छोड़ दिया। कुछ दिनों बाद पुलिस ने कोतवाली में जो सराफ़ा बाज़ार के दुकानों के ऊपर बनी थीं उस गुण्डे को खम्बे से बंधवाकर ख़ूब पिटवाया, और कहा कि अब जावरा रियासत में दिखाई दिया तो जान से मार डाला जायगा। प्रजा ने कहा कि आज इन्साफ़ हो गया।

जावरा का रहने वाला एक धनिक जैन सेठ पत्नी और दो बेटी छोड़ कर युवावस्था में मर गया। कुछ दिनों बाद उसकी पत्नी का अनुचित सम्बन्ध एक जैन युवक से हो गया, और उस सम्बन्ध के परिणामस्वरूप एक बेटा भी पैदा हुआ। वह सम्बन्ध छिपा नहीं रहा। राजा ने भी दोनों बेटियों को उनके चाचा की संरक्षता में कर दिया जो गाँव में रहता था। बेटियाँ वहां रहने लगीं। और उसकी समस्त चलसम्पति राज के खज़ाने में सुरक्षित रखली गई। कुछ बरस पीछे उसकी पत्नी ने अदालत में दरखास्त पेश की कि उसकी बेटियो

को चचा के घर कष्ट होता है। चचा को आदेश हुआ कि दोनों लड़कियों को कचहरी में पेश करे। लड़कियों ने कोई शारीरिक या मानसिक कष्ट की शिकायत नहीं की। इतना ही कहा की गांव में उनकी पढ़ाई नहीं होती और कुएँ से पानी भरना, रसोई का काम करना पड़ता है। एक कन्या विवाह योग्य हो चली थी। एक योग्य वर से उसके विवाह की स्वीकृति कचहरी से देदी गई। इस सम्बन्ध पर बिरादरी के लोग सम्मिलित हुए। जैन होने के नाते मैंने पंचायत को धन्यवाद दिया। उस समय कन्या की माता ने सब के सामने उपस्थित होकर कहा कि आज के दिन से वह उक्त युवक को जिसके साथ उसका अनुचित सम्बन्ध बरसों से था, अपना भाई समझेगी तथा उस युवक ने भी कहा कि वह उस स्त्री को अपनी बहन तुल्य समझेगा। ऐसा निश्चित वचन कहने पर पंचायत ने स्त्री पुरुष दोनों को जाति में मिलाया। इस असाधारण घटना पर युवराज ने मुझे लम्बा तार भेजा कि मैं इस बात का स्पष्टीकरण करूँ कि मैं जज होकर प्रजा के घरेलू उत्सव में क्यों सम्मिलित हुआ। मैंने उत्तररूप लिख भेजा कि मैं जैन होने के नाते बिरादरी के उत्सव में सम्मिलित हुआ था। और उसही स्पष्टीकरण के साथ अपना त्यागपत्र भी भेज दिया।

मेरी बीकानेर की धारणा और भी दृढ़ हो गई कि देशी रियासतों में काम करना स्पष्टवक्ता, न्याय परायण, सरल व्यवहारी व्यक्ति के लिये कितना दुःसाध्य है।

रतलाम

१६३६ की फ़रवरी तथा मार्च में रतलाम रहा। सेठ गोविन्द राम की एक सूगर मिल जावरा में थी। राज का रुपया सेठ गोविन्द के ऊपर उधार था। नवाब साहेब ने सेठ गोविन्द राम की मिल तथा मकान आदि सम्पत्ति पर बलात्कार अपना अधिकार जमा लिया। इस सम्बन्धी में सामग्री नालिश तैयार करने के लिये मुझको सेठ गोविन्द राम ने रतलाम बुलाया। मेरे लिये मकान, भोजन, नौकर आदि का प्रबन्ध किया और यथोचित वेतन भी दिया। मैंने परिश्रम से मुक़दमे का अंग्रेज़ी मिस्ल तैयार की। टाइप कराई। दिल्ली आया। श्री भूलाभाई देसाई, श्री सर शादीलाल से मिला। अन्ततः सर शादीलाल को मामला सौंप दिया गया। और उन्होंने नवाब साहेब से सेठ का माल और मिल, अँग्रेज़ी political agent को समझा कर दिलवा दिया। रतलाम में मेरा जीवन नियमित रूप था। प्रातः ५-६ मील तक पर्यटन कर आता था। रतलाम में ताज़ियों की भी अच्छी सैर देखी। अन्य मेले भी देखे।

महाराजा साहेब से सेठ गोविन्द रामजी की अच्छी मुलाकात थी। ताश खेला करते थे।

सेठ गोविन्द रामजी के घरेलू बटवारे के मामले में कुछ समय तक जावरा Ginning Mill के अहाते में सुविधापूर्वक रहकर सेठ गोविन्द राम के भतीजे के साथ जो घरेलू विवाद था उसका निबटारा करा दिया। वहाँ भी प्रातः पर्यटन होता था। व्यायाम करता था। नियमित पौष्टिक भोजन करता, आराम से रहता था। जावरा से रतलाम मोटर द्वारा आया। रतलाम से दिल्ली।

कश्मीर की सैर

मई १६४० में बड़ौदा निवासी श्री ताराचन्द पोपटलाल अडलजा,* भानुमती, रमादेवी बेटियों तथा उनकी माता जी के साथ लाहौर से रवाना होकर मैं जम्मू पहुँचा। बस्ती में दीवान करनल विशुनदास जी के यहां ठहर कर दूसरे दिन मोटरबस से हम सब श्रीनगर के लिये रवाना हुए। रात को बनिहाल होटल में रहे। दिन निकले बनिहाल से चले। सारी बस एक लोहे के weigh-bridge पर रेल की मालगाड़ी की तरह तोली गई। असबाब तोला गया। मुसाफिरों की जाँच हुई। २० मील तक पीर पंजाल पर्वत श्रेणी की घूमती हुई सड़क पर, हरे भरे उद्यानों, पानी भरे धान के खेतों, चुनार, सफ़ेदा, poplar वृक्षों के रंग बिरंगे फूलों का दृश्य देखते चढ़ते चले। दूरस्थ पहाड़ों पर धूप में बर्फ़ चमक रही थी। २२० फ़ीट की गुफ़ा में से गुज़रने पर चढ़ाई समाप्त हुई। मोटर ठहरी। सब मुसाफिर उतरे। बर्फ़ का स्वाद लिया। गोले बनाए। फिर २० मील की उतराई पर उसी प्रकार दृश्य देखते उतरते चले। रास्ते में वरनाग पड़ता है। "वर" गांव को और "नाग" चश्मे, झरने, जलश्रोत को कहते हैं। यह स्थान झेलम नदी का मुख द्वार है। भूगर्भ से जल ८५ घन फ़ीट प्रति मिनिट की तीव्र गति से निकल कर एक अष्टकोण पक्के कुण्ड में एकत्र होता है। यह कुण्ड १०२६ हिजरी में हैदर कारीगर ने जहांगीर बादशाह के राज्य के १२ वें साल में बनाया था।

---

* अडलजा जी बड़ौदा के उद्योग-विभाग के प्रधान हैं। १६३६-३७ के जाड़ों में लखनऊ में एक बड़ी अखिल-भारतवर्षीय प्रदर्शनी हुई। उसमें श्री अडलजा जी बड़ौदा-शिविर के अध्यक्ष थे। मेरे यहाँ ठहरे थे। तभी से घनिष्टता बढ़ गई।

नीले चमकदार पानी में मछलियाँ तैर रही थीं। चारों तरफ़ पक्की ऊंची दिवार बनी हुई है। दिवारों में ताक और ताकों में कहीं कहीं पंडो ने मूर्तियां रखकर पैसे कमाने का व्यापार कर लिया है।

कुण्ड से जल-प्रवाह नाले रूप चलता है। २०-२५ गज़ चलकर ४-५ गज़ नीचे श्वेत झाग बनकर गिरता है।

आगे ४५ मील तक मोटरबस समतल भूमि पर चलती है। कहीं-कहीं झेलम सड़क के बराबर बहती नज़र पड़ती है। पाट बहुत चौड़ा हो जाता है।

मार्ग में केसर की क्यारियाँ, प्रफुल्लित सरसों के खेत, बादाम, अखरोट, शहतूत, जङ्गली घास के लाल फूल, सफ़ेद चुनार के वृक्ष आदि प्राकृतिक दृश्य का आनन्द आता है।

पानी में बेंत की वेल (willow creepers) और पहाड़ों पर वृक्षश्रेणी का विलक्षण दृश्य था।

अमीरकदल नाम के पहले पुल के पास मोटर रुकी। पुल को कदल कहते हैं। ऐसे ७ पुल झेलम नदी के ऊपर बने हैं। झेलम के दोनों किनारों पर श्रीनगर बसा है।

श्री जगत प्रसाद जी M. A., C. I. E. की विशाल कोठी पर ठहरे। रियासत की तरफ़ से सजी हुई है। अतिथियों के कमरे भी मेज़, कुरसी, पलंग, अलमारी, आइने, कमोड, मुँह धोने का सामान आदि से सजे हुए हैं। उद्यान में रंग बिरंगे महकीले गुलाब आदि फूलों के, और cherry आदि फलों के वृक्ष हैं। कोठी में इतनी जगह है कि आदमी घूमते-घूमते थक जाय।

श्री फूलचन्द मोघा की कोठी पर भी एक दिन मैं प्रीतिभोज में निमन्त्रित हुआ। वह कोठी भी विशाल तथा राज़ की तरफ़ से सुसज्जित है।

ऐसे ही सब हाकिमों के लिये राज से सुसज्जित कोठियां हैं।

पहले पुल की पूर्व दिशा में सिविल लाइन्स, अंग्रेज़ी बस्ती, हाकिमों की कोठियाँ, सरकारी दफ़्तर, डाकखाना, अंग्रेज़ी सामान की दुकानें हैं। साफ़ सुथरा स्थान है। पुल के उस पार हिन्दुस्तानी बस्ती है।

खाद्य पदार्थ सब स्वादिष्ट और सस्ते थे। घी १) सेर, नमकीन १) सेर, मक्खन २) सेर, दूध ॥) सेर मिलता था। अखरोट पैसे के चार, लम्बी मटर की फली जिसमें काबुली चने जैसे नौ मीठे दाने थे चार पैसे सेर, Cherry, Strawberry शाक-फल सब सस्ते थे। प्रजा निर्धन, भली,सीधी है। कुली ≋) रोज़ पर पशमीने की मलाई की मेहनत करते हैं। प्रजा का शरीर सुन्दर, बलिष्ट, लम्बा, चौड़ा, गोरे रंग का होता है। औरतें बच्चों को बिठाकर खुद बैठी हुई दूध पिलाती हैं।

लकड़ी के तख्तों पर मट्टी डाल कर खरबूज़े, तरबूज़, लौकी, कद्दू आदि की खेती "डाल" झील में करते हैं। यह झील १० वर्ग मील में है। रहने की नौका (शिकारे) जिनमें सोने का कमरा, दफ़्तर, बैठने का कमरा, स्नानागार आदि सब सुसज्जित हैं, झेलम में घूमते फिरते हैं। किराये के घर सस्ते थे।

अखरोट की लकड़ी पर खुदाई का बारीक काम कारीगर बनाते हैं, कागज के कलमदान आदि भी सुन्दर बनते हैं। ऊन का कारखाना भी देखा, स्त्रियां ऊन का सूत चरखे पर कात रही थीं। सुई से बारीक काम फूल-पत्ती मर्द करते हैं।

अंग्रेज़ तो काशमीर को Switzerland कहते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से, सुविधा, आराम के ख्याल से सस्ता अच्छा स्थान है।

हशमतुल्ला खां लखनवी वजीफादार-सरकार द्वारा सम्पादित तवारीख़-ए-जम्मू वा काशमीर से मालूम हुआ कि सन् १००० में श्रीनगर राजा प्रवरसेन ने बसाया। १४१७ में जैनुल आबदीन ने आक्रमण किया।

राजा रणजीत सिंह ने १८१६ में पठानों से कशमीर जीत लिया। १८३६ में राजा रणजीत सिंह के देहान्त पर रानी जिन्दन को अँग्रेजों ने नजरबन्द कर दिया। उनके बेटे कुमार दिलीपसिंह को चार लाख सालाना पेन्शन देकर विलायत भेज दिया। १८४६ को गुलाब सिंह ने अंग्रेजों से एक करोड़ में कशमीर मोल ले लिया। १८५७ से १८८५ तक उनके बेटे रणवीर सिंह राज्य करते रहे। १८८५ से १६२५ तक राजा प्रताप सिंह और १६२५ से राजा हरीसिंह राज्य कर रहे हैं। हशमतुल्ला खां १८६४ में गिलगट, १८६५ में चितराल, १८६८ में कशमीर में अंग्रेज़ सरकार के एजेन्ट थे।

उच्च पदाधिकारी अधिकतर मुसलमान हैं।

कशमीर की घाटी समतल भूमि ५० मील से ३० मील वर्ग है। एक अंग्रेज ने लिखा है :

"In no country in the world are there such maginificent masses of snow-clad mountains. The giant Alps would here look like dwarfs."

मैं श्रीनगर में करीब एक महीने रहा। सुबह, शाम और दिन में भी मीलों घूमता था। प्रातःकाल तो अधिकतर शङ्कराचार्य पर्वत पर चढ़ता उतरता था। उसकी चोटी पर पक्का चबूतरा बना है। उस पर एक गुमटी के अन्दर विशाल शिवलिङ्ग गज़ भर ऊँचा, तीन गज़ गोलाई में चिकने रंग के पत्थर का है। प्रदक्षिणा के वास्ते आध गज़ चौड़ा स्थान है। पुजारी नित्य नीचे से जल पुष्प आदि लेकर पूजा करने आता है। पहाड़ की ऊँचाई १००० फ़ीट है। यह स्थान दूर से दिखाई देता है। मुसलमान इसको तख्त-ए-सुलेमान कहते हैं।

कशमीर की प्राकृतिक शोभा, स्वास्थ्य-प्रद जलवायु, हृदयग्राहकता के सम्बन्ध में कहा गया है :

हर सोख्ता जाने कि ब-कशमीर दर आयद।
गर मुर्ग़-ए-कबाबस्त ब-बाल-ओ-पर आयद।

अर्थात् यदि कोई जी जला कशमीर में आ जाय तो, यदि वह भुना हुआ मुर्ग़ा ही क्यों न हो, उसके बाल-पर निकल आवें।

वहाँ के दर्शनीय स्थान के सम्बन्ध में कहा गया है कि :—

सुबह दर बाग़-ए निशात, ओ शाम दर बाग़-ए नसीम।
शाला मार, ओ लाला ज़ारस्त, सैर कश्मीरस्त, हमीं॥

अर्थात्—प्रातः काल निशात बाग में
सायं काल नसीम बाग में
शालामार पुष्पोद्यान में
काश्मीर की सैर इसी में

कशमीर राज्य का प्रदर्शनीय संग्रहालय एक छोटे अंधेरे से मकान में है। वहाँ प्राचीन समय के हथियार, महाराजा रणजीतसिंह की तलवार, पुराने सिक्के, खुदाई में निकली हुई मूर्तियां हैं। बारीक सुई के काम का एक बड़ा सा पशमीने का शाल है, जिस पर डल झील, शाही चश्मा, निशात बाग, शालामार, आदि सुन्दर दृश्य कढ़े हुए हैं। यह शॉल ग़रीबी के कारण किसी अमीर घराने के व्यक्ति ने ३२६) में बेचदी।

३० मई को तरुण तपस्वी वीर जवाहर और सरहदी गांधी अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ छत्तावल ७ वें पुल से अमीरकदल पहले पुल तक ३ मील जेहलम नदी से श्रीनगर में आए। तीन किशती साथ में थी, दर्शकों के ७००-८०० शिकारे भी चल रहे थे। इतना समूह शिकारों का जेहलम में पहले कभी नहीं दिखाई पड़ा। ३ बजे से दरिया के दोनों किनारों पर सब मकानों की ३-४ मंजिल, ढलवां टीन, कच्ची या फूस की छतें सब ठसाठस दर्शकों से भरी थीं।

हनुमान मन्दिर के घाट पर Musical Band तथा Guard of Honour ने जयकार° शब्दध्वनि से स्वागत किया। मोटर में जलूस सारे शहर में घूमा, रास्ते बन्द हो गए थे।

३१मई की शाम को ७ बजे हजूरी बाग के मैदान में आम व्याख्यानों की आयोजना हुई। मैं चबूतरे पर वीर जवाहर के पास ही बैठा था। बीरबल सहानी और उनके पिता रुचिराय सहानी मेरे पास बैठे थे। लम्बे-चौड़े शानदार पठान ने १० मिनट के भाषण में कहा कि "मैं बोलना नहीं पसन्द करता, कार्यसिद्धि काम करने से होती है। विप्लव, इनकलाब अवश्य होवेगा, वह सहना पड़ेगा। उसके सहने के लिये सबको तय्यार रहना चाहिये। मैं हिन्दुस्तान का पड़ोसी हूं। हिन्दुस्तान एक है।"

वीर जवाहर का भाषण पूरे घंटा भर ९ से १० बजे रात तक हुआ। सारांश यह थाः—

"मैं चार मरतबा सैर के लिये कशमीर आया, अब की पाँचवीं मरतबा काम के लिये। आखिर मरतबा सन् १९१७ में आया था। मैं बड़े काम में लग गया, मामूली ज़िन्दगी गुज़ारना मुश्किल था। काम करते करते मर जाना मुझे पसन्द था। काम में सफलता हुई। मेरी क़ुरबानी से नहीं, मेरा तो शौक़ था। उन लाखों अदमियों के सहयोग से, कष्टसहन से, त्याग से सफलता हुई जिनको आप हम नहीं जानते। वह उठे, कौम उठी, भारत उठा, उसके साथ मैं भी उठा, और लोग भी उठे। महात्मा गाँधी ने कुचले हुए, दबे हुए, अनपढ़, भूखे, कमज़ोर किसान को अपनी फ़ौज का सिपाही बनाया। उसकी कमर सीधी, सर ऊँचा कर दिया। अब वह समझता है कि यह ऊँचे ओहदेदार, लम्बी तनख्वाह वाले, यह शान-शौकत सब उसी किसान की मेहनत का नतीजा है, उसी की कमाई से हो रहा है। उस किसान ने

अपनी ग़रीबी में, कमजोरी में, बड़ी ताक़त से शहंशाही का मुक़ाबला किया और सफलता के साथ।

भारत की आज़ादी में रुकावट डालने वाले हमारे भाई हैं। जो पहले तो साफ़ कहते थे कि हमें अँग्रेजी राज्य की छत्रछाया में रहना है। अब यह बात कौन सुनेगा। इसलिये कहते हैं कि हम स्वराज्य चाहते हैं किन्तु अँग्रेजों का साथ हम नहीं छोड़ सकते। यह लोग शहंशाही के ग़ुलाम हैं, शहंशाही से रुपया पाते हैं, आराम-इज़्ज़त पाते हैं, स्वार्थ में फंसे हैं, किसानों के कन्धों पर लदे हैं। दुनिया बदल रही है, शहंशाही का खात्मा हो रहा है, हिन्दुस्तान में भी शहंशाही नहीं रह सकती। आप मुझे बेताज का बादशाह कहते हैं। मुझे दुख होता है। आप के दिमाग़ से "बादशाही" का खयाल नहीं गया। हिन्दुस्तानी, हिन्दू-मुसलमान सब मिलकर बादशाह होंगे, राज्य करेंगे! धर्म का कोई सम्बन्ध इस प्रश्न से नहीं है। यह केवल राष्ट्रीय प्रश्न है। सब हिन्दुस्तानियों को पूरे, बराबर, धार्मिक, समाजिक, नागरिक अधिकार हासिल होंगे। न हिन्दू राज्य होगा, न मुसलिम राज्य। हम एक शहंशाही को तोड़कर दूसरी ग़ुलामी में नहीं पड़ेंगे।

भारत इतना बड़ा देश है, कि कोई विदेशी यहाँ रह नहीं सकता। यदि हम आप सब मर जावें, तब भी जो यहाँ रहेगा, वह भारतीय होगा। मुसलमान आए, बसे, भारतीय हो गए। सर इक़बाल के गीत में यही है, सर सैयद अहमद यही कहते थे। भारत विभाजित, तक़सीम करने का खयाल भद्दा, बेहूदा है। यह हो ही नहीं सकता। भारत एक बड़ा राज्य बन कर रहेगा। उस बड़े राज्य का मुक़ाबला कौन करेगा। तक़सीम के मानी हलाकत, ख़ुदकुशी है।"

डाक्टर बेनी प्रसाद प्रोफ़ेसर अलाहाबाद युनिवर्सिटी, डाक्टर ताराचन्द प्रोफ़ेसर क्रिश्चियन कालिज कानपुर, डाक्टर अब्दुल हमीद

लखनऊ मेडिकल कॉलिज, डाक्टर चंद्रिका प्रसाद मिश्र, ऐंड्रूज़ दुवे, मिस दुवे, डाक्टर मथुरा दास मोघावाले, लक्ष्मीचन्द्र I. C. S., मेरठ के गोयल साहब, सर शादीलाल सब इस सार्वजनिक सभा में मिले।

श्रीनगर से बाहर जो रमणीक स्थान हैं, उनका विस्तारपूर्वक वर्णन अनेकों पुस्तकों में है। यहाँ संक्षेपतः संकेत-रूप लिख देना ही पर्याप्त होगा।

(१) वूलर झील

वूलर (Wooler) झील मीलों तक चली गई है। पामपुर ग्राम की भूमि ज्वालामुखी होने से गरम लाल रंग की है। यहाँ केशर की खेती होती है। केशर की जड़ प्याज़ की गांठ जैसी बो दी जाती है। २० दिन में सुई जैसे केशर के पराग निकल आते हैं। लाली और सुगन्ध सब ओर फैल जाती है।

(२) शालामार

शालामार बाग़ जहांगीर ने १६२० में मनोरंजनार्थ बनवाया था। ६०० गज़ की लम्बाई में पांच खन (मंज़िल) उतरते चढ़ते ७० गज़ से २०० गज़ तक चौड़े तालाबों में फ़ुहारे चलते रहते हैं। ऊपर के सरोवर से नीचे वाले में जल झाल के रूप में गिरता है। सबसे ऊपर जहांगीर के समय की २४ गज़ की चौकोर पत्थर की बारहदरी है। उसके चारो तरफ़ ५१+५१+३०+३०=१६२ फ़ुहारे चलते रहते हैं। नीचे खनों में फ़ुहारे कम होते गये हैं। पानी की चादर दीवार पर से गिरती है। उस दीवार में दीपालय बने हुए हैं। उनमें रंग बिरंगी बिजली की कुप्पियाँ लगी हैं। फूलों के चमन, सर्प के वृक्ष, पत्तों की झाड़ियां विविध आकार में तराशी हुई सुशोभित हैं। यात्री घास के मखमली फ़र्श पर भोजन करते, आराम करते, दिल बहलाते है। लाल-

पीले खेत, विविध वर्ण के पांच पांच इंच के गुलाब के फूल खिले रहते हैं। चारों तरफ़ गढ़ की सी ऊंची कंगूरेदार दीवार पर गुलाब की बेल चढ़ी है। फलों के उद्यान भी हैं। इतवार के दिन रात तक मेला लगा रहता है। एक रविवार के दिन कुछ तुकबंदी निम्नप्रकार की थी :—

डल का नज़ारा और है साया चुनार का
दुनियां में सानी है नहीं इस लालाज़ार का ॥
पानी हयात बख्श है, सब्ज़ा निगाह बख्श
यक रोज़ शबा का है यहाँ पर निशात बख्श ॥

* * *

ग़ैर मुल्कों में ऐसी सैर कहाँ
छोड़कर हिन्द और जाएँ कहाँ ॥
गोशा गोश यहाँ परस्तां है
क़ाफ़ का नक़शा यहाँ नुमाया है ॥
फ़र्क़ गर पाया इतना ही पाया
वह फ़िसाना, यह वाक़आ पाया ॥
क़ाफ़ की परियाँ सुनते आए हैं
याँ परी को देख पाए हैं ॥
चाह ज़मज़म का नाम ही था सुना
शाही चशमा तो हमने देख लिया ॥
बहता पानी है, या रवां इकसीर
हर मरज़ की है यह दवा इकसीर ॥
और क़ीमत है इसकी यां आना
मज़ा ले ले के पानी पी जाना ॥

(३) चश्मा शाही

चश्मा शाही में तीन मंज़िल २०,२० सीढ़ियें चढ़ कर स्रोत से चिलमचीनुमा बर्तन में जल निरन्तर बहता रहता है। यह जल पाचक

तथा स्वास्थ्यप्रद है। अनेकों रोगी दिन भर इसके उद्यान में लेटे और जलपान करते रहते हैं।

(४) गुलमर्ग; खिल्लन मर्ग

रमेश नरेश* गुजराती भाइयों के साथ प्रातः श्रीनगर से नन्दा बस में रवाना हुआ, तुंगमर्ग से घोड़े किराये पर लिये। गुलमर्ग खुला मैदान, छोटी बस्ती है। वहां भोजन करके खिल्लन मर्ग को चले। पहाड़ी रास्ता तंग किचड़ैला है। संगरेजे बिखरे पड़े हैं। एक छोटा नाला भी साथ साथ चलता है। खिलन मर्ग के मैदान में बर्फ़ ज़मीन पर फैली पड़ी थी। वहां से २७००० फ़ीट ऊँचे नंगा पर्वत, १६०००फ़ीट ऊँचे हर मुख, ६०००फ़ीट ऊँचे पीर पंजाल, और अमरनाथ पर्वत श्रेणी का सुन्दर दृश्य नज़र पड़ता है।

(५) अछैवल

एक चुनार के वृक्ष का तना ५४ फ़ीट है। उसकी छाया में ५०० आदमी बैठ सकते हैं। अछैवल में मेला था। पुलिस तथा स्वयं सेवक भीड़ का प्रबन्ध कर रहे थे। एक दफ़ा अन्दर जाने का एक दफ़ा बाहर आने का रास्ता देते थे। दरजनों सरोवरों में रंग बिरंगी मछली तैर रही थीं। ८६ फ़ुहारे चल रहे थे। सोते का पानी स्वादिष्ट था। वहां भोजन किया। घरेलु धन्धों की प्रदर्शिनी भी थी। शहद बनाने का कारखाना भी था। रानी मक्खी एक बार मैथुन से प्रति दिन चार मास तक हज़ारों अण्डे देती रहती है। मक्खा (drone-bee) मैथुन उपरान्त तुरन्त मर जाता है।

अनन्त नाग में भी मेला था। मार्तण्ड मन्दिर परपड़ों

---

* जीवन राम गनपति शंकर Sanitary Superintendent, B. B. C. I. Ry., Ahmadabad, के सुपुत्र।

का ज़ोर है। दो लम्बी गुफा हैं। २०० फ़ीट तक मशाल लेकर जा सकते हैं।

(६) पहलगाम

पहलगाम होटल में नदी के किनारे ठहरे। सूरज राम पंडा गोविन्द राम का एजेंट साथ गया। उसकी बही में दिल्ली वालों के हस्ताक्षर थे। १६१५, १६२७ में राय बहादुर सुल्तानसिंह, सुशीला, रघुबीरसिंह, प्रतापसिंह के, ३-८-१६२६ को श्री जगतप्रसाद जी के, श्री चम्पतराय बैरिस्टर और उनकी बहन के भी थे।

वहाँ एक खुले मैदान में लोग डेरे लगा कर रहते हैं। डेरे और ज़मीन किराये पर मिलते हैं।

देवलाली और धूलिया

मेरे तृतीय पुत्र वीर नन्दन ने विवाह के बाद मेरठ में मेरे जंवाई श्रीयुत् पद्म सिंह जैनी के साथ वकालत शुरू की। कुछ समय काम करने के बाद उसको वकालत का व्यवसाय विशेष रुचिकर सिद्ध नहीं हुआ। वह सेना में भरती होकर देवलाली ज़िला नासिक में नियुक्त हो गया।

जनवरी १९४१ में नन्दन ने मुझे और अपनी पत्नी आशा को पत्र लिखा कि जो इटली के सिपाही क़ैदी होकर देवलाली आ रहे हैं उनके Prisoners of War Camp का वह अध्यक्ष निर्वाचित होने वाला है। इस हर्ष के समाचार के साथ उसने सरकारी विज्ञप्ति जो टाइप की हुई थी, उसकी एक carbon कापी भी रख दी और आशा के नाम का लिफ़ाफ़ा बन्द करके despatcher की tray में डाल दिया। Despatcher एक मुसलमान अकील अहमद था, जिससे नन्दन की तनातनी की बातें कुछ दिन पहले हो चुकी थीं। अकील अहमद ने वह लिफ़ाफ़ा अपनी जेब में रख लिया और Conductor Berwick को दे दिया। उसने Adjutant Captain N. S. Holmes को दे दिया और Capt. Holmes ने Col. G. Howson को दे दिया। सरकारी विज्ञप्ति पर 'most secret' लिखा था। ८ जनवरी को नन्दन का बयान Major Thomas ने लिया। नन्दन ने सच-सच कह दिया कि चिट्ठी उसने लिखी थी, और सरकारी विज्ञप्ति की कापी जो बेकार थी, उसने चिट्ठी में रख दी थी। इसी बात पर नन्दन क़ैद कर दिया गया। इस घटना से सब सिपाही थर्रा उठे। एक आदमी नासिक भेज कर मुझको तुरन्त तार दिलवाया "Vir Nandan under arrest. Intervene authorities for release. Friends." यह तार मुझे ८ जनवरी

की रात को मिला, मैं कर्त्तव्य विमूढ़ होगया। घबराहट में तुरन्त रवाना हुआ। १० बजे की रेल छूटने वाली थी। Reservation कराना असम्भव था। देवलाली का सीधा टिकट भी नहीं मिला। झाँसी का टिकट कटा कर रेल में बैठ गया। रास्ते भर तार के अक्षर मोटे होकर आँखों के सामने डरा रहे थे। नींद का कोसों पता न था। झाँसी में वर्षा हो रही थी। देर में मुश्किल से बीना तक का टिकट मिला। देवलाली का टिकट कौन बनाकर दे। बीना में फिर टिकट की मुसीबत पड़ी। टिकट बाबू बदमिजाज़ था। ९ जनवरी का दिन अत्यन्त खेद में कटा, रात पहाड़ हो गई, काटे नहीं कटती थी। जितने पाठ याद थे, सब कई दफ़ा पढ़ गया, जाप भी कई दफ़ा कर गया। चित्त व्याकुल था। तार के अक्षर आँखों के सामने से नहीं हटते थे।

१० जनवरी को प्रातः २॥ बजे देवलाली पहुँचा। स्टेशन पर कुछ युवक, दो-तीन सिपाही उतरे। परन्तु किसी ने मेरी सहायता नहीं की, मैं अकेला रह गया। एक मज़दूर पर असबाब लिये बाजार में क़रीब दो मील फिर कर स्टेशन पर वापस आ गया; सब लोग सोए पड़े थे, कोई धर्मशाला आदि नहीं मिली। Coronation Hotel में भी कोई नहीं बोला। मुसाफ़िरखाने की बैंच पर सामान रख कर हजामत बनाई कपड़े बदले। असबाब पारसल घर में रक्खा। Captain Taylor कुछ गोरे सिपाहियों को लेने स्टेशन पर आये थे। उन्होंने कृपा करके पल्टन की मोटर बस पर बिठा लिया और Rest Camp Barrack No. 8 पर पहुँचा दिया। वहाँ से पूछ-ताछ करता हुआ ७ बजे Col. Howson की कोठी पर पहुँचा। उसने कहा "I am very sorry. The report is gone to Bombay. The matter is out of my hands." राज नरायण लाल Telephone Exchange Clerk अच्छा आदमी था, उसने मुझे आश्रय दिया।

वहाँ से फिर Rest Camp और फिर Camp No. 6 में Major Stewart Gratton के पास Col. Howson का खत लेकर पहुँचा। वह भला आदमी था उसने नन्दन को Quarter Guard से बुलवा दिया। Major Gratton ने अंग्रेजी में बातें करने की इजाज़त दी। नन्दन धैर्य धरे था। मुख पर मुस्कराहट थी। मगर मेरा जी टूट गया। धैर्य जाता रहा। आँखें भर आईं। गला रुंध गया। दृश्य हृदयविदारक था। कुछ बातें हुईं, फिर नन्दन वापस चला गया। ११ बजे, २ बजे, ७ बजे शाम Col. Howson से मैं मिला। मगर सब व्यर्थ।

१२ तारीख को Conductor Berwick से नक़ल गवाहों की मिल गई। Draft petition तैयार की। रात की ट्रेन से बम्बई रवाना हुआ। बड़ी भीड़ थी। एक पल भर नहीं सो सका।

१३ जनवरी को ६ बजे प्रातः बम्बई पहुँच गया। हीराबाग धर्मशाला में ठहरा। तुरन्त स्नान कर Small Cause Court पहुँचा। वहाँ एक typist से अर्ज़ी की तीन प्रतिलिपि कराके एक General Officer Commanding को, दूसरी Lt. Baker को और तीसरी Conductor Berwick को जवाबी लिफ़ाफ़े रख कर भेजीं। वहाँ से Dictrict Head Quarters, Colaba पहुँचा। W. C. Chakarvarty Overseer Military Works के नाम एक पत्र राजनरायण लाल ने दिया था। उन्होंने कृपा करके Lt. Baker Station Staff Officer से मुलाक़ात कराई। मुझे १६-१-४१ के लिये पलटन की हद में जाने का परवाना मिल गया।

१६ जनवरी को Army Head Quarters गया। Lt. Baker Station Staff Officer से मिला। General officer Commanding बाहर थे। मेरी दरख़ास्त पर कोई हुक्म नहीं हुआ।

१३ जनवरी से २६ जनवरी तक बम्बई में रहा। प्रातः योगासन करने Marine Lines पर जाता था। Dr. I. G. Gune ने वहाँ योगिक Health Centre स्थापित कर रक्खा था। जोशी महोदय योगासन सिखलाते थे। ऊपर बड़े हाल में फ़र्श बिछा हुआ था। १५-२० व्यक्ति बराबर योगासन करते रहते थे।

शाम को Marine Lines पर समुद्र के किनारे गश्त करता था। चौड़ी दीवार समुद्र तठ पर है जिस पर आदमी लेट सकता है; फिर चौड़ी सड़क पैदल चलने वालों के लिये, फिर सब्ज़ झाड़ी, फिर मोटर की चौड़ी सड़क। दूसरी तरफ़ भी इसी तरह झाड़ी, पैदल की सड़क और फिर मोटर की चौड़ी सड़क और पटरी है। ६-७-८ खन वाले मकानों की पंक्ति चली गई है, जो सब अमरकिन ढंग से बने हुए Flats हैं। इंगलैन्ड, अमरीका का दृश्य है।

२६ जनवरी को स्वतन्त्रता दिवस का जलूस देखा। क़रीब एक मील लम्बा जलूस था। पैदल गया—साथ-साथ, आगे-पीछे। बड़ी भीड़ थी। Trams, buses, motors—सब प्रकार के वाहन बन्द हो गये थे।

यों तो चौपाटी के रेत में समुद्र तट पर रोज मेला लगा रहता है। उस दिन भूमि पर बड़ी दूर तक लोग बैठे हुए थे। ध्वनिप्रसारक यन्त्र लगा था। श्रीमती सरोजनी नायडू ने जनता को शपथ दिलाया और ओजपूर्ण भाषण दिया। थोड़े समय के लिये नन्दन की आपत्ति की ओर से ध्यान हट गया।

परन्तु २७ जनवरी को देवलाली के एक सज्जन का पत्र मिला कि नन्दन का General Court Martial होगा। पत्र पाते ही तय्यारी करके १२:४० की रेल से मैं चल पड़ा। ११ बजे स्टेशन पर पहुँच गया था। रेल पर ही भोजन किया। ५:३० बजे शाम देवलाली पहुँच गया।

२८ जनवरी को प्रातः स्नान करके नन्दन से मिला। नन्दन खुश था। नोट तैयार कर रक्खे थे। अच्छे लिखे थे। राज नरायन लाल ने अपना पलङ्ग, अपना कमरा मुझे दे दिया। उसका ससुर अपनी स्त्री को और छोटी बेटी लक्ष्मी को ले कर अपने घर वापस चला गया था। राज नरायन अन्दर वाले कमरे में तखत पर, बीबी बच्चे समेत सो रहता था। इतना निःस्वार्थी परोपकारी आदमी देखने में कम आया। वह आत्मबल पर काम करने वाला है। उसने डाकखाने के दरवाजे पर बैठ कर ख़त, मनीआर्डर लिख कर रोटी कमाई है।

नन्दन ने brief अच्छा तैयार कर लिया। फ़रवरी १ से १२ तक बराबर नन्दन के साथ तैयारी मुक़द्दमा करता रहा। एक दिन राज नरायन लाल की अपील Post Master General को लिखी। वह सफल हुआ, राजनरायन की तन्ख्वाह बढ़ गई।

Times of India की पिछली प्रति जिसमें Italian prisoners के आने की विज्ञप्ति छपी थी तलाश करके प्राप्त कर ली। १२ जुलाई को Judge-Advocate Major Grant नन्दन से, मुझसे Quarter Guard में मिलने आया।

१३ फ़रवरी को ९ बजे प्रातः घर से रवाना हो गया। ९: ४० पर Garrison Theatre पहुँच गया जहाँ General Court Martial होने वाला था। पाँच अंग्रेज़ कोर्ट मारशल के सदस्य थे। Major Thomas prosecutor थे। दो मेज़ उनके और मेरे लिये अलग-अलग पिन, पेंसिल, क़लम, काग़ज़, रोशनाई से सुसज्जित लगी हुई थीं। अकील अहमद के सिवाय और किसी ने झूठी गवाही नहीं दी।

१४ तारीख़ को २ घन्टे बहस रही। यह मेरे व्यवसायिक जीवन की अन्तिम बहस थी परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली। अन्त में मौखिक बहस का सारांश टाइप कराकर सदस्यों को दे दिया।

कोर्ट मारशल विधानानुसार .फ़ैसला यदि अभियुक्त के पक्ष में होता है तो तुरन्त सुना दिया जाता है। नहीं तो जब तक General Officer Commanding उसको स्वीकृत नहीं करलेता, नहीं सुनाया जाता। Major Grant Judge-Advocate के मौनस्थ रहने से यह तो अनुमान हो गया था कि .फ़ैसला नन्दन के विरुद्ध ही होगा। किन्तु आशा थी कि शायद dismisal from the army का हुक्म होगा और मैं अपने बच्चे को सही सलामत लेकर घर वापस चला जाऊँगा।

कोर्ट के हुक्म के इन्तज़ार में १०-१५ दिन तक चित्त खेद-खिन्न रहा। बाज़ार आते जाते समय इटली के कैदियों का दृश्य नज़र पड़ता था। उनकी बेबसी, सैकड़ों की लागत की घड़ी, कोट, ओवर कोट आदि २-४-६ रु० में बेच रहे थे, बाज़ार वाले .खूब घर भर रहे थे। एक इटैलियन कैदी के साथ अंग्रेजी सिपाही का अमानुषिक दुर्व्यवहार देखा, बिना कारण उसको डन्डों की मार सहनी पड़ी।

अन्य हवालाती गोरों का दृश्य भी देखा था। एक गोरा प्यासा था, पैर में छाले थे, कूच करते हुए वह पंक्ति से पिछड़ गया। इस अपराध में डिसट्रिक कोर्ट मार्शल हो गया। वह चुप चाप पड़ा रहता था। अकेला ताश खेला करता था। तसवीरें अखबारों में से काटता रहता था। नन्दन के पलङ्ग के पास उसका पलङ्ग था।

८-१० दिन नन्दन हवालात में रहा। वहाँ नारकीय दृश्य था। तीन और कैदी थे। नन्दन को कच्चा कैदी कहते थे। Sergeant Grey हमेशा बदसलूकी से पेश आता था—"प्रातः उठो! Kit बनाओ! बूट चढ़ाओ! पलङ्ग पर मत बैठो! जमीन पर बैठो!"

Court martial के सदस्य तो पहले से ही अभियुक्त के विरुद्ध में अपनी सम्मति स्थिर किये हुये थे। समय का वातावरण ही ऐसा था। द्वितीय विश्व-व्यापी युद्ध की भीषणता से अङ्गरेज़ घबड़ा रहे थे। हिटलर की विजय हो रही थी। नेताजी सुभाष बोस गत देश में आज़ाद हिन्द

भारतीय सेना का संगठन कर रहे थे। प्रत्येक अंगरेज प्रत्येक हिन्दुस्तानी के सन्देह की दृष्टि से देखता था, विशेष कर अङ्गरेज़ी पढ़े उच्च घराने के युवक को। परिणामतः कोर्ट मारशल ने नन्दन को ७ बरस की कैद की सज़ा लिखदी यद्यपि फौजी विधानानुसार दण्ड की अवधि तीन वर्ष ही थी।

२६ फ़रवरी को Captain Holmes Quarter Guard आये। नन्दन से कहा शायद आज रजिस्टरी से खबर आवे। नन्दन आतुर रहा। ३ बजे क्लर्क न्यूटन मेरे पास आया। कहा कि Adjutant Holmes ने बुलाया है। मैं तुरन्त रवाना हुआ। रास्ते में नन्दन ने मुझे जाता हुआ देखकर पुकारा। मगर मैंने उसकी आवाज़ नहीं सुनी। आतुरता में सीधा चला गया। मुझे नहीं मालूम था कि Adjutant Holmes नन्दन से कह गया था कि कोर्ट ने ७ वर्ष की सज़ा दी थी; लेकिन Confirming Authority ने एक वर्ष की करदी है। Holmes ने मुझे मिस्ल देदी। हिम्मत करके मैंने पूरी record की प्रतिलिपि करली। Holmes ने कहा "धूलिया भेजा जायगा। If I were in trouble, my father would not have done so much for me."

फ़रवरी २६ को राजनरायन लाल से Suspension of Sentence की अर्जी टाइप कराके ले गया। नन्दन से दस्तखत कराये। आज नन्दन की हिम्मत टूट गई। अखों में आँसू भर आये। आँसू पी जाने का प्रयत्न करता था। मगर रह-रह कर आँसू भर आते थे। Suspension of Sentence के लिये Col. Howson ने सिफ़ारिश नहीं की। नन्दन Rest Camp के Quarter Guard में भेजा गया। वहाँ Newzealander संत्री नियुक्त थे।

फरवरी २७ को Petition of Appeal की तीन प्रति राजनरायन लाल ने तैयार करके नन्दन के दस्तख़त से पेश करदीं, मगर परिणाम

कुछ न हुआ। ६॥ बजे नन्दन से बिदाई ली। Holmes ने वादा कर लिया "He will be well-treated, with all possible consideration". आधी रात के राजनरायन लाल के साथ धूलिया के रवाना हुआ। रेल में भीड़ थी। एक समय भी न राजनरायन सोया, न मैं। बड़ी कष्टप्रद रात थी।

फ़रवरी २८ शुक्रवार ८॥ बजे धूलिया पहुँचे। Mail Van पर डाकखाने गया। Telephone Exchange में बिस्तर भर की जगह मिल गई।

Civil Surgeon De Souza के घर पर गया। वह अस्पताल में मिला। मुझे अपनी मोटर में L. Blake Jailor के घर ले गया। उससे सिफ़ारिश करदी। ब्लेक राजनरायन का बचपन का दोस्त निकला। जबलपुर में साथ खेले थे। उसकी दयालुता से नन्दन के बहुत आराम मिला। एक घन्टे के ऊपर बात-चीत रही। सब हाल पढ़ा। सहानुभूति प्रदर्शित की।

शाम के नन्दन के लेने तथा राजनरायन लाल के पहुँचाने रेल पर गया। नन्दन Second Class में short-shirt-hat लगाए आया। प्लेटफार्म पर सब के tea-toast खिला-पिला कर ले गया। कुलीन और सुशिक्षित होने के कारण ब्लेक ने नन्दन के "B" class में रखा। जेल के फाटक में घुसते हुए नन्दन ने कहा: "So this is to be my home for one year."

धूलिया जेल के "B" class में नन्दन के सिवाय छः और कैदी थे। यह सब के सब पोलिटिकल कैदी थे और काङ्गरेसी कार्यकर्ता और उच्चकोटि के विद्वान थे। एक मुसलमान जर्मनी से पी० एच० डी० उपाधि प्राप्त नेता थे, दो महाराष्ट्री वकील थे और चार अन्य विद्वान थे। अङ्गरेज़ी दैनिक समाचार-पत्र और उत्तम साहित्य पढ़ने के मिल जाता था।

धूलिया से मैंने कई जवाबी तार Army Head Quarters, Poona भेजे। उत्तर नहीं मिला। मैं स्वतः पूना गया। वहाँ पता लगा कि नन्दन का अपील दफ़्तर से ही खारिज कर दिया गया। मुझको समझाने व बहस करने का अवसर ही नहीं दिया गया।

नन्दन से बिदा होकर लखनऊ आ गया। फिर दिल्ली जाकर माफ़ी का प्रयत्न किया। श्री नियामतउल्ला एडवोकेट, पूर्व जज हाईकोर्ट इलाहाबाद ने माफ़ी की अर्ज़ी पर सर्टीफ़िकेट लिख दिया कि उनकी राय में सज़ा कानून के विरुद्ध हुई है। परिणामतः नन्दन की सज़ा माफ़ कर दी गई। चार महीने के भीतर ही नन्दन घर वापस आ गया। राजहठ पूरी हो गई। परन्तु यह राजहठ मुझे बहुत महँगी पड़ी। ऐसी मानसिक और शारीरिक ठेस लगी कि मैं भयानक रोगक्रमण से अपने को न बचा सका।

रोगाक्रमण

१६३४ की दशलाक्षणी पूर्यषण पर्व पर मैं शिमला पहाड़ की धर्मशाला में ठहरा हुआ था। १० दिन का कार्यक्रम व्याख्यान आदि धर्म साधना में सानन्द व्यतीत हुआ।

अनन्त चौदश के निर्जल उपवास के बाद पारणा में एक प्रेमी ने बड़ा गिलास भरा बादाम का निशास्ता, प्रचुर घी में छौंका हुआ, आग्रह करके पिला दिया। तदुपरान्त भोजन करके मैं मोटर टैक्सी से नीचे उतरा। रास्ते में मल के दबाव को रोकता रहा। अम्बाले से मोटर बस में पंचकूला रवाना हुआ। वहाँ पहुँच कर लोटा लेकर जङ्गल को चला तो ज़ोर की कब्ज़, मलावरोध हो गया। पञ्चकूला गुरुकुल का निरीक्षण करके रात की मेलट्रेन से लखनऊ के लिये रवाना हुआ। रास्ते में सेकण्ड क्लास की सुविधा होते हुए भी मलावरोध की पीड़ा रही। लखनऊ पहुँचने तक पीड़ा बढ़ गई और मूत्रश्राव भी बन्द हो गया। डाक्टरों की राय थी कि नश्तर लगाया जाय। किन्तु मैंने गर्म पानी टब में भरवा के गर्म पानी पिचकारी से गुदा में चढ़ाया और उच्च स्वर से सामायिक पाठ पढ़ता रहा। परिणामतः मूत्र तथा मल का संचार हो चला और मैं चीरा-फाड़ी से बच गया।

इसके आठ बरस पीछे १६४२ में फिर पेशाब बन्द हो गया। अबकी दफ़ा १६३४ का उपचार सफल नहीं हुआ। रबर की नली (catheter) लगाकर मूत्र निकाला गया। सब ही नामी सरजन, तथा अँग्रेज़ी डाक्टर, हकीम, वैद्यों का इलाज कराया। ज्वर, शीतज्वर, हिचकी, आदि विविध बीमारी कई महीने तक सहनी पड़ी। अन्ततः निदान यह हुआ कि B. Coli कीटाणु समूह का का आक्रमण है और उसके निराकरणार्थ auto-vaccine नाम का इञ्जेक्शन तय्यार कराया गया।

इस चार महीने की बीमारी से निर्बलता बढ़ गई। Prostate gland की ग्रन्थियाँ बढ़ गईं। उनको तो काट कर ही निकाला जा सकता है। किन्तु ७६ वर्ष की अवस्था में अधिकतर सलाह यह है कि आयुर्वेदिक, होम्योपैथिक या प्राकृतिक चिकित्सा ही करना ठीक है। सो चल रही है।

१९४२ की बीमारी में मेरे लिये वैतनिक nurses नहीं रखी गईं। मेरी परिचर्या का भार मेरे पुत्रों और पुत्र-वधुओं ने अपने ऊपर ले रखा था। दो-दो घंटे की बारी से मेरे बिस्तर से लगे बैठे रहते थे। मेरा ज्येष्ठ पुत्र सुमति, जो दो बार योरुप और विलायत की यात्रा कर आया है, निःसंकोच स्वयं अपने हाथ से bed-pan लगाता और साफ करता था। मेरे बच्चों ने अपनी पितृभक्ति से मुझे महाप्रयाण से रोक तो लिया, किन्तु कवि दीनदयाल के शब्दों में—

"टूटे रद-नख केहरी, वह बल गयो थकाय"

इसी दुर्बलता के कारण १९४२ से मेरा सामाजिक जीवन प्रायः समाप्त हो गया। मेरे बच्चे मुझे कहीं अकेला जाने ही नहीं देते। फिर भी तीन अवसर ऐसे आये कि मैं अपनी परिभ्रमण-प्रियता (wanderlust) को रोक नहीं सका। इनका विवरण अगले तीन परिच्छेदों में है।

वीर शासन जयन्ती

वीर शासन जयन्ती का महोत्सव कलकत्ता में ३१ अक्तूबर, १९४४ को प्रारम्भ हुआ। उस दिन दिगम्बर, श्वेताम्बर, उभय समाज का सम्मिलित रथोत्सव कलकत्ते के विशाल राज-मार्गों से होकर बिलगिछिया जैन उद्यान में पहुँचा और वहां महान् प्रीतिभोज हुआ।

राज मार्ग के दोनों तरफ छज्जों और छतों पर दर्शक समूह ही दृष्टिगोचर होता था। राज मार्ग पर तो जन-समूह के कारण चलना बड़ा कठिन हो रहा था। कितने ही राजमार्ग पर हर प्रकार की सवारी, गाड़ी मोटर तक रोक दी गई थी। ट्राम भी रोक दी गई थी। टेलीफोन के तार ऊँचे झण्डे निकल जाने के वास्ते काट दिये गए थे, ताकि झण्डे नीचे न करने पड़ें। रथोत्सव की भीड़ एक मील तक चली गई थी। जैन जनता नंगे पैर रथोत्सव में साथ चल रही थी। १०-१२ भजन मंडली साथ चल रहीं थी। महीन जड़ाऊ कारीगरी की १०-१२ पालकी भी थी। अनुमान से १००० झण्डे झण्डियाँ, रंग बिरंगे सुनहरी काम के सुन्दर स्वच्छ वस्त्र पहने व्यक्तियों के हाथ में थे। सर सेठ हुकमचन्द जी भगवान की सवारी का रथ चला रहे थे। भगवान के रथ के सारथी की स्थानप्राप्ति के लिये सर सेठ हुकमचन्द जी ने ११०००) की बोली दी थी।

रात्रि को कवि सम्मेलन, और श्री मन्दिर जी में कीर्तन तथा नृत्य आधी रात के बाद तक होता रहा।

१ नवम्बर को बिलगिछिया के विशाल उद्यान में चाय पार्टी का आयोजन हुआ। करीब ५०० साहित्य महारथी, सेठ, और प्रतिष्ठित नागरिक निमन्त्रित और उपस्थित थे।

सर सेठ हुक्म चन्द जी ने लम्बे दंड पर ऊँचे जैन झण्डे को फहराया। १७ कालिजों की छात्राओं ने जो १७ भिन्न-भिन्न प्रान्तों की और भिन्न धर्मनुयायी थीं और अपने-अपने प्रान्त की वेष-भूषा से अलंकृत थीं एक स्वर होकर मङ्गल गान से झंडाभिवादन किया। इस महिला मंडल का नेतृत्व श्री सुशीला देवी जैन ने किया था, जो महिला कॉनफरेन्स की सेक्रेटरी थीं, और विक्टोरिया इंस्टीट्यूट कलकत्ता में विद्याध्ययन करती थीं।

वीर शासन कॉंफ़रेन्स के अधिवेशन का मङ्गलाचरण श्री आचार्य जुगल किशोर, अधिष्ठाता वीर सेवा मन्दिर सरसावा (सहारनपुर) ने किया। तत्पश्चात् महिला मंडल ने एक स्वर में भगवान महावीर का स्तुति-गान किया।

सर सेठ हुक्म चन्द जी अधिवेशन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। डाक्टर श्याम प्रसाद मुकरजी ने प्रारम्भिक भाषण दिया। श्री शान्ति प्रसाद, अध्यक्ष स्वागत समिति तथा अधिवेशन के अध्यक्ष के भाषण आधी रात तक होते रहे और डाक्टर काली दास नाग के भाषण के पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

उपस्थित जनता का अनुमान २००० का होता था। २-३ नवम्बर को कॉंनफरेन्स की विभिन्न शाखाओं के अधिवेशन होते रहे। ४ नवम्बर को गुजराती जैन श्वेताम्बर उपाश्रय में दिगम्बर-श्वेताम्बर समाज ने सम्मिलित वीर शासन महोत्सव की सफलता पर पारस्परिक धन्यवाद दिया। शाम को बिलगिचिया उद्यान में महिला परिषद् का अधिवेशन ब्रह्मचारिणी पण्डिता चन्दा बाई जी की अध्यक्षता में हुआ।

५ नवम्बर को महिला परिषद् का अधिवेशन श्वेताम्बर जैन उपाश्रय में हुआ।

इस अवसर पर मुझे आचार्य जुगल किशोर जी के सहवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ जिसका मुझे यावज्जीवन स्मरण रहेगा। मेरा और

उनका विस्तार श्री बाबू छोटे लाल जी की बैठक में पास-पास लगता था। बाबू छोटे लाल जी भी वहाँ ही शयन करते थे। प्रातः आचार्य महाराज मेरे साथ सामायिक, स्तोत्र, पाठ आदि करते थे। और दिन में भी प्रायः साथ ही रहते थे।

आचार्य जुगल किशोर जी के साथ बिलगिचिया उद्यान में निवास करके Jain Research Institute (जैन साहित्य अन्वेषण संशोधन संस्था) का कार्य कलकत्ते में करने का आश्वासन हम दोनों ने श्री बाबू छोटे लाल जी को दिया था। ३-४ लाख का चिट्ठा लिखा गया था। ७१०००) सेठमल दयाचन्द फर्म के श्री बल्देव दास जी ने, और ५१०००) बाबू छोटे लाल जी ने लिखे थे।

किन्तु खेद है कि श्री छोटे लाल जी तीव्र रोग ग्रसित होने से मदन पल्ली, मदरास प्रान्त में चिकित्सार्थ चले गए, और वहाँ दीर्घ काल तक रहे।

समय बीत जाने पर उत्साह ठण्डा पड़ गया, और सब योजना स्वप्नवत् रह गई।

अजन्ता की गुफ़ा श्रेणी

८ अप्रैल से १२ अप्रैल १६४६ तक जामनेर (पूर्व खानदेश) में श्री भारत जैन महा मण्डल का वार्षिक अधिवेशन अत्यन्त सफलता पूर्वक हुआ। वर्धा से श्री सेठ चिरञ्जी लाल बड़जाते, उनके सुपुत्र विजय कुमार बड़जाते, श्री ऋषभदास रांका सकुटुम्ब, श्री पंडित बेचर दास सकुटुम्ब, डाक्टर हीरालाल, भदन्त आनन्द कौशल्यायन आदि जामनेर गए। एक छोटे से स्टेशन पर सेठ राजमल ललवानी की मोटर बस मौजूद थी। उसमें सवार होकर हम सब सूर्योदय होते समय जामनेर पहुँच गए। सेठजी के बगीचे में ठहरे। सुखप्रद उत्तम प्रबन्ध था। गुलाब के फूलों का उद्यान है। गुलाब के फूलों का मटकों गुलकन्द हर साल बनाया जाता है। गाय भैंसों का मनों दूध रोज़ निकलता है। मुझको तो सुबह शाम कजरी नाम की गाय का धारोष्ण दूध मिलता था। खेती सैकड़ों बीघे में ट्रैक्टर द्वारा होती है। बगीचे के सिंचनार्थ इंदारा से बैल पानी खींचते रहते हैं। वह पानी एक हौज़ में होकर बाहर जाता है। हौज़ दो तीन गज़ चौकोर और क़रीब ५ फ़ीट गहरा है। उसमें तैर कर स्नान का आनन्द आता है।

उद्यान के बाहर वृहत् गोशाला है। इन्दारे से बिजली के यन्त्र से पानी ५ गज़ लम्बे १॥ गज़ चौड़े १। गज ऊँचे सरोवर में भरता है, जहाँ तैर कर स्नान करने का आनन्द मिलता है।

रात को लम्बी चौड़ी खुली छत पर सबके बिस्तर लग जाते थे, और सुख की नींद सोते थे। कई मोटर सवारी के वास्ते तैयार रहती थीं।

मंडल के अधिवेशन विशाल मंडप में, शहर में और सेठ जी के दीवान खाने में सफलतापूर्वक हुए। चांदवड ब्रह्मचर्याश्रम के युवकों का विविध व्यायाम प्रदर्शन भी हुआ।

अन्तिम दिन १२ अप्रैल को सेठ जी की मोटर बस में हम सब १०-१२ यात्री अजन्ता के दर्शनार्थ गए। जामनेर से अजन्ता पर्वत २३ मील है। कुल २६ गुफा अर्द्ध गोलाकार श्रेणीबद्ध चली गई हैं। कुछ तो सभा मंडप रूप हैं, जहाँ हज़ारों की संख्या में सभा लग सकती है। छत पर चित्र बेल बूटे हैं, दीवारों पर और अन्दर बुद्ध देव के जातक के चित्र हैं। विविध आसन, मुद्रा, ध्यानस्थ, उपदेशक चित्र विचित्र हैं। कहीं कहीं साधुओं के विश्राम स्थान हैं। पत्थर का बिस्तर, तकिया, दीपक का स्थान, रोशनी तथा वायु संचारार्थ छिद्र हैं। कहीं-कहीं ऊँचे स्तूप, दरवाज़े बने हैं। गुफा के अन्दर आजकल search-light से रोशनी पहुँचाई जाती है। प्रतीत होता है कि गुफा पहाड़ों को काट कर बनाई गई हैं। एक स्थान पर पाषाण बजाने से बजता है। आश्चर्यकारी लीला है। अन्त में जलधारा पर्वत से झाल बन कर गिरती है; और नीचे नदी रूप बहती है।

सरकारी प्रबन्ध है, सुरक्षित स्थान है।

मध्यभारत के मुख्य जैन तीर्थस्थान

१६५० की २४ जून को सर सेठ हुकुम चन्द जी की कृपा से उनकी सुखप्रद Bedford कार से मेरा बेटा वीरनन्दन सकुटुम्ब और मैं तीर्थ यात्रार्थ रवाना हुए।

बड़वानी की धर्मशाला में करीब ४ बजे शाम, चार घंटे में १०० मील से ऊपर चल कर, पहुँच गये। धर्मशाला में स्नानागार रसोई के बरतन, दरी, गद्दे आदि की पर्याप्त सुविधा है। गर्मी के मौसम में सोने के लिये साफ़ खुली छत या हवादार मैदान की कमी है। उसी दिन शाम को वन्दनार्थ श्री चूलगिरि पर चढ़ें।

मार्ग में कुछ दूर तक तो सीढ़ियाँ बनी हैं, किन्तु इन सीढ़ियों पर रेत और पाषाण खंड जमा हैं, जो पैरों में चुभते हैं। सीढ़ियाँ बनवाने वाले व्यक्ति का आशय यात्रियों को आराम देने का होता है। किन्तु वास्तव में सीढ़ियाँ बनवाने से मार्ग का कष्ट बढ़ जाता है। पहाड़ पर चौड़ा हल्के चढ़ाव का रास्ता बनवाने से चलने में सुविधा होती है। विशेष आवश्यकता इस बात की है कि रास्ता साफ़ सुथरा रहे। हर रोज़ रास्ते पर झाड़ू लगती रहे। झाड़ू लगवाने में करीब आठ आने रोज़ का खर्च होगा। कुल रास्ता करीब डेढ़ मील का है।

चूलगिरि सिद्धक्षेत्र का विवरण तत्प्रबन्ध-कारिणी कमेटी ने २४ पृष्ठ में प्रकाशित किया है। उस विवरण से यह पता नहीं चलता कि बावनगजा मूर्ति कब, किसने बनाई। मूर्ति के आसपास कुछ भी लेख चिन्ह नहीं है। यह मूर्ति श्री ऋषभदेव भगवान् के नाम से प्रख्यात है। ऐसी परिस्थिति में यह प्रतीत होता है कि यह मूर्ति प्रागऐतिहासिक काल की है और उस समय मूर्ति पर चिन्ह बनाने या लेख लिखने की प्रथा नहीं प्रचलित हुई थी।

मूर्ति ८४ फीट ऊँची समचतुर्स्रसंस्थान है। कन्धे से कन्धे तक २६' ६"; सिर का घेरा २६'; पैर की लम्बाई १३' ६"; नाक की लम्बाई ३' ११"; आँख की लम्बाई ३' ३"; कान की लम्बाई ६' ८" है।

मूर्ति ५२ गजा नाम से प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि जिस समय मूर्ति का निर्माण हुआ तब के प्रचलित गज़ के नाप से ५२ गज़ लम्बी होती थी। हिसाब लगाने से एक गज़ १' ७" का बैठता है।

यह मूर्ति अनुमानतः पहाड़ में ही काट कर उकेरी गई है। किसी अन्य स्थान से लाकर यहां स्थापित करी हुई नहीं प्रतीत होती है। पत्थर पहाड़ से अलग नहीं मालूम पड़ता है। कहीं कोई जोड़ नहीं है।

इस मूर्ति पर छतरी नहीं थी; धूप, हवा वर्षा के प्रभाव से जीर्ण-शीर्ण होकर खंडित होती जा रही थी। इसका जीर्णोद्धार क़रीब २० वर्ष हुए कराया गया। ५८३६८) खर्च हुआ। उस समय पंचकल्याणक प्रतिष्ठोत्सव भी हुआ और उसी समय के लगभग नये-नये मन्दिर भी निर्माण किये गये।

इस मूर्ति पर ठोड़ी के नीचे एक भारी मधुमक्खियों का छत्ता लगा है जो दाढ़ी सा प्रतीत होता है। और एक छत्ता अंडकोष के नीचे लगा है। मूर्ति के आस-पास भी दो छत्ते लगे हैं। ठोड़ी के नीचे दाढ़ी रूप छत्ते के लग जाने से मूर्ति का दिगम्बर सरूप विकृत हो गया है। एक बार स्वामी अकलङ्कदेव दिगम्बर मूर्ति पर धागा डाल कर उलांघ गये।* जब धागा आछन्न होने से मूर्ति के नग्नत्व में विकार हो गया, तब दाढ़ीमय मूर्ति का दिगम्बर सरूप विकृत हो जाने से उसका पूज्य पना शेष रहना सशंक हो जाता है।

---

*अन्तर्कथा इस प्रकार है :- अकलङ्क देव भेष बदल कर काशी में एक बौद्ध-मठ में पढ़ते थे। आश्रम-वासियों को इनके जैन होने का पता लग गया। परीक्षारूप दिगम्बर-मूर्ति के ऊपर से चलने का इन्हें आदेश हुआ। यह चुपके से मूर्ति के ऊपर धागा डाल आये, ताकि उसका दिगम्बर-स्वरूप विकृत हो जाए और वह पूज्य न रहे।

हमारी समझ में मूर्ति के चारों ओर बारीक लोहे की जाली लगवा देना उचित प्रतीत होता है। उस पर्दे में एक ७′ ४″ का दरवाजा दर्शनार्थ लगवा दिया जाय तो मूर्ति का सरूर सुरक्षित रहे। ऐसा परदा लगवाने में अनुमानतः ८०००) खर्च होगा। जब मूर्ति के ऊपर छतरी और दोनों तरफ अभिषेकार्थ खड़े होने के लिये कटहरेदार चबूतरे बनवाने में हजारों का व्यय हुआ है तो उसकी प्रतिष्ठा सुरक्षित रखने में परदे का बनवाना उचित ही प्रतीत होता है।

चूलगिरि की सर्वोच्च चोटी पर रावण के भाई कुम्भकरण और बेटे इन्द्रजीत के मोक्षस्थान सूचक एक अंधेरे गर्भगृह में दो जोड़ी चरण चिन्ह स्थापित हैं। गर्भगृह के बाहर सभामण्डप में १४ मूर्तियाँ सं० १३८० की और २१ मूर्ति १६३६ की विराजमान हैं। दो शिला लेख सं० १२२३ के हैं।

इस मन्दिर के पीछे एक गुम्टी में तीन मूर्ति कायोत्सर्ग दोनों हाथ जोड़े विराजमान हैं। कहा जाता है कि यह मूर्तियाँ गणधर की हैं।

चूलगिरि पर रास्ते में इधर-उधर नये मन्दिर स्थापित हैं।

तलहटी पर १७ मन्दिर एक अहाते में आधुनिक समय के निर्मित हैं। प्राँगण में मानस्तम्भ बना हुआ है। आठ अन्य मन्दिर इस अहाते के बाहर बने हुए हैं।

दूसरे रोज़ करीब तीन बजे दिन पावागिरि सिद्धक्षेत्र के, जिसके पास ऊन नाम की बस्ती है, दर्शन किये। यह मन्दिर प्राचीन है। गर्भालय में तीन कायोत्सर्ग-आसन प्रतिमा शांति, कुंथु, अरहनाथ भगवान की स्थापित हैं। १०-१२ सीढ़ियां उतर कर पहुँचते हैं। वहाँ कोई लेख दिखाई नहीं दिया। यह गर्भगृह बाहर के मण्डप की सतह से १०-१२ फीट नीचा है। सभामण्डप की छत पर अन्दर की तरफ़ प्राचीन समय के बने हुए कमल मौजूद हैं। शेष भाग इस सभामंडप का जीर्णोद्धार रूप नव-निर्मित है।

इस क्षेत्र का विवरण ४८ पृष्ठ में प्रकाशित है। इस विवरण से मालूम होता है कि निमाड़ प्रान्त में १२ वीं विक्रम शताब्दि से १७ वीं० शताब्दी तक जैनधर्मावलम्बी नृपति राज्य करते रहे। उसी समय के निर्मित जिनालय और प्रतिष्ठित प्रतिबिम्ब तथा उनके भग्नावशेष जगह-जगह पर पाये जाते है। विशेष खोज होने की अत्यन्त आवश्यकता है।

पावागिरि सिद्धक्षेत्र के दर्शन करके उसी दिन मानधाता ओंकारजी की पुरानी धर्मशाला में मोटर को छोड़कर हम लोग नौका द्वारा सिद्धवरकूट क्षेत्र की धर्मशाला में पहुँच गये। यह धर्मशाला सुखप्रद बनी है। पाषाण से पटा हुआ विशाल प्रांगणठोस तलहटी पर है। दस बारह सीढ़ियाँ चढ़ कर पहुँचते हैं। प्रांगण में करीब सवा गज ऊँचा चबूतरा लेटने बैठने के लिये बना हुआ है इस प्राँगण में चार पाँच सौ सभासद शास्त्र प्रवचन सुन सकते हैं। प्रांगण से मिला हुआ दालान, कोठा, दर-दालान, रसोई और खुला मैदान है। दालान, कोठे और दर दालान के ऊपर छत पर जाने का पक्का जीना भी मौजूद है। रसोई के बरतन अधिक संख्या में मौजूद थे। स्नान के लिये जल और सोने के लिये गद्दों की यथेष्ट सुविधा थी। ऐसी बड़ी धर्मशाला हमने और किसी तीर्थ क्षेत्र पर नहीं देखी। मुनीमजी का प्रबन्ध उत्तम बल्कि प्रशंसनीय और अनुकरणीय था।

इस क्षेत्र पर मनोहर मन्दिर सर सेठ हुकुमचन्दजी तथा उनके भ्राता के बनवाये हुए हैं। एक छतरी बड़वाहा की धर्मशाल श्रीमती चैनाबाई की निर्माण कराई हुई है। उसके सामने भी खुला विशाल प्रांगण है। मन्दिर वहाँ कितने ही है।

यहाँ हम दो दिन ठहरे और रात्रि समय दोनों रोज मैंने शास्त्र प्रवचन किया।

२० जून को हिन्दुओं का प्राचीन तीर्थ ओंकारेश्वर महादेव देखा। एक अंधेरी कोठरी में झुक कर जाना पड़ता है। वहाँ दीपक जल रहा था

और दो पुजारी कुछ पाठ पढ़ रहे थे; तीसरे मनुष्य के बैठने का स्थान ही नहीं था।

६०-७० सीढ़ियां चढ़ कर मानधाता के राजा का गढ़ सदृश भवन देखा।

मोरटक की धर्मशाला में मुनिधर्मसागर जी की वँदना करके नर्मदा नदी में से नौका पर मोटर उतार दी गई। और संध्या समय करीब ३०० मील की यात्रा करके इन्दौर वापस आ गये।

इस क्षेत्र से दो चक्रवर्ती, दस कामदेव, और साढ़े तीन कोटि मुनि मोक्ष पधारे हैं।

जैन गज़ट

१६०० में दिगम्बर जैन महासभा और भारत जैन महामण्डल का सम्मिलित मुख पत्र "जैन गज़ट" नाम का था। आरा निवासी दानवीर श्री देव कुमार जी सम्पादक और बाबू राजेन्द्र किशोर जी प्रकाशक थे। यह पाक्षिक पत्र इलाहाबाद में छपाया जाता था। हिन्दी के साथ ४ पृष्ठ अंग्रेज़ी में भी थे। वार्षिक मूल्य हिन्दी का २) रुपया था अंगरेज़ी का १) और दोनों का २॥) था।

अप्रैल १६०२ से जैन गज़ट बा० शीतल प्रसाद जी के प्रबन्ध से लखनऊ के जैन प्रेस* में छपने लगा। फरवरी १६०५ से साप्ताहिक कर दिया गया। १६०८ से पंडित जुगुल किशोर मुख्तार के सम्पादकत्व में आगया।

सन् १६०४ ई० से जैन गज़ट अङ्गरेज़ी, में इलाहाबाद से श्री जुगमन्दर लाल जी M. A. के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने लगा और केवल भारत जैन महामण्डल (All India Jain Association) का मुख पत्र हो गया। १६१२ में श्री जे० एल. जैनी जैन गज़ट मुझको सौंप कर लन्दन चले गए। १६१८ से जैन गज़ट श्री मल्लिनाथ के सम्पादकत्व में १६३३ तक मद्रास से निकलता रहा। १६३४ से फिर उसके सम्पादन का भार मैंने ग्रहण कर लिया।

'जैन गज़ट' ने जैन-समाज की ४७ वर्ष सेवा की। परन्तु गत ५-१० वर्ष में ग्राहकों की संख्या कम होती गई, जे० एल० जैनी के ट्रस्टियों ने भी यथोचित आर्थिक सहायता देने से इन्कार कर दिया। लेखकों का

---

*भगवान दास जैन, दफ़्तर जेनरल पोस्ट आफिस, ने यह प्रेस खोला था और अपने जीवन-काल में ही बन्द कर दिया।

अभाव भी खटकने लगा। सम्पूर्ण जैन गज़ट मुझे अकेले लिखना पड़ता था।

इन सब कठिनाइयों के होते हुये भी, मैं चाहता था कि "जैन गज़ट' का अन्त मेरे जीवन के साथ हो। नवम्बर १९५० के अङ्क में मैंने एक अपील निकाली। जैन-जनता से पूछा कि अङ्गरेजी भाषा में एकमात्र पत्रिका के चलती रहने के विषय में उनकी क्या अनुमति है? १०० ग्राहकों से भी उत्तर न आये। पैरिस (फ्रांस) से एक भाई ने लिखा—
" In the world today probably there is no other nation so opposed to reason and good sence as the Jainas." निराश होकर १९५० के अन्त में जैन 'गज़ट' बन्द कर दिया।

जगमन्दर लाल जी 'जैन गज़ट' को अपना 'first born child' कहा करते थे। वह नन्हा बालक जिसको जे० एल० जैनी ने जन्म दिया, मेरे हाथों बढ़ा और तरुण हुआ। परन्तु यह स्वप्न में भी कल्पना न थी कि जिसका ४७ वर्ष तक लालन-पालन किया, उसका अपने हाथों ही अन्तिम संस्कार करना पड़ेगा। आशा है कि जगमन्दर लाल जी की आत्मा जहाँ भी हो, जिस रूप में भी हो, मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेगी। कदाचित् यह मेरे जीवन की अन्तिम असफलता है।

उपसंहार

आज मेरी वर्षगांठ है। इन ७७ वर्षों का परिमार्जन करता हूं, तो बरबस मुँह से निकल पड़ता है—

"जीवन की असफलताओं का, एक सफल अभिनय मैं हूं।"

सचमुच, आज से बीस वर्ष पहले कमिश्नरी या किसी विभाग के सेक्रेटरी के पद से निवृत्त होता यदि श्री पूर्णचन्द्र विद्यान्त के निरन्तर सम्पर्क में रहकर खबर रखता कि माता के अनुरोधवश वे विलायत न जासकेंगे, और लन्दन की I. C. S. परीक्षा के लिए गिलक्राइस्ट छात्रवृत्ति का अधिकारी उनकी जगह मैं हो सकता हूं।

या फिर,

५-६ वर्ष में हैदराबाद का हाईकोर्ट जज होता, यदि १८६५ में रियासत हैदराबाद की Legislative Council के सेक्रेट्री पद को तार पाते ही स्वीकृत कर लेता। अपने भाग्य पर भरोसा न करके, पिताजी की अनुमति की प्रतीक्षा करता रह गया।

इसके अतिरिक्त १९०१ में रायबरेली और जौनपुर दोनों जगह की मुन्सफ़ी का प्रस्ताव मेरे सामने था। जौनपुर की अपेक्षा मैंने रायबरेली जाना पसंद किया। यदि जौनपुर चला जाता तो १९३४ में इलाहाबाद हाईकोर्ट की जजी से रिटायर होता। रायबरेली की मुन्सफ़ी भी तो थोड़े समय बाद छोड़ दी और उसके साथ ही अवध चीफ़ कोर्ट की जजी का अवसर भी हाथ से खोया। उसी साल सरकारी वकील हो गया। लखनऊ के डिप्टी कमिश्नर बटलर महोदय मेरे मेहरबानों में से थे। पर उस समय उनकी सहायता की मुझे आवश्यकता न थी, मैं अपनी स्थिति से संतुष्ट था। धीरे-धीरे ऐसा लगा की मेरी योग्यता के अनुपात में आय नगण्य है। क्रमशः यह विचार दृढ़ होता गया और सन् १९१६ में

सरकारी वकालत से त्यागपत्र दे दिया। तबतक बटलर अन्यत्र जा चुके थे अन्यथा कश्मीर, बड़ौदा, इन्दौर, ग्वालियर या किसी भी बड़ी रियासत का दीवान बनवा देते।

"मनुष्य के जीवन में परीक्षा का केवल एक समय होता है, और वही उसके भाग्य का निर्णय कर देता है।" मैंने उस महत्वपूर्ण घड़ी को न पहचाना। वह लड़ाई का समय था। सरकार आर्थिक संकट में थी। मेरे त्याग-पत्र देने के थोड़े समय बाद ही जर्मनी से युद्ध समाप्त हो गया। सरकारी वकील की आय और पद में उन्नति हो गई। क्रमशः सभी सरकारी वकील हाईकोर्ट जज हो गए।

आज मैं निश्चित नहीं कर पाता कि अतीत स्पृहणीय था या भविष्य के पट पर अभी कोई ज्वलंत रेखा प्रदीप्त होगी*। जीवन के इस दार्शनिक पहलू के विपरीत जब भौतिक जगत में उतरता हूं तो एक संतोष की सांस मिलती है; सरकार की प्रबन्धकारिणी या न्यायकारिणी शाखा के उच्च-तम पद की प्राप्ति ही तो सफलता की माप नहीं! भारत को छोड़ अन्य किस देश में सरकारी नौकरी को इतना महत्व दिया जाता है? कवि का तो कहना है—

"उत्तम खेती, मध्यम बान
अधम चाकरी, भीख निदान।"

चीन के प्रायः सभी कवि और लेखक अपने प्रारम्भिक जीवन में सरकारी कर्मचारी थे। परन्तु थोड़े ही समय में उनकी चाटुकारी से तबियत ऊब गई और उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया। खेत-खलिहान के सुन्दर और सादे जीवन में ही उन्होंने जीवन का सत्य और आत्मा की शांति पाई।

---

*विदेशी मित्रों का आग्रह कैसे टालूं? अगले साल योरुप और अमरीका की यात्रा करने का विचार है।

रात-दिन पत्र-और लेख्य-संग्रहों में संलग्न रहना, दिन प्रतिदिन उसी प्रकार के मुक़दमे सुनना और निर्णय करना, यही तो सरकारी नौकर का जीवन है। घर से दफ़्तर, दफ़्तर से घर—न स्वतन्त्र विचार प्रकट करने की सुविधा न स्वच्छन्द-जीवन व्यतीत करने का अवकाश! कहने को जज अपने निर्णयों में स्वतन्त्र होते हैं, परन्तु आज कल तो इधर सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया उधर केन्द्रीय सरकार ने उसे विधान द्वारा उलट दिया।

बहुत से कर्मचारी तो ऐसे हैं जिन्होंने सिवाय उन शहरों के जहाँ उनकी नियुक्ति हुई और कुछ अपने देश में, संसार में देखा ही नहीं। साल में केवल १५ दिन का अवकाश मिलता है; उसमें क्या-क्या करें, कहाँ-कहाँ जावें। जज हुए तो गर्मियों में एक महीने का अवकाश वरन् अकबर के शब्दों में—

"बी० ए० हुए, नौकरी मिली
पेन्शन हुई और मर गए।"

यदि मैं निरन्तर सरकारी नौकरी करता रहता तो जज या कमिश्नर अवश्य हो जाता, परन्तु इसके आगे? जीवन कितना शुष्क और नीरस हो जाता! दिन दफ़्तर में और रात क्लबों और पार्टियों में बीत जाती। मानसिक अभिवृद्धि और आत्मोन्नति का कोई अवकाश न मिल पाता। "अधिकार सुख कितना मादक और सारहीन है!"

मैंने सरकारी वकालत से १६१६ में त्याग-पत्र दिया। इन ३५ वर्षों में कितना परिभ्रमण किया, कितने व्यक्तियों से मिला, कितने हज़ार पृष्ठ लिख डाले, कितनी पुस्तकें पढ़ डालीं—सोच कर मुझे स्वयं आश्चर्य होता है। दक्षिण में श्रवणबेलगोला से काश्मीर में खिल्लनमर्ग तक, पूर्व में कलकत्ता से उत्तर-पश्चिम में लंडीकोतल तक भारत का कोना-कोना मैंने छान डाला; कलकत्ता, पटना, इलाहाबाद, लखनऊ, लाहौर, बम्बई—प्रायः सभी हाईकोर्टों में वकालत करली; देश के सभी नेताओं से सम्पर्क रहा; मेरे जीवन का और जैन-जाति का इतिहास तो

लगभग तत्सम रहा है। संस्कृत और प्राकृत के जितने जैन ग्रन्थों का अङ्गरेज़ी में अनुवाद हुआ उनके सम्पादन, मुद्रण या प्रकाशन में मेरा हाथ रहा है। विरले ही किसी व्यक्ति ने समाचार-पत्र का निरन्तर इतने वर्ष सम्पादन किया हो जितना मैंने जैन गज़ट का। इतना बहुमुखी और संपन्न जीवन व्यतीत करने के बाद अब मुझे किस वस्तु का अभाव है! चीनी लेखक लिन यू टाङ्ग के शब्दों में—

"It is to be assumed that if man were to live this life like a poem, he would be able to look upon the sunset of his life as his happiest period, and instead of trying to postpone the much-feared old age, be able actually to look forward to it, and gradually build up to it as the best and the happiest period of his existence*....The span of life vouchsafed us, three score and ten is short enough, if the spirit gets too haughty and wants to live for ever, but on the other hand, it is also long enough, if the spirit is a little humble. One can learn such a lot and enjoy such a lot in seventy years, and three generations is a long, long time to see human follies and acquire human wisdom. Anyone who is wise and has lived long enough to witness the changes of fashions and morals and politics through the rise and fall of three generations should be perfectly satisfied to rise from his seat and go away saying, 'It was a good show,' when the curtain falls."†

परिशिष्ट
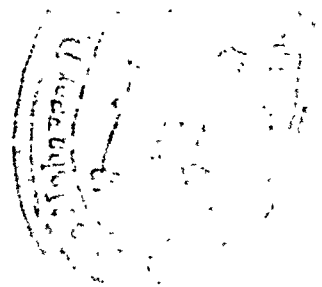
परिशिष्ट

(अ) बम्बई प्रान्तिक सभा, १९१२

सभापति का भाषण*

य: स्मर्यते सर्वमुनीन्द्रवृन्दैः यः स्तूयते सर्वनरामरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः स देवदेवो हृदये मम स्ताम् ॥

आज मेरे हर्ष का पारावार नहीं है जब कि मैं अपने आपको एक अद्वितीय स्वधर्मजातीयमण्डली में पाता हूँ, जिसको अनेक वात्सल्य व प्रभावनागुणालंकृत भव्य पुरुष-रत्नों ने अथक परिश्रम से स्थापित किया है, "अहिंसा परमो धर्मः" "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" "जयतु जैनशासनम्" "सत्वेषु मैत्री" इत्यादि पताकाएँ जहाँ फहरा रही हैं, तथा स्याद्वाद के अजेय रक्षक जहाँ अहर्निश पहरा देते हैं। आप महानुभावों ने जात्युन्नति व धर्मोन्नति के महान् पवित्र कार्य्य में अग्रेसर होने का अनन्य सौभाग्य मुझ अल्पज्ञ को प्रदान किया, इसका मैं बहुत ही कृतज्ञ हूँ; परन्तु "निधि प्राप्ति से निधि-रक्षा कठिनतर है," इस उक्ति के अनुसार मुझे सन्देह है कि इस पदयोग्य कर्तव्यों का पालन मैं कर सकूँगा वा नहीं। तथापि आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा धर्म है और मुझे परम आशा है कि जब आप सज्जनों ने मुझे इस जाति सेवा के उच्चासन पर उन्नत किया है, तो तद्योग्य शुभ भावनाओं का बल भी प्रदान करेंगे, जिससे मैं आप बन्धुओं की निर्दोष सेवा कर सकूं। मुझे भरोसा है कि महात्मा, त्यागी, ब्रह्मचारी अपने वर-प्रदान से वयोवृद्ध पूज्य अपनी आशिष से, समावस्थावाले भ्रातृवर्ग अपने कार्यकौशल और हितैषितासे, तथा कनिष्ट भ्राता अपने स्नेह व विश्वासपूर्वक अनुगमन से अवलम्बन देकर मुझको कृतार्थ करेंगे।

---

*देखिए पृष्ठ १०१

भ्रातृवर्ग, जबसे यह मुम्बापुरी सतरहवीं शताब्दी में इंगलैन्ड के राजा चार्ल्स की रानी को पोर्तुगालवालों से स्त्री धन के रूप में मिली, तबहीसे इस नगरी में पाश्चात्य देशों की वाणिज्य वस्तुओं का व्यवहार दिन प्रतिदिन बढ़ा और इसमें लक्ष्मी का वास हुआ, तथा इसके सौन्दर्य ने भी आश्चर्यजनक उन्नति की। आज भारत में बम्बई के समान कोई नगर नहीं है; समस्त प्रान्तों के व्यापारी वर्ग का यह केन्द्र है, और यहाँ पर प्रायः प्रत्येक मुख्य-मुख्य नगरों के निवासी दृष्टि में आते हैं। बम्बई को यदि भारत-प्रतिनिधि नगर कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी। जो २ उन्नति के कार्य इस प्रान्तिक सभा और इसके सभासदों द्वारा अद्यावधि सम्पादित हुए हैं, वे इतने महत्व और आदर्शरूप से हुये हैं कि जो भारत प्रति-निधि-नगरस्थ सभा के योग्य हैं, और जिसको प्रत्येक सभा अनुकरणीय स्वीकार करती है। इस प्रान्त से जो शुद्ध ज्योति चहुँ ओर जैनियों के घरों में पहुँची है, और उससे जो अज्ञान अन्धकार दूर हुआ है, उसके लिए आबाल-वृद्ध आभारी हैं। ग्रन्थमुद्रणद्वारा जिनवाणीका जीर्णोद्धार, जिनोदित संस्कारों का प्रचार, परीक्षालय द्वारा धार्मिक विद्याका प्रसार, आदर्श बोर्डिंग स्थापन आदि मुख्य-मुख्य उन्नति के कार्य इस प्रान्त के विद्वानों व धनिकों की धर्मज्ञता, दूरदर्शिता और उदारता का प्रत्यक्ष परिचय दे रहे हैं। वास्तविक 'यथा नाम तथा गुणः' **जैन मित्र** इसी प्रान्तिक सभा का मुखपत्र है। जैनजाति में केवल एक यही ऐसा पत्र है जो एक गृहत्यागी, उदासीनवृत्ति, हितोपदेशी, ब्रह्मचारी द्वारा सम्पादित होता है; और इसीं कारण इस पत्र की सत्यवक्तृता, निर्भयता, निजाधीनता और मैत्रीभाव दिन प्रति-दिन वृद्धिगत है। यहाँ के धनाढ्यों ने सार्वजनिक कार्यों में भी प्रशंसनीय क़दम बढ़ाया है; हीरा बाग की धर्मशाला, ऐलक पन्नालाल औषधालय, हीराचन्द-गुमान जी-बोर्डिंग और श्राविका-श्रम उसका नमूना हैं। आप महानुभावों के सर्वोपरि सराहने योग्य और उत्कृष्ट उपकार के कार्य द्वारा तीर्थों का सुप्रबन्ध हो रहा है और सर्वस्थिति के यात्रियों को समस्त प्रकार का आराम

मिलता है। मुझे भलीभाँति मालूम है कि इन कार्यों में आप लोगों का बड़ी-बड़ी कठिनाइयों से मुकाविला हुआ है, आपको अन्धविश्वास और स्वार्थपरता के धक्के झेलने पड़े हैं। परन्तु आपने जिस नीति और धर्म-दृढ़ता से कार्य किया है वह सब पर विदित है, और इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि यह सभा इस ही प्रान्त में नहीं किन्तु समस्त भारत का प्रतिनिधि रूप से उपकार कर रही है; और इसकी प्रत्येक कार्यवाही धर्मानुकूल, समयानुसार और सर्वमान्य होती है, अत: जो कुछ भी धर्म्मोन्नति व देशोन्नति के कार्य आप लोग करेंगे वे आदर्शरूप लाभकारी और शिक्षाप्रद ही होंगे; और मुझे विश्वास है कि कोई भी धर्म्म-प्रेमी व उन्नति इच्छुक जैन बन्धु उनमें "कथं" "कस्मात्" न करेगा।

सज्जनवृन्द, संसार परिवर्तनशील है; "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" का अटल सिद्धांत अस्तित्व के प्रत्येक रूपरूपान्तर पर अङ्कित है। आज भोगभूमियों के दिन नहीं हैं, चतुर्थ काल भी नहीं है; हमारे पुराणों में जैसी जीवनियों का उल्लेख है आज वे हमको स्वप्न में भी नहीं दिखलाई देतीं; ऋषभदेव से ऐहिक और पारमार्थिक मार्गप्रणेता, रामचन्द्र से नीतिज्ञ और लोकमतदर्शी राजा, युधिष्ठिर से सत्यवादी, अर्जुन जैसे शूरवीर, कुंदकुंदाचार्य्य जैसे तत्त्वज्ञ, अकलंक निकलंक जैसे धर्म्मरक्षार्थ प्राणोत्सर्गी, समंतभद्राचार्य्य जैसे नैय्यायिक, पूज्यपादस्वामी जैसे बहुविषयज्ञ, अमृतचन्द्र और अमितगति आचार्य्य जैसे अध्यात्मरसिक, विद्यानंद से वादी अब भारत में नहीं हैं। प्राचीन और आधुनिक भारत में दिन-रात का भेद है, अब तो "सुबह होती है, शाम होती है, उम्र यों ही तमाम होती है।" अकथनीय शोक का अवसर है कि अनभिज्ञ विदेशी तो क्या, स्वयं भारतवासी ही महावीर तीर्थेश्वर के व्यक्ति-अस्तित्व पर सन्देह करने लगे हैं और अनादि जैनधर्म को बौद्धधर्म की शाखा बताकर उसके भिन्न अस्तित्व पर ही पानी फेरने को तैयार हैं। यह देखकर अपार खेद होता है कि लाखों ग्रन्थ भण्डारों में पड़े-पड़े दीमकों के भोज्य और दिग्गज विद्वानों के परिश्रम से की हुई कृतियाँ नष्टप्राय हो रही हैं। हमको यह विचार कर उत्साहहीन होना पड़ता है कि जैनियों

की संख्या चौदह लक्ष से भी न्यून हो गई। हाय! पष्ट काल के उन्नीस हजार वर्ष दूर रहने पर भी लाखों रुपयों की लागतों के धर्म-मन्दिरों की ऐसी शोचनीय दशा हो रही है कि उनके लिए वेतन पर भी पुजारी नहीं मिलते और ख्याति-पूजा के अर्थ भी कोई मरम्मत नहीं कराता। शिखर सम्मेद जैसी पवित्र मोक्षभूमि पर गृहस्थियों के निवासस्थान बननेका प्रस्ताव और उस पर स्वत्व प्राप्ति के अर्थ दिगम्बर, श्वेताम्बर भाइयों में कहानी के गुरु के दो शिष्यों के समान झगड़ा पड़ना हमको एक बार हताश कर देता है। हमारा हृदय इस दुःख को नहीं सह सकता कि इस छोटी सी जैन जाति में दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, मूर्तिपूजक, मूर्तिनिंदक, भीखमपंथी, तपगच्छ, खरतरगच्छ, तेरापंथी, बीसपंथी, गुमानपंथी समैया, दस्सापक्ष, बीसापक्ष, शुद्धाम्नायी, अशुद्धाम्नायी, छापापक्षी, छापानिंदक आदि परस्पर विरोधी मतभेद इतने खड़े हो गए हैं कि एक दूसरेकी हानिमें आनन्द मानकर सामान्योन्नतिमें भी मेल करनेसे संकोच करते हैं और सामुदायिक जैनत्वके बलको खोए बैठे हैं। उद्योगी व सिंहवृत्तिसे जीविका प्राप्त करनेवाले भारतवासी ऐसे निरुद्यमी और पुरुषार्थहीन हो गए हैं कि हजारों बार प्रस्ताव पास होने व उपदेश देनेपर भी कन्याविक्रय जैसे घृणित व्यापारमें मुग्ध हैं। परम शोक है कि जैनसमाज उन अनेक ताम्रपत्र तथा शिलालेखों को जो कि श्रद्धानपुष्टि और गौरव के लिए लिखे गये थे भूले पड़े हैं और प्राचीन इतिहास प्रेमी, राज्याधिकारी तथा इतर अजैन महाशय खोज करके उनका महत्त्व बताते वा अर्थ समझाते हैं। अति विषाद का अवसर है कि जिस जैन धर्म का चहुँ ओर डंका बज रहा था, और वर्तमान में भी जिसके अनुयायी भारतीय व्यापार के लिहाज़ मालिक समझे जाते हैं, उन्हीं क्षत्रिय-सन्तान जैनों का एक भी प्रतिनिधि वाइसरॉय की कौन्सिल में दृष्टगत नहीं होता। विस्मय स्थान है कि जिन जैनियों ने असंख्यात जीवों के प्राण यज्ञहोम की अग्नि से बचाये, उन्हीं आत्म स्वरूप के मर्मज्ञ, शुद्ध निर्दोषी परमात्मा के उपासक, दयाधर्म्म के प्रचारक जैनियों पर लोग वाममार्गी और नास्तिक शब्दों की पुष्पवृष्टि करके अपनी कृतज्ञता का परिचय दे रहे हैं।

परम आश्चर्य है कि भारतसन्तान संस्कृतविद्या व आत्मविज्ञान की उपेक्षा करके विदेशी भाषाओं और विद्याओं पर ऐसा मुग्ध हो जावे कि भारतीय आचार्यों और विद्वानों के वाक्य, उनका आयुर्वेद, ज्योतिष, मन्त्रविद्या, तन्त्रशास्त्रादि बिना पढ़े विचारे ही मिथ्या आडम्बर समझने लगे, और देशीय रीति-रिवाजों को त्याग कर उदरपरतन्त्रता के साथ साथ खानपान, रहन-सहन, वस्त्राभूषण में भी परतन्त्र हो जावे। शारीरिक शिक्षाकी प्रणाली भारत से छूमन्तर हो गई है और भारतसन्तान बाल-विवाह के विष से वीर्यहीन और बलहीन, तथा अप्राकृतिक शिक्षापद्धति से आँखफूटी और कमरटूटी होकर आत्मरक्षा में भी अशक्य है। खेदका स्थान है कि पारस्परिक खानपान विवाहादि कार्य्यों में वर्णव्यवस्था के उपरान्त जातिचक्र की भी अर्गला लगा दी गई है और बालविवाह की तरह अनावश्यक तथा हानिकर प्रतीत होनेपर भी यह निगल हटाई नहीं जाती; जिससे एक वर्ण और एक धर्म्मावलम्बी आपस में भोजनादि करके अपने वात्सल्य-भाव को व्यवहृत रूप में प्रगट कर सकें।

परन्तु, सज्जनवृन्द, जिस परिवर्तन नियम से भारत का पतन हुआ वह ही परिवर्तन नियम अब इसको उन्नत भी कर रहा है। अब भारतमें पुनरुत्थान सूर्य का उदय हुआ है। बहुत काल तक पाश्चात्य देशों को यथायोग्य जागृत करता हुआ, सबको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार अनेक व्यवसायों में लगाता हुआ उन्नतिका सूर्य भारतभूमि पर उदय होकर भारतवासियों को जगा रहा है, देश प्रेम की शीतल और मृदु समीर पराक्रम के सुगन्ध सहित चहुँ ओर चल रही है, कलाकौशल के पक्षी अपने मनोहर कलकल से निरुद्योगियों के चित्त को भी आकर्षित कर रहे हैं, और राज्यभक्ति की सुखवीणा ऐसी मधुर बज रही है कि समस्त भारत में शान्ति तथा एकताहीका आलाप सुनाई देता है, अविद्या की रजनी ने विदाई ली है, और ज्ञानके उजाले के सामने भ्रम व कदाग्रह के तारे अस्त हो चुके हैं, धर्म्ममन्दिरों के घंटे भी ज़ोर ज़ोर से बजने लगे हैं, और उपदेशक रूपी कुक्कुट अपने रवसे सोनेवालों को अन्धविश्वास की निद्रा त्यागने के लिए

पुकार रहे हैं, और सम्राट् जार्जका न्याय नक्कारा लार्ड हार्डिङ्ग के हाथों से प्रभातध्वनि कर रहा है।

बन्धुओ, ऐसे प्रभात के होते ही भारत में अनेक प्रकार के जागृतिसूचक व्यवसाय शुरू हो गये हैं। राष्ट्रोन्नति के लिए नेशनल कांग्रेस, मुस्लिम लीग, व्यापार व शिल्प की उन्नति के लिये इंडस्ट्रियल कांफ्रेंस, साधारण सदाचार प्रचार के लिए टेम्परेंस सोसाइटी, एकलिपि प्रचार के अर्थ एकलिपि परिषद्, सर्व धर्म्मों के तत्त्व खोजने के उद्देश से कन्वेन्शन ऑफ़ आल रिलीजन्स, इत्यादि अनेक प्रकार की देश व्यापक सभाएँ अपना अपना कार्य बहुत परिश्रम से कर रही हैं। स्थान स्थान पर कालिज, स्कूल, बोर्डिङ्ग, गुरुकुल, ब्रह्मचर्याश्रम, अनाथालय, विधवाश्रम, टेक्निकल स्कूल, इतिहास, सोसाइटी, पांजरापोल आदि भाँति भाँति की संस्थाएं स्थापित हो रही हैं। विज्ञान और शिल्प के आविष्कार भी होने लगे हैं; और यद्यपि सस्ता और महीन नहीं तो भी भारत में सर्व प्रकारका आवश्यक सामान बनने लगा है। इधर धार्मिक मैदान में भी बड़ी प्रतिद्वन्द्वता से घुड़दौड़ हो रही है; सर्वमतावलम्बी अपने अपने धार्मिक सिद्धान्तों के प्रचार में तन मन धन से कटिबद्ध हैं, और यथाशक्ति नवीन नवीन प्रकार के उपाय कार्य में ला रहे हैं। शिक्षालय, रोगचिकित्सालय अनाथ अपाहिजों का भरणपोषण, उपदेशकप्रेषण, आदि द्वारों से भिन्न-भिन्न धर्म्मों का प्रचार हो रहा है।

धार्मिक श्रद्धान, शिल्पकला, वाणिज्य व्यापार, राज्यनीति आदि जीवन के प्रत्येक विभाग में एक नवीन ही जागृति शुरू हो गई है और हरएक दूरदर्शी देख सकता है कि यह जागृति भारत में क्या-क्या न कर दिखावेगी।

महाशयो, मुझे यह कहते हुए बहुत हर्ष होता है कि हमारी जैन समाज भी यद्यपि सबके पीछे जागृत हुई है तथापि अब समय की चाल पूर्ण नहीं तो कुछ कुछ समझने लगी है। बम्बई, शोलापुर, लाहोर, जबलपुर, अलाहाबाद आदि स्थानों के बोर्डिङ्ग,

भारतजैनमहामंडल, जैन अनाथाश्रम, काशी स्याद्वाद महाविद्यालय, जैन सिद्धान्त पाठशाला मुरैना, वङ्गीय सार्वधर्मपरिषद्, भारतवर्षीय जैनशिक्षा प्रचारक समिति जयपुर, जैनग्रंथरत्नाकर कार्यालय, श्राविकाश्रम बम्बई, श्रीजैनसिद्धान्त भवन आरा, और श्री ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुर, आदि संस्थाओं से यह बात भली भाँति स्पष्ट है। नगरों और ग्रामों में जैनबाल सभाएँ व पाठशालाएँ खुलती जा रही हैं, और नवयुवकों की प्रेरणा से व्यर्थ रिवाजों और धर्मविमुख तथा जैन नामको लजानेवाली कुरीतियों का शनैः-शनैः ह्रास हो रहा है। इधर जैनतत्त्वप्रकाशिनी सभा इटावा ने स्याद्वादवारिधि वादिगजकेसरी पंडित गोपालदास जी, तथा क्षत्रिय कुँवर दिग्विजयसिंह जी के द्वारा समस्त भारत में सिंहगर्जना से जैन धर्म्म की घोषणा फेर दी है, और अब आत्मस्वरूपगवेषियों को जैनधर्म्म का महत्त्व प्रगट होने लगा है। बाबा भागीरथ जी वर्णी के उपदेश से स्थूल बुद्धि के जाटों ने भी जैनधर्म्म अङ्गीकार किया है; और भारत में ही क्या इग्लैंड में भी भारतजैन महा-मंडल के सभापति जुगमन्दर लाल बैरिस्टर तथा पंडित लालन के उपदेश से मि० वारनने जैनधर्म्मानुसार पंचाणुव्रत ग्रहण किये हैं और इसमें अत्युक्ति नहीं होगी यदि हम कहें कि उक्त वारन महाशय ने जैनधर्म्म के श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र में हममें से हजारों को एक आश्चर्यजनक दूरी पर पीछे छोड़ दिया है। धर्म्म-प्रेमियो, मुझे आशा है कि उपर्युक्त उन्नति सूचक कार्यों को सुन कर हरएक जैनबन्धु के मुख से हर्षसहित 'जैनधर्म्म की जय' ऐसे शब्द अवश्य निकलेंगे; क्योंकि अपनी मातृभूमि और स्वधर्म्म तथा स्वधर्म्मियों की उन्नति पर हर्षित न होनेवाले जीवनमृत होते हैं। परन्तु आनन्द वास्तविक वह ही होता है जो दिन प्रति दिन स्थिर और वृद्धिगत होता रहे, और यह उस ही समय सम्भव है जब कि आप लोग स्वयं निजाधार पर उस आनन्द प्राप्ति की चेष्टा करेंगे।

मुझे खेद है कि अभी आप लोगों में ९९५ प्रतिसहस्र तो अचेत सो रहे हैं, उनको लेश भी खबर नहीं है कि संसार में क्या-क्या परिवर्तन हो गये हैं, और भावी में क्या होते जावेंगे; उनमें जिनको

विचारशक्तिका अंश भी नहीं दिखलाई देता, और वे क्या धार्मिक विश्वासों में, और क्या सामाजिक उन्नति में—अन्यजनोंके हांके हुए हँकते हैं। ऐसे व्यक्ति सदैव परमुखापेक्षी रहते हैं और उनके लौकिक व पारमार्थिक उभय प्रकार के व्यवहार बिना पेंदेके लोटे की तरह इधर उधर लुढ़कते रहते हैं। १० प्रतिलक्ष हममें ऐसे मिलेंगे जो अपने को बहुज्ञानी और जैनधर्म्म के सच्चे हितैषी बताते हैं, और जो समझे हुए हैं कि उनके विचार ही सर्वज्ञवचनानुकूल हैं। परन्तु यदि आप गूढ़ दृष्टि से कार्य लेंगे तो स्पष्ट विदित होगा कि जो अपने आपको बहुज्ञ कहते हैं, और जिनको दूसरों के विचार सुनने तक का धैर्य नहीं होता वे ही प्रथम श्रेणी के अज्ञ होते हैं। ऐसे पुरुषों के विचारों की परिधि केवल गली सड़ी रूढि होती है; उनकी क्रियाएँ भावशून्य और दिखलावेकी होती हैं, और उनकी जात्युन्नति का केन्द्र स्वाभिमान पोषण है। इतिहास के पत्रों को खोलके देखिये तो आप को बोध हो जावेगा कि स्वमति-शक्तिरहित जन-समाज के नेतृत्वका पद यदि भाग्यवश ऐसे महानुभावोंको प्राप्त हो जाता है तो वह समाज कभी न कभी अवश्य दुर्निवार आपत्ति में गिरकर अपना सर्वस्व खो बैठती है। दो प्रतिलक्ष इस प्रकार के सज्जन हैं जो उन्नति व उन्नति के मार्ग को सुष्ठु विचारपूर्वक अनुभव करते हैं, जो आर्षवाक्य और उनके सत्यार्थ को ही उन्नति का सूत्र समझते हैं, जो स्वतन्त्रतया विचारों के लेन-देन का व्यापार ही उन्नतिधन मानते; हैं परन्तु इतना होते हुए भी बहुमतकी प्रतीक्षा में समय खो रहे हैं। अब आप स्वयं विचार सकते हैं कि इस समय जैन जाति का पुनरुत्थान कितने गिने चुने व्यक्तियों के आधार पर है।

विवेकी भ्रातृगण, मैं आपको खुले तौरसे जताये देता हूँ कि यह समय पुनरुत्थान का है; विद्या की ज्योति और उसकी अनिवार्य सहचरी तर्कशक्ति घर-घर में पहुँच रही है। स्वयं निश्चय किये बिना अब कोई किसी की बात नहीं मानेगा और न भयसे कोई अपने मनोगत भावों को छुपाने ही का प्रयास करेगा। "कथं, कस्मात्" की वायु बड़े वेगसे चल रही है, और "पहिले से ऐसा ही होता है" ऐसा उत्तर अब जिज्ञासा की क्षुधा को तृप्त नहीं कर

सकता। अब माता-पिता वा गुरुओं को अपनी सन्तान वा शिष्य-वर्ग को प्रत्येक आज्ञा के लिए कारण देने होंगे, थप्पड़ व कमृची से काम नहीं चलेगा। यह परीक्षा-प्रधानी समय क्या लौकिक और क्या पारमार्थिक सर्व प्रकार के विश्वासों की नींव तक पहुँच रहा है। जिनकी नींव कच्ची है अथवा जो इस समय में अनावश्यक हैं ऐसे विश्वास और क्रियाएँ जड़ से उखाड़ कर फेंकी जा रही हैं; परन्तु जिनकी बुनियाद पक्की है और जो समय की जरूरत को भी पूरने वाले हैं, वे चाहे प्राचीन हों या अर्वाचीन, सब सहर्ष जमाये जाते हैं, और आदर सत्कार प्राप्त करते हैं। कई पुराने रीति रिवाज टूट रहे हैं और नवीन उनकी जगह पर स्थान पा रहे हैं,कई परम्परागत अन्धश्रद्धाओं और क्रियाओं से विश्वास उठ गया है; कई प्राचीन विधियों का पुनर्जन्म हो रहा है और कई नवीन का उनमें मिश्रण किया गया है। अब पुराने स्वर्णपात्रों में नवीन पानी भरा जाता है। काल की बेरोक गति अनादि काल से ऐसा ही करती आ रही है; द्रव्य नाश नहीं होता, परन्तु उसकी पर्यायों में रूपान्तर अवश्य होता है; सत्य नाश नहीं होता, परन्तु उसके व्यवहार मार्ग में जरूर फेर-फार करना होगा; तीर्थक्षेत्रों की यात्राएँ बन्द नहीं होंगी, परन्तु बैलगाड़ी के स्थान पर रेलगाड़ी में सवार होना होगा, मोटरों में बैठना होगा और थोड़े ही काल के पश्चात् स्यात् उड़न खटोलों में भी जाना पड़ेगा। यदि इससे विरोध होगा तो यात्राएँ होना ही बन्द हो जावेंगी। मूलको नाश करके शाखा की रक्षा करने वाले सर्वस्व ही खो बैठते हैं। यदि पूछा जाय कि ऐसा क्यों होता है, तो इसका उत्तर समय ही देगा।

प्रिय बन्धुओं, ऐसे पुनरुत्थान के समय में आप लोगों को भी अपनी पुरानी टूटी फूटी चाल बदलनी होगी, व्यर्थ के कदाग्रह छोड़ने होंगे; "नवीन बात तो धर्मविरुद्ध ही होती है," ऐसे विश्वास गिरा देने होंगे, आपको जैनाचार्यों की बहुत सी पुरातन दबी हुई आज्ञाओं को उन्नति-सूर्य की रोशनी में लाना होगा, और अनेक व्यर्थ दिखलावे के आडम्बरों को त्यागना पड़ेगा। समय आपसे आपके विश्वास और क्रियाओं के प्रमाण मांगेगा और आपको उनकी सिद्धि शास्त्रानुसार करनी होगी; अन्यथा विपक्षावस्था में

उनको छोड़ना होगा। 'शास्त्र छपाना महान् पाप है,' 'अंग्रेजी पढ़ने वाले भ्रष्ट होते हैं, "सम्यक्त्वी तो इस समय मेंहोना ही असंभवसा है,' "त्यागी व्रती तो कोई हो ही नहीं सकता;" "बाप-दादों की रसम छूट नहीं सकती," "स्त्रियाँ पढ़ने लिखने से विधवा हो जाती हैं," इत्यादि अनेक एकान्त विश्वासों का आपको बहिष्कार करना पड़ेगा। अब जैनधर्म्म पूर्वाचार्यों की आज्ञानुसार ही चलेगा, कपोलकल्पित व कपायप्रेरित बातों से इसकी गति नहीं हो सकती। तदुपरांत इस समय पदार्थविज्ञान के अनेक अद्भुत उपयोगी आविष्कारों से दुनियाँ की अवस्था बदल गई है। हमारे समस्त कार्य अब समयानुसार उचित रीतियों से होंगे अत: हम लोगों को यदि जीवित रहना है, तो शिक्षा में, धार्मिक विश्वासों व क्रियाओं में पारस्परिक व्यवहारों में, वाणिज्य व्यवसायों में, रीतिरिवाजों में, खाने-पीने पहिनने आदि के नियमों में अर्थात् जीवन के प्रत्येक कार्य में हमको धर्म से अविरुद्ध परिवर्तन अवश्य करने पड़ेंगे, और यद्यपि थोड़े समय के लिये, व्रण चीरने की वेदना के समान यह परिवर्तन स्थूलदृष्टि में खटकेंगे, परन्तु वास्तव में इन्हीं से जैनधर्म्म की रक्षा होगी, और जैन का अबाध्य अस्तित्व इन्हीं से रहेगा, कालान्तर में ये ही परिवर्तन सर्वमान्य व निर्दोप माने जाकर दृढ़ रूप से व्यवहृत हो जावेंगे।

धर्मवीरों, अब समय निद्रा व आलस्य का नहीं है और न बहुमत की अपेक्षा व लोकमत से भय करने का है। हम सबको कमर कसके खड़े हो जाना चाहिये और निर्भय होकर अप्रतिहत परिश्रम से भगवान् महावीर की जय बोलते, धर्मोन्नति व देशोन्नति के मैदान में बाजी जीतनी चाहिये। समय आपके मुख की ओर देख रहा है, विज्ञान की वायु जैन धर्म्म के अनुकूल चल रही है और राजनीति भी तुम्हें ही सहारा देती है।

एक समय वह था जब इतिहास लेखकों ने जैन धर्म्म को बौद्ध धर्म्म की शाखा लिख दिया था, आज भी एक दिन है कि जैकोबी, ब्यूलर, हरटेल आदि विद्वान अपनी खोज से जैनधर्म्म व जैन दर्शन की स्वतन्त्रता के विषय में सैकड़ों प्रमाण दे चुके हैं;

पाश्चात्य देशों की वेजीटेरियन सोसाइटीज़ (माँसाहार निषेधक सभाएँ), शान्ति प्रचारक सभाएँ, प्रत्यक्ष सूचना दे रही हैं कि अब मानव जाति उस ही धर्म्म को श्रेष्ठ और मान्य समझेगी जिसमें 'जीवदया' और 'अहिंसा परमो धर्म्मः' का उपदेश पूर्वापर विरोधरहित दिया गया हो, जो प्राणवध में कदापि धर्म्म न समझे तथा जिसमें आवश्यक अनावश्यक हिंसा का भेद ही न हो। उपर्युक्त गुणों से विशिष्ट धर्म्म पृथ्वी में केवल जैनमत ही है और मुझे प्रत्यक्षवत् भासता है कि अब वह समय दूर नहीं है जब कि जैन धर्म्म पुनः दुनियाँ भर का मान्य-धर्म्म हो जावेगा। अब चहुँ-ओर स्वतन्त्र शासन की पुकार हो रही है और मुझे कोई बाधा विदित नहीं होती कि बाह्य स्वतन्त्रता के अभिलाषी, आत्मिक स्वावलंबन की ओर क्यों न झुकेंगे। जैन धर्म्म स्वभुजबलावलम्बी क्षत्रियों द्वारा प्रणीत हुआ है; इसमें मोक्ष, ईश्वर की कृपा व उससे भिक्षा मांगने से नहीं मिलता और न मोक्ष के लिए जैनधर्म्म किसी की सिफ़ारिश ही की जरूरत समझता है। इस धर्म की नींवका पत्थर आत्मकृपा का प्रत्यक्ष सिद्धान्त है। इस उन्नत समय में जैन धर्म्म ही सार्वधर्म्म होगा। जिस प्रकार 'एकलिपिपरिषद्' नागरी लिपि का प्रचार कर रही है, उस ही प्रकार 'एक धर्म्म परिषद्' की भी आवश्यकता होगी और वह 'एकधर्म्म' वीतराग अर्हत्प्रणीत आत्मशासन-प्रचारक जैम धर्म्म ही होगा। ऐसे सुअवसर को पाकर भी यदि हम लोग गद्दों पर पड़े-पड़े करवटें बदलते रहेंगे तो मुझे यह ही कहना पड़ेगा कि हम केवल नाममात्र के जैनी हैं; जैन धर्म्म का जोश हममें नहीं है, और जो कुछ सभा आदि हम करते हैं वे केवल ख्यातिलाभ के लिए हैं, और हमारी आत्माएँ अभी उन अन्धेरी कोठरियों में ही हैं, जहाँ उन्नति की झलक नहीं पहुँची।

बन्धुओं, धर्म्मोन्नति व जात्युन्नति के लिए जो-जो मार्ग साधारणतः आजकल बताये जाते हैं वे आप महानुभावों से अविदित नहीं हैं, धार्मिक व लौकिक विद्या का प्रचार, स्त्री शिक्षा, कुरीतिनिवारण, व्यर्थव्यय निषेध, ऐक्यवृद्धि, आदि अनेक उन्नति के साधनों पर प्रत्येक वर्ष सभाओं में प्रस्ताव पास होते हैं; परन्तु हम उन्नति

के निकट कितने पहुँचे, हमारी गति मन्द है वा तेज़, अन्य जातियों से हम कितने पीछे हैं और अब शीघ्र सफलता कैसे प्राप्त होगी, हमारी समाज अभी तक बातों ही बातों से सन्तुष्ट होने वाली है वा कुछ करके भी दिखलाने वाली है, हमारी संख्या ह्रास पर है वा वृद्धि पर, और क्यों ?—इत्यादि विषयों पर हम लोग बहुत ही कम विचार करते हैं। हम सबसे पीछे जागृत हुए हैं अतः हमको अब अपनी चाल बढ़ाना चाहिये।

प्रिय बन्धुवर्ग, इस समय आप महाशयोंके सन्मुख मैं कतिपय ऐसे विषय रखता हूँ कि जो हमारी शीघ्र व दृढ़गतिके लिए ऐसे ही आवश्यक व अनिवार्य हैं जैसे कि जीवपुद्गलकी गतिके लिए धर्म्मद्रव्य; और जिनके बिना हमारे प्रायः सर्व प्रस्ताव शाब्दिक रूपमें ही रह जाते हैं।

बन्धुओं, प्रत्येक धर्म्म व जातिका गौरव उसके त्यागभावपर निर्भर है; और विशेष करके यह त्यागभाव जैनधर्म्मका तो एक मुख्य अंग है। हमारे नेता अनादिकालसे त्यागी ही होते आये हैं; और जबसे इसमें त्रुटि होने लगी है, तबहीसे पारस्परिक विरोध, थोकबन्दी आदि ऐक्यनाशक दोषोंने हमारे सामाजिक बलको नष्ट कर दिया है। समदृष्टि और सर्वाकर्षण नेताके मुख्य गुण हैं और ये त्यागहीसे उत्पन्न होते हैं; परन्तु त्यागसे मेरा मतलब अक्रमत्यागसे नहीं है कि जिसने वास्तविक त्यागके उद्देश ही को हममें से लुप्त कर दिया है, त्यागसे मेरा प्रयोजन आचार्योक्त क्रमानुसार, ज्ञानपूर्वक प्रतिमा सेवनसे है; त्यागसे मेरा अर्थ आत्मोन्नतिकी उस अग्निसे है कि जिसमें अहंकार व ममत्वकी आहुति हो जाती है और जीवन एक परोपकारमयी ज्योति होकर समस्त संसारके लिए पूज्य आदर्श होता है। यद्यपि ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, श्रीऋषभब्रह्मचर्याश्रमके संस्थापक बाबा भागीरथजी, ब्रह्मचारी भगवानदीनजी, व गेंदनलालजीने शिक्षित, जातिहितैषी, धर्म्मज्ञ त्यागियोंके अभावको कुछ दूर किया है, तथापि जो संख्या ऐसे त्यागियोंकी समाजोन्नतिके लिए आवश्यक है, उसका सहस्रांश भी पूरा नहीं है। शिक्षित त्यागी क्या कर सकते हैं, और समाजकी उन्नति ऐसे ही महात्माओंसे हो सकती है, यह बात इनकी

जीवनीसे स्पष्ट विदित है, अतः एक ऐसे वृहत् त्यागीमण्डलकी स्थापना होनी चाहिए कि जिसके सभासद् गृहत्यागी, वा परिमित वृत्तिके गृहस्थ हों। वे सर्व एक नियमित शासनपद्धतिके अनुसार जातिसेवाका कार्य करें। हमारा धर्म्म और समय चाहता है कि क्या धनिक, प्रतिष्ठित और क्या पण्डितजन सबको मिलकर जातिसेवाके लिए अपना जीवन समर्पण करना चाहिए; केवल बातोंसे अब कार्य नहीं चलेगा। धर्म्मोन्नतिके व्यापारमें जितनी अधिक त्यागकी पूंजी आप लोग लगायेंगे उतना ही अधिक लाभ व दृढ़ प्रभावना होगी। दो चार सौ वा हज़ार दश हज़ारकी सम्पत्ति छोड़नेवालेका प्रभाव इस समय ज्यादा नहीं पड़ सकता। जैनधर्म्मकी सच्ची प्रभावना तब ही होगी जब कि सेठ साहूकार, राजकीयपदाङ्कित महोदयगण, वकील बैरिस्टर, इञ्जिनियर, डॉक्टर, संसारके प्रवृत्ति मार्गको जलाञ्जलि देकर निवृत्तिमार्गमें आवेंगे और वज्रदन्त चक्रवर्तिकी सी वैराग्य भावना भावेंगे।

धार्मिक बन्धुओं, इस त्यागी मण्डलकी स्थापनाके साथ २ आपको जातिभेदके अनावश्यक व शास्त्राज्ञाबाह्य बन्धनको भी शनैः-शनैः ढीला करके सर्वथा तोड़ डालना चाहिए। हमारे शास्त्रोंमें वर्णाश्रम धर्म्मका लेख है, प्रायश्चित पाठोंमें भी वर्णोंका ही कथन है; भगवद्जिन-सेनाचार्यकृत महापुराण भी इसहीकी साक्षी देता है कि आदिब्रह्मा श्रीऋषभदेवने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह वर्णत्रय स्थापन किया और तत्पश्चात् उनके पुत्र भरत चक्रवर्तीने ब्राह्मणवर्ण स्थापन किया। इस प्रकार चार वर्णोंका व्यवहार कर्म्म-भूमिकी आदिमें प्रारंभ हुआ था। अग्रवाल, खण्डेलवाल, परवार, ओसवाल, हूमड़, शेतवाल आदि भेदोंका उल्लेख कहीं भी नहीं मिलता और जैसे खण्डेला ग्रामके क्षत्रिय तथा इतर वर्णीय, जैनधर्म अंगीकार करने-वाले खण्डेलवालोंके नामसे विख्यात हुए, राजाअग्रकी सन्तान-वाले अग्रवाल कहलाए; इस ही प्रकार अनेक जातियां उत्पन्न हुईं और होती रहती हैं। इक्ष्वाकुवंश, हरिवंश, कुरुवंश आदि वंशोंकी उत्पत्ति भी इस ही तरह हुई है। परन्तु जैसी खानपानादि व्यवहारकी संकीर्णता इस समय दिखलाई देती है, वैसी पहिले कभी नहीं थी। धार्मिक सिद्धान्त और प्रकृतिके

अनुसार वर्णाश्रम बन्धन की आवश्यकता तो प्रतीत होती है ; परन्तु जातिभेद तो व्यर्थ उन्नतिबाधक व वात्सल्यघातक जंजीर है। इससे हमारी मूल वर्णाश्रम धर्म्मशृङ्खलाहीका पता जाना रहा। मुझे कोई कारण नहीं विदित होता कि जैनधर्म्मावलम्बिनी समान वर्णकी जातियाँ परस्परमें रोटीबेटी का व्यवहार क्यों न करें ! न धर्म्म ही इसको रोकता है और न कोई लौकिक हित हीं इससे होता है। जिन जातियोंमें जैन व अजैन दोनों धर्म्म प्रचलित हैं, उनमें यदि जैनकी अल्प संख्या होती है तो वे अजैनसे विवाह आदि व्यवहार करते हुए बहुत दुःख सहते हैं और उनकी पुत्रियोंको विवश जैनधर्म्म त्यागना पड़ता है; अजैनोंकी पुत्रियाँ जो उनके घरोंमें आती हैं वे जैन संस्कारसे शून्य होती हैं, जिससे भावी सन्तान भी जैनत्वशून्य ही रहती है धर्म्मोन्नतिके प्रेमियो, ज़रा विचारो कि इस जातिबन्धनसे धर्म्मको कितनी हानि पहुँची है ! इसे हठ और हानिकारक रूढ़ि न कहें तो क्या कहा जावे ! अतः यदि आप धर्म्मोन्नतिके इच्छुक हैं तो वर्णाश्रम धर्म्मको दृढ़ कीजिए और जातिबन्धनको उच्छेद कर जैनधर्म्मकी वात्सल्य डोरसे जैनजातिको बलिष्ट करनेका उद्योग कीजिए।

बन्धुओं, कौन ऐसा जैनी है जिसका हृदय इस बातको सुनकर दुःखित नहीं होता कि गत मनुष्यगणनामें जैनियोंकी संख्या क़रीब १२ लक्षके आई है। स० १९०१ ई० की गणनासे करीब एक लक्ष जैनी कम हो गये हैं; प्रत्येक मनुष्य-गणनामें जैन-संख्या न्यून ही न्यून होती जाती है, और यदि यह ही ह्रासक्रम जारी रहा तो १५० वर्षके पश्चात् भारतवर्षमें जैनी नाम को भी न मिलेगा। अपको विदित है कि हर एक धर्म्म व जातिका बल उसकी जनसंख्यापर निर्भर है। अन्य धर्म्मावलम्बियोंकी अपेक्षा हमारी संख्या मुट्ठीभर है, फिर हमारा प्रभाव व राष्ट्रबल क्या हो सकता है ! तदुपरान्त जिस स्रोतमेंसे पानी खर्च ही खर्च होगा और आमद कुछ नहीं होगी, फिर वह शुष्क न होगा तो क्या होगा ? कर्म्मोंके आश्रवनिरोध और निर्जरासे तो मोक्ष ही होता है। यदि हममें मिथ्यात्वविमोचनके द्वारा नवीन संस्कृत जैन न बढ़ेंगे तो हम लोग स्वयं भी उत्साहहीन हो जावेंगे। बन्द

तालाबका पानी गन्दा अवश्य हो जाता है। आज कुँअर दिग्विजयसिंहजी जो काम कर रहे हैं, और थोड़ेसे समयमें जो कुछ उन्होंने अपने जीवन को उदाहरणरूप करके दिखलाया है वह किसी भी जैन ने करके न दिखलाया। इसका कारण वह ही है कि हम लोग निजको जैनधर्म्मके ठेकेदार समझते हैं। ऋषियोंकी छोड़ी हुई निधियोंके हम कोषाध्यक्ष हैं। परन्तु कृपण हो गये हैं। जैनधर्म्मके प्रकाशनसे हम विमुख हो रहे हैं, हमारे सिवाय किसी अन्यका जैनी होना हम असंभव समझते हैं। यदि कोई जैनधर्म्म अंगीकार करता है तो हम उसको अपनेमें मिलाना और उसका यथायोग्य आदर सत्कार करना बुरा समझते हैं। हमको यह विचार नहीं होता कि तीर्थंकरोंके समवसरणमें सर्व प्रकारके मनुष्य उपदेश सुननेको आते थे। वहाँ तिर्यंच तक भी वर्जित नहीं थे, फिर शूद्रों की बात ही क्या! हमारे आचार्योंने भी ऐसा ही किया है। जैसे आजकल ईसाई व आर्यसमाजी ग्रामोंके ग्राम ईसाई वा दयानन्दी बना लेते हैं, वैसे ही जैनाचार्य करते थे, इतिहास इसका स्पष्ट प्रमाण देता है। खेद है कि हम लोग अपने पूर्वजों के मार्गोंको त्यागते जाते हैं और निजकल्पित रोकें लगा २ कर अपने आपको नाश कर रहे हैं। सज्जनो, अब समय भी बलवान् हो गया है, जैनधर्म्मके विषयमें जिज्ञासा चहुँओर फैल गई है, आत्माएँ अपना भोग मांगने लगी हैं, आपको स्मरण रहे कि आप जैनधर्म्मको कितना भी छुपाकर रखिये, आप कितने ही दृढ़ बद्धमुष्टि रहिए, यह धर्म्मामृत दूसरोंके हाथों में भी जावेगा; यह भगवान महावीरका प्रसाद लोग बाँट २ कर अवश्य खायेंगे, इसलिए आप ही सुगमतासे इसके प्रचारमें कटिबद्ध होकर यशके भागी हो जावें तो अच्छा है; अन्यथा समय तो जो कुछ चाहेगा वह करा ही लेगा। अब चमत्कारके दिन हैं, बीसियों सम्यक्त्वी जीव प्रगट होंगे, यहाँ तककी शूद्र और म्लेच्छ भी सम्यक्त होकर मोक्षसुखके पात्र बनेंगे। ब्रिटिश-शासनके शान्तिमय राज्यमें अब निर्भय होकर जैनधर्मका झंडा खड़ा करना चाहिए। हमको जिनवाणी, जीवमात्रको चाहे किसी भी जाति व वर्णका क्यों न हो बिना संकोच सुनानी चाहिए और जैनोंकी संख्या

स्मरण करेंगे। मेरी कामना है कि गुरुदेव के प्रसाद से वह दिन आवे कि हम लोग पारस्परिक द्वेष, ईर्षा को त्याग कर धर्मोन्नति व जात्युन्नति में कटिबद्ध हो जावें। मेरी तीव्र इच्छा है कि दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी, आदि भिन्न भिन्न आम्नायाश्रयी पारस्परिक धार्मिक भेदों के कारण सामान्योन्नति में पृथक् न रहेंगे किन्तु जैन सामुदायिक बलको वृद्धिंगत करने में प्रयत्नशील होंगे और शीघ्र ही एक Central Jain College खड़ा कर देंगे। मेरी उत्कट अभिलाषा है कि जैनियों के घर घर में विद्या, धन, धान्यादि की वृद्धि हो, आबालवृद्ध यथाशक्ति त्रिकाल सामयिक व स्वाध्याय करें; जैनधर्म्म के सिद्धान्तों की चर्चा ऐसी रोचक और प्रिय हो जैसे ताश खेलना और पतंग उड़ाना; जैनधर्म्म का स्वरूप प्रत्येक जैनी के जीवनचरित्र और व्यवहार कार्य्य से विदित हो, और जैनधर्म्म का महत्त्व हमारी प्रत्येक लौकिक क्रियापर अङ्कित हो। और मेरी लालसा है कि मुझे उस समय के देखने का सौभाग्य प्राप्त हो जब कि ग्राम ग्राम में धर्म्मज्ञ Graduate जैन मुनियों का संघ विहार करता हुआ जीवोंको भवाब्धिमें गिरने से बचावे, और मैं उनके दर्शनों से अपने नेत्रों को सफल करके उन्हीं में तन्मय हो जाऊँ। मेरी अन्तिम प्रार्थना है कि:—

"क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान्, धार्मिको भूमिपालः।
कालेकाले च सम्यग्विकिरतु मघवा, व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्मभूज्जीवलोके।
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायी।"

(ब) कविता

१–पुत्र अभिनन्दन प्रसाद के विवाहोत्सव पर, दिसम्बर १९२२*

छन छन छन छन सब कहें,
विरले कहते छन्द ।
छन्द सुनो मन लायके,
सुखकारी दुख कंद ॥

(२)

जिन्दल गोत्रज, अजित सुत,
अभिनन्दन शुभ नाम ।
देवी मनोहरी जन्मियो,
दिल्ली नगर अभिराम ॥

(३)

अवध देश, लक्ष्मणपुरी,
लखनऊ नाम विख्यात् ।
शिक्षा बालक समय की,
तहाँ दीनि मम तात ॥

(४)

फिर काशी में वास कर,
विद्याध्ययन कराय ।
गृहस्थ धर्म पालन निमित,
विवाह् संस्कार रचाय ॥

(५)

जिन समाज जिन धर्म की,
सेवा धर्म महान ।
हो यह आशा सफल मम,
दीजे आशिष दान ॥

---

*पाणिग्रहण-संस्कार के बाद एकत्रित महिलाओं के सम्मुख अभिनन्दन ने पढ़ा ।

२–रायसाहब रूपचंद जैन की भतीजी मान कुमारी के विवाह पर, जनवरी १६२८

शहर दिल्ली है हिन्दोस्तान के शहरों में लासानी[१] ।
वह ताजे हिन्द है, जाए हुकूमत अपना खुद सानी[२] ॥
जो मूरिस[३] राम के थे-थे वह राजा शहर दिल्ली के ।
दिलीप[४] उनको जो कहते थे, वह थे अलकाज़ पुरमानी ॥
शहर दिल्ली ही पृथ्वीराज की भी राजधानी थी ।
वहीं पर की मुग़लिया बादशाहों ने हुकुम-रानी ॥
जमाई सल्तनत अपनी मरहटों ने भी दिल्ली में ।
और उनसे लेके बृटिश ने सँभाली बाग सुल्तानी ॥
उसी दिल्ली में करज़न ने किया दरबार पुर रौनक़ ।
वहीं पर हार्डिंग ने भी किया एलान सुल्तानी ॥
कि मरकज़ हुक्मरानी का बने दिल्ली सरे नौ[५] से ।
यहीं पर ज़ेब[६] देता है जमाना तख्त सुल्तानी ॥
लगी बनने नई दिल्ली जहाँ पहले भी थी दिल्ली ।
पुरानी ख़ाक में डाला गया है अब नया पानी ॥
वह मरकज़ है तिजारत का वह है तहज़ीब का मरकज़ ।
वह मरकज़ है रियासत का वह है एक शहर नूरानी[७] ।
वह मरकज़ जैन मज़हब का जहाँ जिनराज का मन्दिर ।
बनाया लाला हरसुख दास ने ऐसा है लासानी ॥
कि जिसकी सनअत[८] व शौकत पे हर सय्याह आलम[९] ने ।
झुकाया है सरे तसलीम कह कर है यह लासानी ॥

---

(१) अनुपम । (२) उपमा । (३) पुराणपुरुष, बपुरखा । (४) दिलीं पाति रक्षति इति दिलीपः । (५) नए सिरे से । (६) उचित । (७) ज्योतिर्मय । (८) बनावट । (६) सैर करने वाले, प्राणी ।

उसी दिल्ली को खींचा कानपुर में जज़्बे उलफ़त[10] ने।
मिली गङ्गा से जमुना एक का है एक में पानी ॥

इधर देखो उधर देखो यहाँ देखो वहाँ देखो।
है शोहरा[11] हर तरफ़ देखो बरात आई है लासानी ॥

पुलिस कोतवाल आगे चार थानेदार हैं पीछे।
है फिर चलता पुलिस के बैन्डका नग़मा .खुश इलहानी[12] ॥

रंगा रँग के हैं झंडे हाथ में .खुश पोश[13] लोगों के।
यह देखो क़ाफ़िला फीलाँ बरफ़्तारे खरामानी[14] ॥

वह झूलें ज़र्क़ बरक़ी और हौदज और अम्मारी।
जुलूसे शादी है या है यह एक जश्न .खुसरवानी[15] ॥

यह फ़ौजी गोरे चलते हैं बजाते बैन्ड का बाजा।
और फिर सेवासमिति की देखलो यह शान लासानी ॥

मुसल्लह वर्दियाँ पहने व बसद ताज़ीम हैं हमरी[16]।
अदाये शुक्रिए और फ़र्ज़ की है मनमें अब ठानी ॥

श्रीयुत रायसाहब रूपचन्द जी हैं अज़ीज ऐसे।
कि हर फ़रदो बशर[17] अब कर रहा है जान अफ़शानी[18]।

श्रीमन्दिर दूल्हा हाथी पे जलवहगर[19] हैं वह देखो।
किया रोशन हर एक दिलको वह है चेहरे पे नूरानी ॥

कहां दिल्ली कहाँ कम्पू[20] कहाँ राजा कहां परजा।
मगर दिलकी कशिश यह है कि है दोनों में एक जानी ॥

श्रीयुत लाला गनपत राय जी की बग़लगीरी से।
हैं पाईं नेमचन्द जी ने मुरादें अपनी मन मानी ॥

दुआ है यह अजित परसाद की फूले फले जोड़ी।
श्रीमन्दिर के घरकी मानकुमारी हो महारानी ॥

---

(१०)प्रेमाकर्षण। (११) पुकार। (१२) सुरीला। (१३) अच्छे वस्त्र पहने हुए। (१४) धीमी चाल। (१५) राजकीय। (१६) साथ चलने वाले। (१७) प्रत्येक पुरुष। (१८) जीजान से परिश्रम। (१९) कान्ति प्रसारक। (२०) कानपुर।

३-सर मोती सागर की पुत्री प्रकाशवती के विवाह पर, नवम्बर १९३०

हुई श्री कृष्ण की कृपा,[१] .खुशी है सब तरफ़ छाई,
बहार आई, बहार आई, बहार आई, बहार आई।
न जाड़ा है न गरमी है सुहाना है समाँ हरसू [२],
इधर गुंचे खिले गुल के उधर बुलबुल की शहनाई।
दरख़्तों में फले हैं हीरे पन्ने लाल और नीलम,
चमक और रोशनी ऐसी जवाहर ने कहाँ पाई।
ज़मीं की तह में, तारीकी में रह कर किस तरह चमकें,
फ़लक[३] से बर्क़[४] ने खिचकर है पेड़ों में जगह पाई।
दरख़्तों में लटकते हैं यह मोती गोल और मोटे,
कहीं लँका ने भी देखे हैं ऐसे दुर्रे यकताई।
यह सागर मोतियों का है या कोठी मोती सागर की,
कल्प वृक्षों का नज़्ज़ारा यहाँ तुम देख लो भाई।
मोहब्बत का समंदर मौजज़न[५] है, प्रेम सागर[६] है,
मोहिब्ब-ओ ख़ेश हैं यकजा ज़माना है तमाशाई।
हुऐ जन्नत नशीं श्री डाक्टर सर मोती सागर जी,
श्री सर शादी लाल जी ने शफ़क़त [७] पिदरी फ़रमाई।
उन्हीं के साय-ए रहमत में है अब ख़ानदाँ सागर,
उन्हीं की दस्तगीरी से हुई है ईज्ज़त अफ़ज़ाई।
जजान-ए हाईकोर्ट हैं हुक्कामान-ए ज़िला भी हैं,
एडवोकेटों और रऊसा हैं रौनक़ बज़्म[८] ने पाई।
अजित प्रसाद की है यह दुआ शामिल है सब इसमें,
करे प्रकाश घर कृपा किशन, सागर की यह जाई।
फले फूले जिये जुग-जुग यह जोड़ा दूल्हा व दूल्हन का,
"हो सुख औलाद, लेडी मोती सागर को"—निदा[९] आई।

---

(१) दूल्हा का नाम कृपाकृष्ण। (२) प्रत्येक दिशा में। (३) आकाश। (४) बिजली। (५) लहरें मार रहा है। (६) प्रेम सागर, सर मोती सागर के पुत्र। (७) पिता की जैसी कृपा। (८) सभा, (९) आकाश वाणी।

४–लाला जगन्नाथ प्रेसीडेण्ट लाहौर बार ऐसोसियेशन के प्रीति-भोज पर, जून १९३१

लखनऊ पूरब में, और लाहोर पश्चिम में बसा।
जज़्ब-ए-उलफ़त[१] ने है दाम-ए-मोहब्बत[२] में कसा॥

(२)

छोड़ कर पूरब बसाया हम ने पश्चिम में मकाँ।
शर्क़[३] में तो था तुलू[४] मग़रिब[५] में आख़िर आस्ताँ[६]॥

(३)

पञ्जसद और निस्फ़[७] सद से भी ज़ियाद: फ़ासला।
मीलों का हमने तय किया तब चैन याँ हमको मिला॥

(४)

अहबाब[८] सब यहाँ हैं जमा एक-एक का मैं मशकूर[९] हूँ।
क्योंकर करूँ मैं शुक्रिया, मजबूर हूँ, मजबूर हूँ॥

(५)

तहरीर[१०] में क़ुदरत[११] नहीं तक़रीर[१२] में ताक़त नहीं।
इस लिये ख़ामोश हूँ कहने की कुछ हाजत[१३] नहीं॥

---

(१) प्रेम का आवेश। (२) प्रेम का जाल। (३) पूर्व। (४) सूर्योदय। (५) पश्चिम (६) सूर्यास्त। (७) पाँच सौ और आधा सैंकड़ा अर्थात् ५५०। (८) मित्र वर्ग। (९) अनुगृहीत। (१०) लेख। (११) शक्ति। (१२) वचन। (१३) आवश्यकता।

५–मौलवी मोहम्मद आलम ऐडवोकेट की स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिये प्रार्थना

(१)

दुआ है दस्त वस्ता[1] बारगाह-ए-[2] रब्ब-ए आलम[3] में,
शफ़ा[4] हासिल हो आलम को यह है आवाज़ आलम[5] में।

(२)

निछावर माल-ओ ज़र[6] करके सेहत की भी न की परवाह,
फ़िदा-ए मुल्क, आलम जैसे कम देखे हैं आलम में।

(३)

कचहरी छोड़ दी, आराम-ओ-ऐश-ए जिन्दगी[7] छोड़ा,
ऐसे क़ुरबान-[8]-ए वतन मिलते बहुत कम हैं इस आलम में।

(४)

तुम्हारे वास्ते ऐ हिन्दियो जाँ-बाज़ी[9] करता है,
है सच्चा मर्द-ए मैदाँ[10] बावफ़ा[11] आलम ही आलम में।

(५)

हैं हिन्दु मुसलिम ईसाई व सिख सब यक ज़बा[12] होकर,
व एक-दिल कर रहे हैं यह दुआ इस वक्त आलम में।

(६)

सेहत कुल्ली[13] दे रब्बुल-आल्मीं,[14] करदे करम हम पर,
है अन्दोह-ओ-अलम[15] घेरे हमें इस वक्त आलम में।

---

(१) हाथ जोड़े हुए। (२) दरबार। (३) दुनिया के मालिक (४) स्वास्थ्य। (५) जगत (६) दौलत। (७) जीवन का सुख। (८) बलिदान (६) जान पर खेलता है। (१०) वीरयोद्धा। (११) सच्चा। दोस्त। (१२) एक स्वर से। (१३) पूर्ण स्वास्थ्य। (१४) दोनों जगत का ईश्वर। (१५) शोक।

६–राय बहादुर लाला बदरी दास के पौत्र-जन्म के अवसर पर, जूलाई १९३१

शुरू बरसात का मौसम सुहाना,
मज़ा मिल बैठने का यारों अब है।
हुआ तौलीद[1] पोता नेक-अख़तर[2],
उसी के जश्न[3] का जल्सा यह अब है।
करे यह खानदाँ का नाम रौशन,
दुआ महफ़िल में सब के लब-ब-लब[4] है।
हुआ आग़ाज़[5] जून आखिर में जिसका,
वह सोयम[6] पार्टी यारों की अब है।
यह जुलाई में दोयम पार्टी है,
कहो बलवन्त[7] अगला जल्सा कब है।
हों जल्से पार्टी एक-एक से बढ़कर,
यही आवाज़ मेरे रास्त-ब-चप[8] है।
खुले जब हाईकोरट फिर डिनर हों,
बड़ा जाँकाह[9] हमारा यह कसब[10] है।
कहाँ तक रात दिन क़ानून घोटें,
हमें हँस बोलने की भी तलब[11] है।
रहे दायम[12] सेहत[13] और दिल शिगुफ़्ता[14],
रुपये से क्या अरब है या खरब है।

(१) जन्म। (२) शुभ नक्षत्र में। (३) खुशी। (४) होंठों पर है। (५) प्रारम्भ। (६) तीसरी। (७) बलवन्तसिंह एडवोकेट। (८) दाहिने, बायें। (९) प्राण लेवा। (१०) व्यवसाय। (११) इच्छा, आवश्यकता। (१२) हमेशा। (१३) स्वास्थ्य। (१४) खिला हुआ।

रहे जारी यह दौर-ए-बज़्म-ए-इशरत[15],
ख़ुशी से जिन्दा रहने का यह ढब है।
नहीं हाज़िर तबा[16] क्योंकर करूँ नज़्म[17],
जुदाई का ज़माना आता अब है।
सलाम ऐ दोस्तो यारो मोहिब्बो[18],
मिलेंगे फिर अगर मंज़ूर-ए-रब[19] है।
ग़ज़ल कहने की फ़रमायश हमेशा,
मुझी से करते हो यारों ग़ज़ब है।
मैं चुप रहने का आदी[20] और कहूँ शेर,
तुम्हारी मेहरबानी का सबब है।
सख़ुन गोई[21] कुजा[22] क़ानून गोई[23],
नहीं एक-एक से मिलता कसब है।
सख़ुन संजी जिगर सोज़ी[24] मैं निस्बत,
वह बेफ़िकरी, यहाँ रञ्ज-व-तअब[25] है।
जजों के सामने हम सर झुकाएँ,
नहीं शायर को शाही की तलब है।

---

(१५) राग-रंग का चक्र चला जाय। (१६) चित्त अनुकूल। (१७) कविता। (१८) मित्रो, प्यारो। (१६) परमेश्वर की इच्छा होगी। (२०) अभ्यासी। (२१) कविता। (२२) कहाँ। (२३) विकालत। (२४) जी जलाने वाली मेहनत। (२५) फ़िकर, और खेद।

७—सर शादी लाल चीफ़ जस्टिस के पुत्र राजेन्द्रलाल के विवाह पर, जनवरी १९३२

क्षत्रीय कुल श्रृङ्गार और अग्रवाल वंश शिरोमणि,
सर्वोच्च न्यायाधीश और पंजाब के चूड़ामणि।
श्रीयुक्त कीर्ति-संयुक्त पुण्य भंडार श्री सर शादीलाल,
हो मुबारक घुड़ चढ़ी और सेहरा राजेन्द्र लाल।

(२)

ग्रहस्थ जीवन समर में दिग्विजय का सेहरा सजा,
होके अश्वारूढ़ श्री राजेन्द्र बाम्बे को चला।
साथ में वरयात्री हैं बुद्धि-श्री-युत, कीर्ति-युत,
वर यात्रा है या विबुध श्रेणी श्री अमरेन्द्र युत।

(३)

मुम्बा देवी की पुरी में सेठ राम निवास ने,
स्वागत किया ऐसा जिसे देखा नहीं इतिहास ने।
किस विधि अकथ्य कथा कहूँ इस शुभ विवाह-
विधान की,
ज्ञान, गुण और रूप-युत कन्या निधी प्रदान की।

(४)

जुग-जुग जियें दम्पति युगल फूलें फलें अति वृद्ध हों,
देश-धर्मोन्नति करें और कीर्ति युत समृद्ध हों।
शुभ कामना और प्रार्थना यह है हृदय में बस रही,
"स्वीकार प्रार्थना है अजित की" यह के लक्ष्मी
हँस रही।

८— सर शादीलाल चीफ़ जस्टिस के पुत्र नरेन्द्र लाल के विवाह पर, फ़रवरी १९३२

नरेन्दर के मुख से सजे हैं कैसे सिरहारा,
यह फूलों की माला गुथ-गुथा कर बन गई सेहरा।
चमक रुखे रौशन को, रहे शफ़्फ़ाफ़ और निरमल,
नज़र पग पूछन को बना है पायदाँ सेहरा।
नसीम सैहरी[1] ने खिलाये हैं जो गुल ताज़े,
महकते फूलों का सेहर आगीं[2] से बना सेहरा।
चमन में सहरा में समन्दर में व कानों में,
छिपे गुल मोती का जवाहर का बना सेहरा।
वह रोमन लारेल्स[3] थे, हमारे थे यह सिरहारा,
है मिर्ज़ा नौशः[4] ने उन्हीं को बाँधा कह सेहरा।
सुना जब ग़ालिब से तो की फिर ज़ौक़[5] ने कोशिश,
सना ख्वानी नौशः[6] में लिखा था बेबदल सेहरा।
मेम्बराने लाहौर बार ऐसोसियेशन यक ज़बाँ होकर,
मुबारक बादी में पेश कश[7] करते हैं यह सेहरा।

---

(१) प्रातःकालकी वायु। (२) जादू करने वाला। (३) प्राचीन रोम में क्रीड़ा-संघर्ष में विजेता को 'लारेल्स' झाड़ विशेष के पत्तों का ताज सिर और माथे पर पहनाया जाता था। (४) उर्दू भाषा के प्रख्यात कवि असदुउल्ला खां ग़ालिब को मिरज़ा नौशः भी कहते थे। (५) बहादुर शाह बादशाह दिल्ली के दरबार के कवि, मोहम्मद इबराहीम ज़ौक़। (६) दुल्हा की प्रशंसा। (७) सादर भेंट।

श्री सरशादी लाल को मुबारक हो यह दिन साअत[८],
नरेन्द्र के सर पे बन्धा है फ़तह[९] का सेहरा।

मुलाहज़ा हो सरकार जिद्दत-ए-ख़याल[१०] अल्फ़ाज़े,
पुरमानी[११]।

वज़न[१२] और तक़ती[१३] में भी है निराला सबसे यह,
सेहरा

नहीं शायरी पेशा मगर है जज़्ब-ए-[१४]सादिक़[१५]।

मरहमत हो फ़तवा,[१६] कि सबसे आला[१७] यह,
सेहरा।

---

(८) घड़ी, क्षण। (९) विजय। (१०) विचार की नवीनता।
(११) सार्थक शब्दों का प्रयोग। (१२) मात्रा। (१३) छन्द।
(१४) उत्साह। (१५) सच्चा (१६) निर्णय। (१७) उच्चतम।

९—श्री फ़क़ीर चन्द्र जी एडवोकेट के पुत्र नरेन्द्र नाथ के विवाहोत्सव पर, मार्च १९३२

नरेन्दरनाथ मुबारक हो तेरे सर सेहरा,
आज है यमन[1]-ओ सआदत[2] का तेरे सर सेहरा।
कारनामों से रहे नाम-ए-बुज़ुर्गों रौशन,
बांधा इस ऐहद-ए-मुक़र्रर[3] से है सरपर सेहरा।
इल्म में जाह[4] में इज़्ज़त में वज़ेदारी में,
बाज़ी ले जाना है अयाँ[5] करता है सर पर सेहरा।
अग्रवाले हो, रहो अग्र, हाँ सब से आगे,
अग्रवंशो हो यही कहता है सर पर सेहरा।
तुम नरेन्दर हो, नरों में रहो इन्दर हो कर,
इस की तसदीक़ में बांधा है यह सर पर सेहरा।
बाप से बढ़ के करो ख़िदमत-ए-क़ौमी तुम भी,
इस लिये बांधा है, बस बाप ने सर पर सेहरा।
दिल के मुस्तग़नी[6] हैं, गो कहते हैं अपने को फ़क़ीर,
चन्द गर ऐसे हों, हो क़ौम के सर पर सेहरा।
क़ौम के लिये भिक्षुक, अपने लिये बेपरवा,
कलकत्ते में है बंधा सद्र[7] का सर पर सेहरा।
है दुआ दिल से हर एक के, जो यहाँ हाज़िर है,
हो मुबारक, हो मुबारक, हो मुबारक, सेहरा।
मुझ को दावा है नहीं कुछ भी सख़ुनसंजी[8] का,
गूंथ कर लफ़्ज़-ओ-ख़याल[9] है, यह बनाया सेहरा।

(१) हर्ष। (२) आनन्द। (३) पक्के विश्वास (४) पदवी। (५) प्रकट। (६) धनवान। (७) कलकत्ते में अग्रवाल सभा का अधिवेशन हुआ था। फ़कीरचन्द्र जी अध्यक्ष निर्वाचित हुये थे। (८) कवित्व (९) शब्द तथा विचार।

१०—सर शादीलाल जी के पुत्रों सहित लन्दन जाते समय, जून १९३२

(१)

अदूल गुस्तर[1] मम्ब-ए-इन्साफ़-व-रैहमत[2] पुरजलाल[3] ।
चीफ़ जस्टिस हाईकोरट आनरेबिल सर शादीलाल ॥

(२)

साल के सुल्स-ए-मुकम्मिल[4] की जुदाई शाक[5] है ।
हम सबों को चीफ़ साहब की विदाई शाक़ है ॥

(३)

अज़्म-ए-अज़ीम[6] है आप का, इसकी ख़ुशी है मौजज़न[7] ।
इस ख़ुशी के जोश में वाद-ए-समूम[8] है नग़मा-ज़न[9] ॥

(४)

हब्स[10]-ए-गरम हब्स[11] में है, याँ हिस-ए-गरमा[12] नहीं ।
हर कस अदा-ए-फ़र्ज़ में है दूसरे से कम नहीं ॥

(५)

उमरा[13] रौसा[14] आलिम[15] ओ-हुक्काम और वकला सभी ।
एक दिल और एक ज़बाँ से हैं दुआगो[16] याँ सभी ॥

(६)

इल्म-ओ-हुनर की सोहबतें[17] हों, बहर-ए-बर[18] की सैर हो ।
जाँफ़िज़ा[19] और दिलकुशा[2] बह्र-ए-अरब[21] की लहर हो ॥

---

(१) न्याय प्रचारक । (२) न्याय तथा दया के स्रोत । (३) प्रतिभा सम्पन्न । (४) तीसरे भाग । (५) कठिन । (६) महत्वाकांक्षा है । (७) लहरें ले रही है । (८) गरम हवा, लू । (९) गान कर रही हैं । (१०) गरमी में हवा का बन्द होना । (११) कारागार । (१२) गरमी अनुभव । (१३) अमीर का बहुवचन । (१४) रईस का बहुवचन । (१५) विद्वान । (१६) शुभ कामना कर रहे । (१७) पंडितों का सत्संग । (१८ पृथ्वी और समुद्र । (१९) प्राणदा । (२०) चित्ताह्लादी (२१) अरब सागर ।

(७)

राजेन्द्र और नरेन्द्र हर दो लाल हों साहेब-कमाल[२२]।
खुशखिसाल[२३] औ फ़ैज़गुस्तर[२४], आलिम[२५]- औ
आलाख़याल[२६] ॥

(८)

वैलियल कालिज में होकर सुर्ख़रू[२७] यह दोनों लाल।
इल्म-ओ-हुनर तक़रीर और तहरीर में हों बे-मिसाल ॥

(९)

वह-कानूँगो अमीक़[२८]-औ-वसी[२९]-ओ ज़ख़्ख़ार[३०] है।
राजेन्द्र और नरेन्द्र के दो हाथ में यह पार है ॥

(१०)

वालिद-ए-माजिद[३१] के गुरु-मन्तर का यह इसरार[३२] है।
B. C. L. क्या चीज़ है, डाक्ट्रेट गले का हार है ॥

(११)

दाख़िला औक्सफ़र्ड में लालों का करा के आएँगे।
माह अकूतूबर में फिर दर्शन हमें दिखलाएँगे ॥

(१२)

हो ख़ुशी और कामियाबी हर क़दम पर साथ साथ ॥
यह दुआ करता अजित है, सर झुका और जोड़ हाथ ॥

---

(२२) श्रेष्ठतम। (२३) उदारचित्त। (२४) दानी। (२५) विद्वान। (२६) उच्च विचार। (२७) सफल। (२८) गहरा। (२९) चौड़ा। (३०) दुस्तर। (३१) पिता महोदय। (३२) आतिशय।

११—लाला जगन्नाथ अग्रवाल तथा लाला मेहरचन्द महाजन*, एडवोकेटों के योरुप-यात्रा के प्रस्थान समय, जुलाई १६३२

(१)

सैर-ए-योरूप के लिये जाते हो, जाओ प्यारे!
काम हो, नाम हो, और मरतबा पाओ प्यारे॥

(२)

पुर फ़साहत[1] करो तक़रीरें,[2] दलायल[3] से पुर!
ज़ुल्मत जेह्ल[4] को योरूप की हटाओ प्यारे॥

(३)

आए दिन[5] होवे नए शहर में तक़रीर नई।
ख़ूबियाँ हिन्दियों की ख़ूब दिखाओ प्यारे॥

(४)

हिन्द का फ़लसफ़ा[6] और हिन्द का सादा जीवन,
क्या करश्मा है, यह योरूप का बताओ प्यारे॥

(५)

शोर-ओ-ग़ुल करना नहीं काम ख़िरदमन्दों[7] का।
ख़ामोशी,[8] ज़ब्त,[9] सिकूँ,[10] क्या है, बताओ प्यारे॥

(६)

हिन्द के साधु ऋषि, नङ्गे बदन, बरहना[11] सिर।
हैं शहन्शाह से बढ़कर, यह बताओ प्यारे॥

(७)

लब तो क्या, हरकत-ए-ख़ूँ[12] होवे बदन में साकिन[13]
क्या समाधि की है शक्ति, यह बताओ प्यारे॥

---

*इस समय सुप्रीम कोर्ट के जज।

(१) भावपूर्ण (२) भाषण (३) युक्ति समूह (४) अज्ञान-अन्धकार (५) प्रति दिन (६) धार्मिक सिद्धान्त (७) बुद्धिमानों (८) मौन (९) धैर्य (१०) शान्ति (११) नङ्गे (१२) रुधिर का संचार (१३) स्थिर।

है खिदी-ख्वाह-ए- जहाँ[१४] हिन्दू है ख्वाह वह मुसलिम !
प्यार दुश्मन को भी करता है बताओ प्यारे ॥

(९)

ज़ी-इल्म[१५] से है उसको मोहब्बत अज़ली[१६] !
कज-फ़हा[१७] पे है रहा, बताओ प्यारे ॥

(१०)

अञ्जुमन पेश-ए- क़ानून के हो दोनों रत्न ।
हिन्द में भी हैं मुक़निन्न[१८] यह बताओ प्यारे ॥

(११)

होर[१९] की अक़्ल हुई कोर[२०] मय-ए-नख़वत[२१] से ।
आस्माँ पर है नज़र, नीचा दिखा प्यारे ॥

(१२)

है विज़ारत हुई मदहोश[२२] व-ज़ोम-ए-शाही[२३] ।
हिन्द के साधु की तसवीर दिखाओ प्यारे ॥

(१३)

जिसके दर्शन से मिटे किब्र[२४] शहनशाही[२५] का ।
दर्श आदर्श का उन सब को कराओ प्यारे ॥

(१४)

अग्रवाल और महाजन हैं जो राम-ओ-लछमन ।
फिर कसर क्या है, ज़रा यह तो बताओ प्यारे ॥

(१५)

तुम करो काम वहाँ, माला जपें हम यहाँ से ।
सेह्र[२६] भारत का असर क्या है, जिताओ प्यारे ॥

(१६)

हर क़दम पर हो फ़तह[२७] साथ तुम्हारे हर रोज़ ।
हिन्द आज़ाद हुआ, मुज़दा[२८] यह लाओ प्यारे ॥

---

(१४) हितचिन्तक (१५) विद्वान (१६) स्वाभाविक (१७) विपरीत बुद्धि । (१८) न्याय वेत्ता (१९) भारतीय मन्त्री का नाम (२०) भ्रष्ट (२१) अभिमान की शराब (२२) बेहोश (२३) राष्ट्रीयता के मद में (२४) अभिमान (२५) राष्ट्रीयता (२६) मंत्र शक्ति (२७) जीत (२८) शुभ सम्वाद ।

१२-सर शादीलाल जी के Capitation Tribunal के सदस्य होकर लन्दन जाते समय, नवम्बर १९३२

(१)

ज़मीं पर जब तलक सूरज की किरणों से उजाला हो,
अँधेरा रात का मिटकर ज़माना आंखों वाला हो।
फ़लक[1] के आब-ए-रैहमत[2] से ज़मीं ज़रखेज़[3] हो जब तक,
श्री सर शादी लाल जी का हमेशा बोल बाला हो॥

(२)

रहे इक़बाल[4] अफ़ज़ूं[5] रोज़-ओ-शब[6] रुतबा[7] बढ़े दायम[8]
रहें दिलशाद और शादां[9] .खुशी हर सू[10] दो बाला हो।
हैं फ़ख़्-ए-क़ौम[11] फ़ख़्-ए-सूब-ए-पञ्जाब शादीलाल,
हुए हैं फ़ख़्-ए-हिन्दोस्ताँ ख़िताब[12] इससे भी आला[13] हो॥

(३)

Capitation Tribunal के हुए हैं मुन्तखिब[14] मेम्बर[15],
नज़र दुनिया की है इन पर, करम[16] बारी तआला हो।
हो ऐसा फ़ैसला मद्दाह[18]-ओ-खुशदिल[19] हो जहाँ[20] सारा,
उसूल[21] इन्साफ़[22]-ओ-क़ानूं का मुरक्कब[23] वह मसाला हो॥

---

(१) आकाश। (२) वर्षा की कृपा। (३) उपजाऊ धन की। (४) पुण्य। (५) बढ़ता हुआ। (६) दिन रात। (७) पदवी। (८) सदा। (९) प्रसन्न चित्त, आनन्दमय। (१०) दिशा में। (११) अभिमान। (१२) उपाधि। (१३) उच्चतर। (१४) निर्वाचित्त। (१५) सदस्य। (१६) दया। (१७) परमेश्वर। (१८) प्रशंसक (१९) प्रसन्न चित्त (२०) जगत। (२१) सिद्धान्त। (२२) न्याय। (२३) सम्मिलित

१३–दयानन्द आयुर्वेदिक कॉलिज के वार्षिक अधिवेशन पर

(१)

अयुर्वेद विद्या है परमार्थ कारण,
अयुर्वेद विद्या है सब दुख निवारण।

(२)

अयुर्वेद विद्या है भव दुख निवारण,
अयुर्वेद विद्या है संसार तारण।

(३)

यह विद्या नहीं वेची जाती कभी थी,
नहीं रोटी कपड़े की कारण कभी थी।

(४)

अयुर्वेद ज्ञाता थे गुरू पूज्य स्वामी,
वह रक्षक, वह त्राता, वह थे मोक्ष गामी।

(५)

शरीरान्तर भेद सब जानते थे,
वह रूज नाड़ी की गति से पहचानते थे।

(६)

स्टेथस्कोप थर्मामीटर के बिना ही,
वह दिल और जिगर का मरज़ जानते थे।

(७)

बिना फ़ीस विजिटिङ्ग के दौलत भरी थी,
जड़ी और बूटी की खेती हरी थी।

(८)

राजा महाराजा लाखों थे देते,
रौसा व उमरा भी थे भाग लेते।

(९)

औपधि दान उत्तम धर्म था सभी का,
ऋषि भेट करना धरम था सभी का।

(१०)

यथाशक्ति अपने थे सब भेट करते,
विनय और नमस्कार से पेश करते।

(११)

परिचर्या औपधि का परबन्ध पूरा,
आहार शुद्धि, नहीं कुछ अधूरा।

(१२)

शराबों के टिङ्कचर की आदत नहीं थी,
चिकन वीफ़ एसेंस की हाजत नहीं थी।

(१३)

न यख़नी न अंडे थे दरकार हम को,
शाक नाज फल ही थे आहार हम को।

(१४)

अयुर्वेद आश्रम था, अशरण शरण था,
सुख-शांति प्रद था, वह पीड़ा हरण था।

(१५)

दयानन्द ऋषि ने था मारग बताया,
रईसों ने उस पर क़दम था बढ़ाया।

(१६)

सुरेन्द्र मोहन हैं, लाहौर मोहन,
कर देंगे संस्था को जगतान्त मोहन।

१४—श्री मूलचन्द एडवोकेट के सुपुत्र कृष्णस्वरूप के विवाहोत्सव पर, फ़रवरी १९३३

(१)

फस्ल-ए-बहार आती है हर साल नित नई।
दिखलाती है बहार वह हर साल नित नई॥
पोशाक गुल बदलते हैं हर साल नित नई।
वज़अ-ओ-तराश है नई, ख़ुशबू भी नित नई॥
पर अब के साल की तो अनोखी ही शान है।
देखी कभी न पहले वह अब आन बान है॥

(२)

जाड़े ने ख़ूब लुत्फ़ दिखाया था ठंड का।
अकड़ा था ऐसा था न ठिकाना घमंड का॥
संग्रेज़ा[1] किटकिटा रहा, बत[2] थर थरा रहा।
पारा सुकड़ के तीस से नीचे था आ रहा[3]॥
अङ्गारा राख में था मुँह अपना छिपा रहा।
चेहरे पे आफ़ताब[4] के परदा सा छा रहा॥

(३)

आते ही बस बसन्त के नक़शा बदल गया।
बस-अन्त जाड़े का हुआ, उसका अमल गया॥
आँखों में सब के रँग समाया बसन्त का।
साफ़ा बसन्ती और दुपट्टा बसन्त का॥
शादी के शादियाने लगे बजने हर तरफ़।
मिलनी थी, इस तरफ़ को, तो टीका था उस तरफ़॥

---

(१) पत्थर के टुकड़े। (२) बत्तख़। (३) तापमापक यन्त्र में हिम जम जाने पर पारा ३२° अंश से नीचे उतर जाता है। (४) सूरज।

(४)

अकलीम-ए-मुत्तहिद[५] ने बढ़ाया है इत्तिहाद[६]।
मुज़फ़्फ़र नगर को खींच यहाँ लाया है इत्तिहाद॥
कृष्ण स्वरूप में शची[७] सरला का प्रेम है।
श्रॉफ और मूलचन्द[८] में हो प्रेम नेम है॥
दो दिल को एक कर दिया जिसने वह प्रेम है!
हम सब को यहाँ बुलाया है जिसने वह प्रेम है॥

(५)

दूल्हा दुल्हन की जोड़ी विधाता ने जोड़ी है।
दोनों हैं बेमिसाल क्या यह बात थोड़ी है॥
अँग्रेज़ी बोलने में हैं दोनों ही बाकमाल।
इल्म-ओ हुनर[९] में फ़र्द[१०] हैं और साहेब-जमाल[११]॥
जब तक ज़मीं फ़लक रहे, जोड़ी बनी रहे।
बन्ने बनी में ख़ूब मौहब्बत बनी रहे॥

---

(५) संयुक्त प्रांत। (६) प्रेम। (७) सरला दुल्हन का नाम है, इन्द्रानी कह कर उसकी तारीफ़ की है। (८) श्रॉफ़ दुल्हन के पिता और मूलचन्द दुल्हा के पिता का नाम है। (९) ज्ञान और कला। (१०) अद्वितीय। (११) रूपवान।

१५–श्रीदयानन्द ऐंग्लो वैदिक कॉलिज के वार्षिकोत्सव पर, जून १९३३

दयानन्द नाम ने जग में नया जीवन है दरशाया,
अविद्या तम हटाकर हिन्द में फिर ज्ञान फैलाया।
दया ही धर्म है जग में, दया ही कर्म है जग में,
अहिंसा और दया में है आनंद जीव ने पाया॥
दया में जिसको आनंद हो दयानन्द नाम है सार्थक,
दया करना दयानन्द जी महर्षी ने है सिखलाया।
दया सिद्धान्त वेदों में प्रकाशित हो रहा नित ही,
तमो गुण का पड़ा परदा, तो उलटा अर्थ बतलाया॥
हवन होते थे जीव आतमा पशु और नर भी यज्ञों में,
यह थी तावीर[1] बेमानी[2] दयानन्द ने यह समझाया।
यजन का अर्थ पूजा और गोका नफ़्से अम्मारा[3],
है अज ग़ल्ला, नहीं बकरा, समझ में आपकी आया॥
है लफ़्ज़े गो मुरादिफ़[4] नफ़्से अम्मारा लुग़त[5] में भी,
रियाज़त[6] ही है गोमेध, इस तरह उलमाँ[7] ने फ़रमाया।
मिटा कर पाप सदियों का बताया रास्ता सच्चा,
पर उपकारी हितैषी रहनुमा[8] हादी[9] उसे पाया॥
बुज़ुर्गों की थी पूजा श्राद्ध और तरपन के लफ़्ज़ों में,
वह मज़हब कर्म योगी का गया गीता में जो गाया।
बताया धर्म का सिद्धान्त और दुनिया का रस्ता भी,
समाज उन्नति धरम उन्नति हों साथी साथ फ़रमाया॥

---

(१) अर्थ। (२) निरर्थक। (३) विषयों की चाह। (४) अर्थान्तर। (५) शब्द-कोष। (६) तपस्या। (७) विद्वानों। (८) पथ प्रदर्शक। (९) नेता।

१६–द्वाराचार दौहित्री प्रेमलता के विवाह पर, जून १९३३

(१)

स्वयं वह आज उल्लासितहृदय इस द्वार आये हैं,
नहाने प्रेम-गङ्गा में, श्री हरि-द्वार आये हैं।

(२)

हरिशपुत्री है लक्ष्मी, रूप लावण्य और गुण कलिका,
सरल हृदया, कलासद्मा, पुनीता, प्रेम की लतिका।

(३)

हरिश से लक्ष्मी का दान नारायण यहाँ लेंगे,
हो 'लक्ष्मी नारायणस्य जय' यह आशिर्वाद सब देंगे।

(४)

फलें फूलें दुल्हन दुल्हा जियें जुग जुग रहें सुख में,
अजित-आशिस-वचन* यह एक स्वर से है हर एक मुख में।

---

*प्रेमलता को मैं बचपन में "Princess Prem" कहा करता था। मेरा आशीर्वचन पूरा हुआ। आज प्रेम हैदराबाद में सबसे अधिक सम्मानित महिला है—Municipal Councillor और University Senate की सदस्या है। उसके पति श्री लक्ष्मी नारायण गुप्ता Jagir Administrator हैं और शीघ्र ही शिक्षा-विभाग के सचिव होने जा रहे हैं।

१७-श्री वीर निर्वाण सम्वत् २४५८ का स्वागत*

(१)

करें श्री वीर की पूजा, करें अतिवीर की पूजा,
श्री सन्मति प्रभू पूजा, श्री महावीर की पूजा।
श्री वर्द्धमान स्वामी के, करें निर्वाण की पूजा,
चला निर्वाण सम्वत् आज के दिन, हम करें पूजा॥

(२)

उठें सूरज से पहले, और करें अति शुद्ध देह सारी,
करें पूजा की तैयारी, है मन में यह उमंग भारी।
सामग्री शुद्ध हो सारी, लगे आँखों को भी प्यारी,
स्वदेशी शुद्ध खादी पहन करके हम करें पूजा॥

(३)

हाथ जोड़ें, सिर झुकायें, और नमावें अष्ट अंगों को,
नहीं आलस्य, निर् उत्साह, या प्रमाद की चर्या।
खड़े हैं सब विनय पूर्वक, हैं आँखों में वसे जिनवर,
श्री जिन भक्ति से रोमांचित हाषत करें पूजा॥

(४)

वचन से शुद्ध, स्पष्ट, और व्यक्त स्वर में उच्चारण,
करें जिन वर की स्तुति स्वर मिलाकर सारे नर-नारी।
ललित पद, अर्थ हो गम्भीर, और कविता हो मनरोचक,
सुरीले मीठे शब्दों में करें महावीर की पूजा॥

(५)

वसी मन में हमारे मूर्ति भगवान श्री जिन की,
उन्हीं के गुण का सुमरण है, उन्हीं की भक्ति है दिल में।
उन्हीं के पूज्य जीवन का, करें चितवन निरन्तर हम,
हैं हम सब एक चित्त से मग्न ऐसी आज है पूजा॥

---

*तदनुसार कार्तिक अमावस्या सन् १९३१ ई०

१८—पंडित दयाशङ्कर 'नसीम' की मसनवी के आधार पर लिखा हुआ स्वांतःसुखाय भगवद्भजन

अरहत मुझे रास्ता बताते,
ज्योति दृकज्ञान की दिखादे।
चिरकाल से बुद्धि पर है परदा,
जल्दी गुरुदेव वह हटादे॥ १॥
कर्मों ने किया खराब खस्ती,[1]
चरणों में पड़ा हूँ दस्त बस्ती[2]।
बेखुद[3] में खुदी[4] में हो रहा हूँ,
परमात्मा हूँ पे सो रहा हूँ॥ २॥
इस नींद की आदि तो नहीं है,
पर अन्त है, इसमें शक नहीं है।
सतगुरु इस नींद से जगाते,
सत्संग से नींद को भगाते॥ ३॥
पत्थर में छिपी है आत्म ज्योति,
पाषाण से अग्नि पैदा होती।
अग्नि में है ज्योति आत्मा की,
वायु में है शक्ति आत्मा की॥ ४॥
फूलों में खिली है आत्म ज्योति,
वृक्षों में फली है आत्म ज्योति।
कर्मों ने स्वभाव है दबाया,
थावर[5] के शरीर में बसाया॥ ५॥
चल फिर नहीं सकता जीव आत्मा,
सहता अतिकष्ट जीव आत्मा।
कीड़े की भी देह इसने धारी,
अल्पायु, सहा है कष्ट भारी॥ ६॥
चींटी बन दबा मरा यह,
पानी की भी धार में बहा यह।

---

(१) दीन, दुखी। (२) हाथ जोड़े। (३) बे-सुध। (४) अनात्म बुद्धि। (५) स्थावर, जो चल नहीं सकता।

भौंरा तितली बना यह मक्खी,
नाना विधि की विपति चक्खी ॥ ७ ॥
पत्ती बना और पशु बना यह,
मुद्दत में मनुष्य है बना यह ।
हाथी[1] ने था जिन धरम निभाया,
उस का फल स्वर्गधाम पाया ॥ ८ ॥
मेंढक[2] चला पूजने को ले फूल,
मर कर लिया स्वर्ग का सुख अनुकूल ।
गीदड़[3] ने निशा अहार छोड़ा,
मुक्ति से तुरन्त नाता जोड़ा ॥ ९ ॥
शुभ भाव से था मरा जटायु,
सुरलोक में लम्बी पाई आयु ।
श्रेणिक महाराज की कहानी,
इस भांति पुराण में बखानी ॥ १० ॥
मुनि राज तो ध्यान में थे मसरूर,
श्रेणिक को था आज़माना मंजूर ।
गरदन में था मुरदा साँप डाला,
मुनि राज ने पर नहीं निकाला ॥ ११ ॥
वैसे ही पड़ा रहा वह दिन भर,
मुनि राज डिगे नहीं तनिक भर ।
चींटों का समूह देह पर था,
छलनी की तरह शरीर भर था ॥ १२ ॥

अन्तर्कथाएं इस प्रकार हैं:—

१—एक हाथी ने पञ्चाणुव्रत धारण कर लिये थे । एक दिन वह दल-दल में फस गया; प्रयास करने पर भी नहीं निकल पाया । अणुव्रतों के कारण उसे सद्गति प्राप्त हुई ।

२—भगवान् महावीर के आते हुए समोशरण की सूचना पाकर, एक मेंढक वंदनार्थ मुख में पुष्प लेकर चला । मार्ग में वह हाथी के पैर से कुचल गया । सद्भावना के कारण उसे स्वर्ग प्राप्त हुआ ।

३—एक गीदड़ ने रात्रोपहार का त्याग कर दिया था । उसे भी सद्गति प्राप्त हुई ।

मुनिवर थे अडिग्ग ध्यान में लीन,
आत्मा था वलिष्ट देह थी क्षीण।
श्रेणिक नमें, साँप को हटाया,
मुनिराज की साफ़ करदी काया ॥ १३ ॥
पछताया किया, व्रतों को धारा,
आगे के लिए जनम सुधारा।
पर नर्क की आयु बन्ध चुकी थी,
लेख अपना विधातृ लिख चुकी थी ॥ १४ ॥
समदृष्टि को नर्क का नहीं दुख,
दुख को भी वह सह रहे हैं ज्यों सुख।
होवेंगे वह तीर्थंकर आगे,
दिखलावेंगे मोक्ष मार्ग आगे ॥ १५ ॥
चंडाल के घर में जन्मा था जो,
देवों से भी पूज्य हो गया वह।
कव्वे का ही माँस छोड़ा जिसने,[४]
सुरलोक की आयु बाँधी उसने ॥ १६ ॥
जब चोर[५] ने चोरी करना छोड़ा,
नाता तभी साधुओं से जोड़ा।
जिन धर्म है आत्मा का निज धर्म,
हर जीव का है अनादि निज धर्म ॥ १७ ॥
जीवत्व की अपने शुद्धि पाना,
संसार में फिर न आना जाना।
हर जीव में आत्मशक्ति यह है,
भगवान बनेगा शक्ति यह है ॥ १८ ॥

४—एक चांडाल जाति के शूद्र ने कव्वे के मांस का त्याग कर रखा था। एक बार उसको असाध्य व्याधि हो गई। उपचार-स्वरूप हकीमों ने कव्वे का मांसाहार निर्दिष्ट किया। परन्तु चांडाल ने मांस नहीं खाया। त्याग-भावना के कारण सुरलोक सिधारा।

५—'अञ्जन' नामक प्रसिद्ध चोर ने चोरी करना छोड़ दिया। अन्त में शुभ कर्मों द्वारा उसे भी स्वर्ग प्राप्त हुआ।

जिन धर्म ने मोक्ष मार्ग सीधा,
बतला दिया मुक्ति पथ है सीधा।
इन्सा[1] को फ़रिश्ता[2] यह बनादे,
बन्दे को ख़ुदा यह कर दिखादे ॥ १९ ॥
संसार का दुख मिटाया इसने,
स्वर्गों का मज़ा चखाया इसने।
मुसलिम हो, या हिन्दु, या नसारा[3],
पाता है हर एक यहां सहारा ॥ २० ॥
तसविह[4] का यहाँ नहीं है हल्क़ा,
ज़ुन्नार[5] का यहाँ नहीं है फंदा।
मन्दिर में रुका हुआ नहीं है,
रूढ़ी में बंधा हुआ नहीं है ॥ २१ ॥
आज़ादी खयाल इसका जौहर[6],
आज़ादी-ए-फ़ेल[7] इसका गौहर[8]।
पर शर्त है हो ख़याल ताहिर[9],
लाज़िम है कि फ़ाइल[10] होवे माहिर[11] ॥ २२ ॥
जो बन्दा है हिर्स[12] का हवा[13] का;
है दुशमन-ए-जानी आत्मा का।
गोत्याग हो पूरा या अधूरा,
श्रद्धान मगर हो पूरा-पूरा ॥ २३ ॥
श्रद्धान बिना है त्याग बेसूद[14],
गर मोक्ष है उसका मकसूद[15]
इल्म व अमलो यकीन सादिक़[16],
हैं राह निजात[17] के मुआफ़िक़ ॥ २४ ॥
जिन धर्म में है नहीं रुकावट,
भेस और दिखावटी बनावट।

---

(१) मनुष्य। (२) देवता। (३) क्रिस्तान। (४) माला। (५) यज्ञोपवीत। (६) मौलिक विशेषता। (७) कार्य में स्वतन्त्रता, (८) मोती। (९) पवित्र विचार। (१०) कर्ता। (११) कुशल। (१२) लोभ। (१३) इच्छा। (१४) निरर्थक। (१५) अभीष्ट। (१६) सम्यक दर्शन, ज्ञान, चरित्र। (१७) मुक्ति।

है ज्ञान के द्वार पर न ताला,
अज्ञान का बस पड़ा है ताला ॥ २५ ॥
कुन्जी का न कोई देने वाला,
ज्ञानी ने उसे है तोड़ डाला।
चारित्र का रास्ता सुगम है,
चलना न बहुत है, बल्कि कम है ॥ २६ ॥
सम्यक्त का ले सहारा भाई,
पहुँचो सुख धाम जल्द जाई।
सर्वज्ञ को माने वह है जैनी,
हिंसा को जो त्यागे वह है जैनी ॥ २७ ॥

१९–पौत्री संतोष कुमारी के विवाह पर द्वाराचार, दिसम्बर १९४८

मध्य में भारत के विस्तृत
द्वाब सुन्दर प्रान्त है।
उस प्रान्त का लखनऊ हमारा
केन्द्र यह अति कान्त है॥ १॥
यवनार्यों की सभ्यता अरु
संस्कृति से है लसा।
पश्चिमोत्तर कोण में
उस ओर अमृतसर बसा॥ २॥
धन्य है राजेन्द्र तुमको
दूर से तुम आ रहे।
क्या लक्ष्य है, क्या ध्येय है?
जो तुम वहाँ से ला रहे॥ ३॥
"यश नहीं अरु धन नहीं,
ऐश्वर्य की नहिं आस है।
सच्चा धनी तो है वही,
'संतोष' जिसके पास है"॥ ४॥
धन के पती हैं जनक जिनके,
हम उन्हें क्या दे सकें।
राजेन्द्र! तुम तो इन्द्र हो,
नरराज तुमको सब लखें॥ ५॥
गोधन न हम पर, राजधन,
ना मणि-रतन की खान है।
आश्रम से तुमको 'अजित' के,
'संतोष' का वरदान है॥ ६॥

(स) प्रशंसा-पत्र

1. Mr. AJIT PRASADA, Vakil of the High Court, has practised before me on the Civil and Criminal sides since my arrival at the close of November 1897. He has an exceptional mastery of the English language; and I have always entertained a high opinion of his knowledge of law.

BENARES
27th June, 1898.

R. GREEVEN,
District and Sessions Judge.

* * * *

2. I have known BABU AJIT PRASADA for about ten years, first as a student in the Law class at the Canning College, and afterwards as a pleader. He is a Gold Medalist of the Canning College. I have much pleasure in testifying to his capacity and industry as a pleader. I understand that he wishes to get a Government Pleadership and I hope that he may succeed in getting one.

LUCKNOW:
16th November, 1901.

SIR EDWARD CHAMIER,
Judicial Commissioner,
retired as Chief Justice,
Patna High Court, returned to India as President,
Indian Bar Committe.

* * * *

3. BABU AJIT PRASADA has worked as Government Pleader, and has also appeared before me in Civil cases for nearly 2½ years past. I have been quite satisfied with his conduct of cases, in some of which he has acquitted himself very creditably even when pitted against the leaders of the Lucknow Bar.

I consider him quite the best Crown Pleader I have known in my judicial experience of nearly 13 years. He has a good sound knowledge of legal principles and is abreast of High Court rulings as well as of the Oudh decisions

LUCKNOW:
13th January 1904.

C. L. M. EALES,
District and Sessions Judge,

4. I have much pleasure in certifying that for the last two years during which Mr. AJIT PRASADA has acted as Government Pleader, I have been thoroughly satisfied with the way in which he has conducted the cases for the Crown. He is a man of ability quite out of the common, is industrious and takes the greatest interest in his work. He certainly deserves to be confirmed in the post and I hope that he will be.

BARA BANKI : }
23rd January, 1904. }

H. J BOAS,
Deputy Commissioner.

*   *   *   *

5 BABU AJIT PRASADA was Government Pleader, Lucknow, from 1904 to 1907 when I was District and Sessions Judge there. I found him capable and efficient in the discharge of his duties. In Civil cases when I had occasion to appoint him as Receiver,etc., he was of great assistance to me. I consider him in every way fully qualified for the post of the Government Pleader.

ALLAHABAD : }
The 10th January, 1909. }

SIR HENRY DALY GRIFFIN,
Allahabad High Court Judge.

*   *   *

6 BABU AJIT PRASADA has prosecuted nearly all the Sessions cases I have taken up in my six months appointment here. He has always worked up his cases carefully ; never failed to bring out a strong point, and never pressed hopelessly weak ones. He has given me considerable help in dealing with Jail appeals and references.

LUCKNOW : }
13th January. 1909. }

H M SMITH,
Additional Judge
(Later Sir, President Council of State)

7. SIR,

You wish for an opinion of your work as Government Pleader.

I have a high opinion of your ability as an Advocate. I am also glad to note that you are scrupulously fair to the accused and that you economize the time of the Court by confining yourself to relevant points.

5th February, 1909.

Yours truly,
F. D. SIMPSON,
Additional Judge.

* * * *

8 DEAR AJIT PRASADA SAHEB,

You ask me to let you have a letter about your work at Lucknow.

I am very glad to record that when I was there as Deputy Commissioner you did much excellent work for me as Government Pleader, and I wish you all success.

SIMLA:
25th May, 1915

SIR HARCOURT BUTLER,

Retired as Lieutenant-Governor of Burma, returned to India as President, Indian States Committee.

* * * *

*9. MR. AJIT PRASADA M. A., LL. B. was employed in Bikaner State as Puisne Judge of the High Court of Judicature. He tendered resignation stating that he was unable to find a suitable residential house and it was accepted.

There was nothing against his work.

Bikaner
11th April, 1937

V. N MEHTA, I. C. S.
Prime Minister

---

*यह और अगले पृष्ठ का दसवाँ पत्र जावरा-राज्य को ख़ुफ़िया जाँच के उत्तर में लिखे गए थे।

10. MR. AJIT PRASADA served as Government Pleader Lucknow about 15 years ago but so far as my enquiries go he was dissatisfied with his salary and resigned to take up private practice. He is a very religious man and is said to have been a Sadhu at one time. We have nothing against him in our record and he takes no active part in politics.

Lucknow } *W. COLVILLE*
13th August. 1937 } Superintendent of Police

* * * *

11. I am giving this certificate to MR. AJIT PRASADA M. A., LL. B. with great pleasure. He worked as the Judge of the Chief Court, Jaora for a little over six months. The Jaora Darbar was very fortunate in getting the services of such an experienced and capable judge. He has an exceptional command over English, Urdu and Hindi languages. He proved to be a patient, painstaking and conscientious Judge. His judgments are masterly specimens of scholarship, and legal grasp of facts and law. He resigned the Judgeship to suit his own convenience. I am very sorry to lose such a Judge who had the confidence of the public and his own officers.

Jaora State, } *MUNIR UDDIN AHMAD,*
1st February, 1938 } Chief Minister,

(द) मान-पत्र

(१) बम्बई प्रान्तिक सभा की स्वागतकारिणी समिति की ओर से अभिनन्दन-पत्र, १६१२*

परमातम जिनराज को, वन्दो मन वचकाय।
पुण्य प्रताप हुआ हरष, आप पधारे आय॥

आज परमानंद का विषय है जो हम लोगों के भाग्योदय से आप महानुभाव का पदार्पण इस वम्बई नगर में हुआ है। आज हम सब वम्बई वासी भाइयों को परम हर्ष है जो आप दूर देशान्तर से यात्रा का इतना भारी कष्ट सह यहाँ पधारे हैं। हमारी जैन समाज में आप ऐसे नर रत्नों की बहुत बड़ी आवश्यकता है। हमारी जाति धार्मिक और लौकिक विद्या से पीछे हटी हुई है! आप ऐसे वीर पुरुषों ही के द्वारा जैन समाज का उद्धार हो सकता है। आप इस पवित्र सर्वोत्कृष्ट जैन धर्म के मर्म के ज्ञाता हैं। आपके द्वारा सकल जन समूह अज्ञान के अन्धकार से ज्ञान के प्रकाश में आसकता है और लौकिक उन्नति के साथ-साथ धार्मिक उन्नति कर परम सुख के मार्ग पर गमन कर सकता है। आप ऐसे नर रत्नों का समागम हमारा और हमारी समाज का गौरव है। कृपा कर स्वागत स्वीकार कीजिये और धार्मिक वात्सल्यरूप अमृत से हमारे शुष्क हृदयों को तृप्त कीजिये।

आपका कृपापात्र,
पदमचन्द भूरामल,
अध्यक्ष स्वा० का० क०।

---

*देखिये पृष्ठ १०१

– छप्पन –

२—"इञ्जङ्कशन-केस" सम्पन्न होने पर* देहली जैन-समाज की ओर से अभिनन्दन, जुलाई १९२४

मान्यवर !

आपने आज तक इस जैन समाज का जो निःस्वार्थ उपकार किया है वह वास्तव में स्मरणीय है। भिन्न-भिन्न तरह से यह आपका उपकार समाज को कई प्रकार से उपकृत कर रहा है।

श्रीमान जी !

आप १२ वर्ष से जो अंग्रेजी जैन गजट का संपादन कर इस पवित्र जैन-धर्म का प्रचार कर रहे हैं वह बहुत ही प्रशंसनीय है। आपको उसमे इतना प्रेम है कि मदरास से निकलते हुए भी आप उसमें भाग ले रहे हैं।

सज्जनवर !

आप महासभा के काम करने वालों में भी बहुत प्राचीन हैं। जैन यङ्गमेन्स ऐसोसिएशन और भारत जैन-धर्म महामंडल के कार्यकर्त्ता भी बहुत दिन से हैं। इन सब का काम आपने बड़ा ही दिलचस्पी से किया है।

प्रिय उत्साही महाशय !

कुछ दिन तक आपने "देवेन्द्र" पत्र का भी संपादन और प्रकाशन किया था। तथा जिस समय कानपुर और लखनऊ में महासभा का अधिवेशन हुआ था उस समय उसकी सफलता में बहु भाग आप का ही था।

प्रिय विद्वन् !

"पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय" और "सामायिक पाठ" का अंग्रेजी भाषानुवाद कर आपने जैन-धर्म का अच्छा प्रचार किया है। और "सत्यार्थ यज्ञ" का संपादन एवं प्रकाशन कर भगवद्भक्ति का अच्छा पुण्य और यश संचय किया है।

स्वार्थ त्यागी !

आपने सन् १९११ में अटूट परिश्रम कर श्री ऋषभ ब्रह्म-चर्याश्रम स्थापित किया था, जो आज तक चल रहा है और आपकी कीर्ति को स्थायी बना रहा है।

*देखिये पृष्ठ १६१

धर्मबन्धु !

बाबू अर्जुनलाल जी सेठी और महात्मा भगवान दीन के मुकदमों में भी आपने कई वर्षों तक निःस्वार्थ परिश्रम किया था। इसके सिवाय आप सन् १९१२ में बम्बई प्रांतिक सभा के सभापति हो चुके हैं और उस अधिवेशन की सफलता आपके सम्बन्ध से बहुत ही अच्छी हुई थी।

सज्जनवर !

इस समय पूज्य श्री सम्मेद शिखर जी का जो मुकदमा चल रहा था उसमें आपने बड़ी ही निःस्वार्थ सेवा की है, इसके लिए आपने अपनी कई महीने की प्रैक्टिस छोड़ी है, अपने स्वास्थ्य का कुछ भी ख्याल न रखते हुए हजारी बाग और राँची रहे हैं, परदेश के सब कष्ट सहे हैं, और बड़ी प्रसन्नता के साथ कहना पड़ता है कि उसमें आपने बड़ी ही अच्छी और शानदार सफलता प्राप्त की है। इसके लिए आपको जितना धन्यवाद दिया जाय उतना थोड़ा है।

प्रिय विद्वन् !

यह कहते हुए हमें बड़ी ही प्रसन्नता होती है कि आप जैसे अंग्रेजी के विद्वान हैं, वैसे ही क़ानून के पंडित हैं और जैसे क़ानून के पंडित हैं वैसे ही धर्म के प्रेमी, सदाचारी, एवं समाज हितैषी भी हैं। इन सब गुणों का एक शान्तिप्रिय सज्जन में विद्यमान होना हम लोगों के लिए एक बड़े ही सौभाग्य की बात है।

स्वार्थ त्यागी !

आपके इस परिश्रम का एवं निःस्वार्थ सेवा का बदला कोई भी नहीं चुका सकता तथा केवल अपना कर्त्तव्य पालन करने के लिए हम सब लोग केवल एक पुष्प माला लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। आशा है कि आप इसे अवश्य स्वीकार कर कृतार्थ करेंगे।

समस्त दिगम्बर जैन पंचान,
देहली

३--बीकानेर हाईकोर्ट की जजी से त्याग-पत्र देने पर*
वहाँ के क़ानून-व्यवसायी संघ की ओर से
विदापत्र, अक्टूबर १६३१

महामान्यवर !

आज आपको विदाई देते हुए हम अत्यन्त शोकाकुल हो रहे हैं। आपका यह असामयिक वियोग हमें एक सच्चे सहायक, एक आदर्श मित्र, एवं एक सहृदय पथ-प्रदर्शक से वञ्चित कर रहा है, जिसकी पूर्ति के लिए केवल भाग्य-विधान पर भरोसा करके ही सन्तोष करना पड़ता है। श्रीमान् ने अपनी अपूर्व विद्वत्ता एवं गम्भीर क़ानून ज्ञान के द्वारा केवल न्यायासन को ही समलँकृत नहीं किया किन्तु आपकी सहृदयता, सहानुभूति-पूर्ण सरल व्यवहार तथा आपकी न्याय-प्रियता ने समस्त जनता के हृदयमन्दिरों में साम्राज्य स्थापित कर लिया है।

महानुभाव !

न्यायविभाग की मर्यादा का ध्यान आपने सदैव रखा किन्तु अनुशासन का पालन कठोरता से करते हुए भी आपका वर्ताव सदा दयालुतामय तथा शिष्टाचार पूर्ण रहा है।

महोदय !

क़ानून एवं तत्सम्बन्धी विधान पर आपका पूर्ण अधिकार है। आपके दिये हुए निर्णय आपकी विद्वत्ता, गम्भीर अध्ययन तथा परिश्रम के द्योतक हैं जो राजकीय न्यायविभाग के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगे और सदैव पथ-प्रदर्शक का कार्य करेंगे।

न्यायमूर्ति !

आप केवल एक आदर्श न्यायाधीश ही नहीं किन्तु साहित्यप्रेमी भी हैं। साहित्य सेवा के लिए आप सदैव अवकाश निकालते ही रहे हैं। श्रीमान् द्वारा लिखित अनेक पुस्तकें तथा सम्पादित साहित्य-पत्रिकाएँ श्रीमान् के साहित्य प्रेम के अत्युत्तम उदाहरण हैं।

---

*देखिये पृष्ठ १७६

विद्वद्वर !

यही नहीं, इस नगर के सार्वजनिक जीवन में भाग लेकर आप जनता को सदा उत्साहित करते रहे हैं और यह दिखा दिया है कि नियम-शिथिलता तथा सहृदय न्याय-प्रियता परस्पर विरोधी होने पर भी आपके चरित्र चित्रण में समभाव से मिली हुई हैं, जिसका अकाट्य प्रमाण है आपकी वह सरलता और दयालुता जो अपराधी पर दिन रात अटल रूप से बरसती रही है।

महानुभाव !

आपको अपनी मातृभाषा का सदैव ध्यान रहा है। देवनागरी भाषा को न्यायालय की भाषा मानते हुए भी इसको न्यायालय के निर्णयों में उचित स्थान न मिलने की कठोर प्रथा का अंत करके आपने यहाँ के न्यायालयों में उसे उचित स्थान दिलाने का निरंतर प्रयत्न करके मातृभाषा की जो सेवा की है, वह साहित्य-संसार में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगी। अरबी फ़ारसी शब्दों से लदी हुई न्यायालयों की भाषा से जनता को भारी कष्ट होता था। आप अपने निर्णयों में जन साधारण के बोधगम्य सरल हिन्दी शब्दों का स्वयम् प्रयोग करते तथा करवाते रहे हैं। अनेक क़ानूनी पारिभाषिक शब्दों के सुन्दर हिन्दी पर्यायवाची शब्द आपने निश्चित किये और उनको प्रचलित करवाया। बीकानेर राज्यान्तर्गत जनता का यह असीम उपकार सम्पादन करके आपने उनके हृदय को सदैव के लिए कृतज्ञतापाश में बांध लिया है।

महोदय !

हम क़ानूनव्यवसायी पुरुषों के साथ भी आपका व्यवहार शिष्टतापूर्ण प्रेममय रहा है। नये लोगों को आप सदैव सहायता देकर तथा उनके साथ हार्दिक सहानुभूति प्रकट करके उन्हें उत्साहित करते रहे हैं। साधारण से लेकर बड़ी से बड़ी कठिनाई के उपस्थित होने पर भी उचित परामर्श देकर हमें सदैव अनुग्रहीत किया है, जिसके लिए हम आपके सदैव ऋणी रहेंगे।

मान्यवर !

आपका व्यक्तित्व हृदयों में उत्साह भरने वाला एवम् आपका विशाल हृदय सदा दयालुता पूर्ण रहा है। आपके सत्परामर्श से

हमारे क़ानूनव्यवसायी सम्मेलन (Bar Association) ने सदा उत्साह लाभ किया तथा अपनी बाल्यावस्था के वर्ष सफलता के साथ व्यतीत किये।

श्रद्धेयवर !

हमारे हृदय इतने व्याकुल हो रहे हैं कि अपने भावों को प्रकट करना अब हमारे लिए सर्वथा असंभव सा हो रहा है, इसलिए हमारे हृदयों के भावों का अनुमान इस अभिनन्दन की बड़ाई छुटाई से न किया जाय। हमें आशा है कि आपके विशाल हृदय के एक कोने में हम लोगों के लिए कुछ स्थान हमेशा सुरक्षित रहेगा जिसका प्रतिबिम्ब हमारे स्मृतिपटलों पर अङ्कित होकर हमें समय-समय पर गद्‌गद् बनाता रहेगा। अन्त में परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वे आपके भावी जीवन को सदा पूर्ण सुख तथा शान्तिमय बनाये रक्खे और उस सुख तथा शान्तिमय जीवन में आप हमारी स्मृतिवल्लरी को असीम प्रेम जल से निरन्तर सिञ्चित करते रहें।

भवदीय अनुग्रहाभिलाषी,
कानून व्यवसायी सम्मेलन,
बीकानेर।

४–जारकी-निवासी श्री० रामस्वरूप भारतीय की पुत्री लक्ष्मी के विवाहोत्सव पर स्वागत, जनवरी १९४०

पूज्यवर !

तुम जैन जाति नलिनी के आभामय कुलवल्लभ हो ।
तुम वृद्ध ज्ञान-गुण-वय में कुल वैभव कुल उज्ज्वल हो ॥
तुम जैन धर्म के अनुपम पंडित प्रतिभा शाली हो ।
हो पूर्ण शील शुचिता से, पर राग द्वेष से खाली हो ॥
तुम कुटिल कषायों के रिपु, अरि क्रोध मानमाया के,
आराधक रत्नत्रय के, हितकर हित की काया के ॥
हैं पूज्य परम तीरथ जो, श्री जैन दिगम्बर वाले ।
दे समय अमोलक उनको, तुम रहे प्रकृत रखवाले ॥
हे देव ! सहायक सच्चे, तुम रहे सदा निर्बल के ।
तुम सचिव रहे थे श्री भारत-जैन महा मंडल के ॥
तुम जैन राजनीति की परिषद के उत्पादक हो ।
अंग्रेज़ी जैन गज़ट के तुम अबतक सम्पादक हो ॥
उस बीकानेर रियासत में काम जजी का करके ।
प्रख्यात बने नय-नागर आदर्श अलौकिक धर के ॥
श्री जैन पब्लिशिंग हाउस से प्रबल प्रचार किया है ।
जिन-मत का ख़ूब विदेशों को शुचि संदेश दिया है ॥
हे करुणासिंधु कहांलों कवि करे सुगान बड़ाई ।
समुदित स्वजाति में तुमने, नवजीवन ज्योति जगाई ॥
प्रिय पूजनीय पथ-दर्शक श्री अजित प्रसाद हमारे ।
विद्वान विविध भाषा के, जातीय नयन के तारे ॥
पथ प्रेम प्रीति प्रकटाने, जारकी ग्राम में आये ।
कृतकृत्य हुए अधिवासी जब देव ! सुदर्शन पाये ॥

लक्ष्मी तू भाग्यवती है, तव परिणय के अवसर पर।
जो दिया देव ने तुझको, आशीर्वाद ख़ुद आकर ॥
जो भारतीय की मुद्दत से थी मन की अभिलाषा।
दर्शन देकर श्रीमन ने, वह पूर्ण करी चिर आशा ॥
जो थी आशा "आशा" से, निर्मूल हुई वह आशा।
हे देव ! नहीं ले पाई, वह दुआ तुम्हारी आशा ॥
हे देव ! तुम्हारा हम सब, शुभ अभिनन्दन करते हैं।
श्रद्धा के सुमन चढ़ाके, चित चरणों में धरते हैं ॥

हम हैं,

आपके—

दिगम्बर जैन पंचायत, जारकी

के सदस्य।

५—दिगम्बर जैन नवयुवक मण्डल, वर्धा की ओर से विदा-पत्र, नवम्बर १९४८*

श्रीमन्,

हमारे लिये यह परम हर्ष और सौभाग्य का अवसर है कि आप जैसे महान् और कर्मठ शक्ति को हम अपने निकट पा रहे हैं। इस वृद्धावस्था में शारीरिक कष्टों और असुविधाओं को भुला समाजोन्नति की भावना से पधार, आपने जिस अदम्य उत्साह, धर्म प्रेम, समाज-सेवा की प्रवाहशील परम्परा को प्रस्तुत किया है, यह आपकी आत्मशक्ति का ही प्रभाव है। श्रीमन् आपका उत्साह, प्रेम और सेवा परायणता अद्वितीय है। वे हमारे पथ को प्रगति एवं प्रकाश प्रदान करने वाले हों।

संस्कृति संरक्षक,

अबसे पचास वर्ष पूर्व हमारे समाज-सेवकों के सन्मुख अपने गौरवमय अतीत, उलझे हुये वर्तमान और संकटमय भविष्य के चित्र प्रत्यक्ष हुये तो धर्म और संस्कृति रक्षा की अनेक समस्याएँ उपस्थित हो उठीं। उस समय आप ही एक अद्भुत शक्ति के रूप में प्रकट होकर साहित्य प्रचार, संस्था संगठन तथा ऐतिहासिक निष्कर्षों द्वारा अपनी उज्ज्वल जैन-संस्कृति की रक्षा करने में समर्थ हुये। पवित्र श्रमण-संस्कृति पर जब-जब भी सरकारी प्रहारों के प्रयत्न हुये, तब-तब आपने विविध साधनों से, अथक परिश्रम द्वारा उसकी रक्षा की। तीर्थ क्षेत्रों के मामलों में वर्षों तक अपने व्यवसाय को तिलांजलि देकर अनेक स्थानों पर रह कर निःस्वार्थ रूप से जो कार्य आपने किया है वह जैन इतिहास के स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। आज भी आप अपने जीवन का उपयोगी अंश जैन समाज की हित-चिन्तना में लगा रहे हैं, यह सचमुच तरुण पीढ़ी के लिये गौरव, मनन और आदर्श की बात है।

---

*महात्मा-गांधी के 'सेवाग्राम' के समान वर्धा में एक जैन-आश्रम स्थापित करने का विचार था। विशेष सफलता न मिलने पर कुछ ही महीने बाद लौट आया।

कर्मठ विद्वान,

स्व० वैरिस्टर चम्पतराय जी और स्व० वैरिस्टर जुगमन्दरलाल जी की पुण्य प्रेरणा और निष्कपट सहयोग को पाकर आपकी प्रतिभा ने दृढ़ता और कुशलता के साथ जैन साहित्य का जो पवित्रतम कार्य किया वह युग-युगों तक अविस्मरणीय रहेगा। अनेक जैन संस्कृत ग्रन्थों का अंग्रेजी अनुवाद करके तथा ४५ वर्षों से अंग्रेजी जैन गजट का निःस्वार्थ रूप से संपादन, प्रकाशन एवं प्रचार करते हुये आपने हम लोगों का महान उपकार किया है। सेण्ट्रल जैन पब्लिशिंग हाऊस की स्थापना और संचालन करके विदेशों में धर्म प्रचार के लिये एक बहुत बड़ी चीज़ आपने प्रस्तुत की है। आज जब कि हमारी तरुण पीढ़ी आँग्ल-भाषाविद होने पर धर्म और संस्कृति के प्रति विद्रोही हो रही है, तब आपके कार्य वास्तव में उसे लज्जान्वित करने के लिये सशक्त, एवं समर्थ हैं। समाज और संस्कृति के कर्मठ विद्वान, हमें ज्ञान का आशीर्वाद दीजिये, अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलिये।

जीवित संस्था,

आपका जीवन संस्थाओं की शालीनता का सजीव प्रतिबिम्ब है। आपने अपने जीवन में जैन यंगमेन्स एसोसिएशन, भारत जैन महामंडल, भारत दिगम्बर जैन परिषद, जैन पोलिटिकल कान्फरेंस आदि संस्थाओं का संस्थापन, नेतृत्व और सयोग संचालन कर जैन समाज में निराशाजन्य खिन्नता को दूर कर संगठन, ऐक्य, कार्यशीलता तथा अस्तित्व-निर्माण का जो भव्य वातावरण प्रादुर्भूत किया, उसका महत्व किसी भी कार्यकर्ता धर्म-प्रेमी से छिपा नहीं है। हमें यह कहने में भी संकोच नहीं है कि आपका जीवन एक जीवित संस्था है, जिससे शत-शत किरणें विकीर्ण होकर संख्यातीत जनों में प्राणों का संचार करती हैं, होश और जोश पैदा करती हैं।

हमारे गौरव-शिरोमणि,

अपने नाम को कर्त्तव्य के क्षेत्र में दृढ़ता और साहस के साथ सार्थक करने वाले हे समाज-सेनानी, हमारा मार्ग-दर्शन कीजिये।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	३	क़ीमता	क़ीमती
१५६	७	१९३४	१९२४
१५६	१६	देहावसन	देहावसान
१६१	११	टेकचन्द	टीकमचन्द
१७०	१९	आकस्मिक	अकस्मात्
१७४	११	रज्य	राज्य
१८०	१०	प्रगाण	प्रांगण
१८२	१७	Anthony	Antony
१८६	३	और	हर
१८७	५-६	अनगिनती	अनगिनत
१८७	२१	खज्ञराहा	खजराहा
१८७	२२	व्युत्रौन	थुत्रौन
१८८	७	सहनी	सहानी
१८९	१३	सिंह सिंघई और मैं,	सिंह और मैं, सिंघई
१९०	१	घुलेव	धुलेव
१९१	२,५	महाराजा	महाराणा
१९५	११	घुलेकर	धुलेकर
१९८	१०	खफ़ीका	खफ़ीका
१९८	२०	समत्यानुसार	सम्मति से
१९९	४	न्यायप्रार्थीयों	न्यायप्रार्थियों
१९९	५	जव	नष्ट
१९९	१६	माणपत्र	प्रमाणपत्र
२०२	२	सूगर	शुगर
२०६	२०	विकने	चितकवरे
२०८	६	रुचिराय	रुचिराम
२०८	१५	मैं	में
२१०	२०	सर्प	सर्व
२११	९	रोज़ शवाका है	शवाका है रोज़
२११	१७	परी	परीक्ष

परिशिष्ट

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१०	अग्रेसर	अग्रसर
१	१९	आशि	आशीष
२	२३	ग्रहत्यागी	गृहत्यागी
३	२९	भोज्य और	भोज्य हैं और
४	३१	कृतज्ञता	कृतघ्नता
६	८	कन्वेन्श	कन्वेन्शन
६	१३	पाजरापोल	पिंजरापोल
६	२९	पूर्ण	पूर्णतया
७-८	३१-१	उनमें जिनकी विचार शक्ति	उनमें विचार शक्ति
११	२	देर ही	दे रही
११	२०	जैम	जैन
१५	४	वह	यह
१५	२७	तककी	तक कि
१५	२८	सम्यक्त	सम्यक्त्वी
१६	२२	धर्म्मभ्रम्ट	धर्मभ्रष्ट
१६	२९	आपका	आपको
१८	२	इर्षा	ईर्षा
१८	२०	सम्यग्विकिरतु	सम्यग्वर्षतु
२२	२०	रजूसा है	रजूसा से है
२२	२३	जोड़ा	जोड़ी
२४	१	आगाह्	आगाह्
३०	३	बुजुर्गों	बुज़ुर्गों
३०	५	वज़ेदारी	व जन्दारी
३१	७	गरस	गरमा
३३	८	का	को
३४	६	मुकलिन्न	मुकम्मिल
३५	८	आरगों	आग्मों
४३	१२	हापन	हर्पिन

— [illegible] —

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४	१६	ढंगों	ठगों
४४	२०	पूरर्णोन्दु	पूर्णेन्दु
४५	८	गाभी	गामी
४६	१	बताते	बतादे
४६	५	खस्ती	खस्ता
४६	६	वस्ती	वस्ता
४७	२	विपति	विपत्ति
४९	९	तसविह	तस्वीह
५०	९	सर्वच	सर्वज्ञ
६२	१३	अग्रजी	अंग्रेजी
६४	३	शक्ति	व्यक्ति